

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला : १११

प्रधान सम्पादक
डॉ० सागरमल जैन

आचार्य रामचन्द्रसूरिविरचितम्

कौमुदीमित्रानन्दरूपकम्

अनुवादक
श्यामानन्द मिश्र

सम्पादक
डॉ० अशोक कुमार सिंह

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला : १११

प्रधान सम्पादक
प्रो०सागरमल जैन

श्रीरामचन्द्रसूरिविरचितम्

कौमुदीमित्रानन्दकषपात्रम्

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादक
श्यामानन्द मिश्र

सम्पादक
डॉ० अशोक कुमार सिंह

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी-५

१९९८

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला : १११

पुस्तक	:	कौमुदीमित्रानन्दरूपकम्
प्रकाशक	:	पार्श्वनाथ विद्यापीठ आई०टी०आई० रोड, करौंदी, वाराणसी-५
दूरभाष संख्या	:	३१६५२१, ३१८०४६
फैक्स	:	०५४२ - ३१८०४६
प्रथम संस्करण	:	१९९८
मूल्य	:	रुपये १२५.०० मात्र
अक्षर सज्जा	:	सरिता कम्प्यूटर्स, औरंगाबाद, वाराणसी-१०। (फोन नं० ३५९५२१)
मुद्रक	:	वर्द्धमान मुद्रणालय, वाराणसी।
I.S.B.N.	:	81-86715-34-7

Pārśvanātha Vidyāpeeth Series No. : 111

Title	:	Kaumudimitrānandarūpakam
Publisher	:	Pārśvanātha Vidyāpīṭha I.T.I. Road, Karaundi, Varanasi-5.
Telephone No.	:	316521, 318046
Fax	:	0542-318046
First Edition	:	1998
Price	:	Rs. 125.00 only
Type Setting at	:	Sarita Computers, Aurangabad, Varanasi-10. (Phone No. 359521)
Printed at	:	Vardhman Mudranalay, Varanasi.

प्रकाशकीय

प्रस्तुत प्रकरण **कौमुदीमित्रानन्द** के रचयिता रामचन्द्रसूरि हैं जिनका समय ईसा की १२वीं शताब्दी है। ये कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य के पट्टशिष्य थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें से ३९ ग्रन्थ ही अद्यावधि उपलब्ध हुए हैं। ये केवल कवि ही नहीं आचार्य भी थे, गुणचन्द्र के साथ मिलकर इन्होंने प्रसिद्ध नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ '**नाट्यदर्पण**' की रचना की थी। इसके पूर्व हमने रामचन्द्रसूरि के दो रूपकों **निर्भयभीमव्यायोग**, अनुवादक डॉ० धीरेन्द्र मिश्र, सम्पा० डॉ० अशोक कुमार सिंह, **नलविलासनाटकम्**, अनुवादक डॉ० धीरेन्द्र मिश्र, सम्पा० प्रो० सुरेशचन्द्र पाण्डेय, का प्रकाशन किया।

हिन्दी अनुवाद तथा विस्तृत भूमिका के साथ प्रकाशित यह कौमुदीमित्रानन्द नामक प्रकरण सुधीजनों के समक्ष उपस्थित है। इसके गुण-दोषों का वे ही विचार कर सकते हैं। अनुवाद और भूमिका लेखक डॉ० श्यामानन्द मिश्र, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के शोध-छात्र रहे हैं। संस्कृत भाषा एवं साहित्य के उदीयमान अध्येता श्री श्यामानन्द ने यह कृति हमें प्रकाशनार्थ दी इसके लिए हम उनके प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। आशा है उनकी लेखनी से भविष्य में भी इसी प्रकार के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो सकेंगे।

ग्रन्थ का सम्पादन, पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्रवक्ता डॉ० अशोक कुमार सिंह ने किया है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं। उन्होंने इस ग्रन्थ का प्रूफ-संशोधन भी किया है। हम प्रो० सागरमल जैन के भी आभारी हैं, जिन्होंने इसका अवलोकन कर इस कृति के अनुवाद में रही हुई कुछ असंगतियों को दूर किया और प्राक्कथन लिखकर अनुगृहीत किया।

प्रकाशन व्यवस्था में सहायक रहे हैं— डॉ० विजय कुमार जैन (प्रवक्ता, पार्श्वनाथ विद्यापीठ), एतदर्थ वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

उत्कृष्ट अक्षर-संयोजन के लिए श्री अजय कुमार चौहान, सरिता कम्प्यूटर्स एवं सुरुचिपूर्ण मुद्रण के लिए वर्द्धमान मुद्रणालय, वाराणसी के भी हम आभारी हैं।

भूपेन्द्रनाथ जैन

मानद सचिव

पार्श्वनाथ विद्यापीठ

वाराणसी

लेखकीय

आज भूमिका तथा परिशिष्टों से समन्वित और स्वोपज्ञ हिन्दीभाषानुवाद से युक्त **कौमुदीमित्रानन्द** रूपक का, जो पारिभाषिक रूप में एक **प्रकरण** है, यह संस्करण विद्वान् पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। यह जैन-सम्प्रदाय के अतिप्रसिद्ध लेखक और प्रबन्धशतकर्ता **रामचन्द्रसूरि** की एक महनीय कृति है। अद्यावधि इसकी कोई संस्कृत टीका अथवा हिन्दी अनुवाद उपलब्ध न होने के कारण मैंने जिज्ञासुओं की सहायता के लिये इस रूपक का हिन्दी में अनुवाद करने का प्रयास किया है। यह हमारा प्रथम प्रयास है। अतः इसमें पूर्णता होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रस्तुत अनुवाद-कार्य जिनके वात्सल्यपूर्ण मार्गदर्शन का सत्परिणाम है, उन परमपूज्य पितृचरणों में मैं सादर प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूँ। आदरणीय गुरुजनों को भी श्रद्धया नमन करता हूँ, जिनके अमोघ आशीर्वचन मुझे सतत प्रेरणा प्रदान करते रहे।

इस कार्य के लिए सर्वप्रथम प्रेरणा मिली वाराणसीस्थ **पार्श्वनाथ विद्यापीठ** के वरिष्ठ प्रवक्ता आदरणीय डॉ० अशोक कुमार सिंह जी से। इन्होंने आद्यन्त अपने प्रोत्साहन और मुद्रण के समय समस्त ग्रन्थ का ध्यानपूर्वक अध्ययन तथा इसमें अपेक्षित संशोधन कर जो अनुग्रह हमारे ऊपर प्रदर्शित किया है, तदर्थ हम इनके कृतज्ञ हैं।

ग्रन्थ के उत्कृष्ट कम्पोजिंग के लिए सरिता कम्प्यूटर्स, वाराणसी के सञ्चालक श्री अजय कुमार चौहान भी साधुवादार्ह हैं।

आदरणीय विद्वज्जन से हमारी यही प्रार्थना है कि इस प्रथम प्रयास में हुई हमारी त्रुटियों की सूचना हमें देने की कृपा करें, जिससे भविष्य में यदि इसका द्वितीय संस्करण हो तो उसमें अपेक्षित संशोधन किया जा सके—

गच्छतः स्वखलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।

हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः।।

अन्त में विद्वान् पाठकों से अपनी त्रुटियों के लिये क्षमा-प्रार्थी—

तिथि १५-८-१९९८ (कृष्ण-जन्माष्टमी)

श्यामानन्द मिश्र

प्राक्कथन

‘कौमुदीमित्रानन्द’ में प्रतिपादित आचार्य रामचन्द्रसूरि की जैन जीवनदृष्टि

कालिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के पट्टशिष्य रामचन्द्रसूरि ने अनेक संस्कृत नाटकों की रचना करके संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अवदान दिया है। ‘कौमुदीमित्रानन्द’ भी उन्हीं नाटकों में से एक है। यह कृति श्री श्यामानन्द मिश्र के हिन्दी अनुवाद के साथ पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी से प्रकाशित हो रही है। यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका में श्री श्यामानन्द मिश्र ने इस कृति के साहित्यिक पक्ष पर पर्याप्त विस्तार से प्रकाश डाला है, अतः यहाँ उस सम्बन्ध में मैं विशेष चर्चा न करके प्रस्तुत कृति में आचार्य रामचन्द्रसूरि ने जैनदृष्टि का निर्वाह किस कुशलता से किया है, इसका किञ्चित् निर्देश करना चाहूँगा।

आचार्य रामचन्द्रसूरि अपनी इस कृति का प्रारम्भ भगवान् ऋषभदेव की स्तुति के साथ करते हैं। न केवल इसके मङ्गलाचरण में, अपितु इस नाटक में चित्रित अन्य सङ्कटकालीन परिस्थितियों में भी वे भगवान् ऋषभदेव की शरण ग्रहण करने का निर्देश करते हैं। यथा—

(१) यः प्राप निवृत्तिं क्लेशाननुभूय भवाण्वि।

तस्मै विश्वैकमित्राय त्रिधा नाभिभुवे नमः॥ — पृ० १।

(२) परं भगवतो नाभेयस्य पादाः शरणम्। — पृ० ३७।

(३) नाभेयस्य तदा पदानि शरणं देवस्य दुःखच्छिद। — पृ० ७६।

मात्र इतना ही नहीं नाटक के अष्टम अङ्क में तो वे मकरन्द के द्वारा जैनधर्म के प्रसिद्ध एवं परमपवित्र पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार मन्त्र के स्मरण का भी निर्देश करते हैं।^१ उस नमस्कार मन्त्र के स्मरण के प्रभाव से न केवल उसके प्राण बच जाते हैं, बल्कि उसकी बलि देने वाला कापालिक स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।^२ इससे रामचन्द्रसूरि की जैनधर्म के नमस्कार मन्त्र के प्रति अनन्य निष्ठा भी प्रकट

१. परमेष्ठी नाम पवित्रं मन्त्रं स्मरामि। — यही, पृ० १४७।

२. पुनः पुरुषवपुर्मकरन्दाभिमुखं गत्वा प्रतिनिवृत्त्य च।

करवालेन कापालिकमभिहन्ति । — यही, पृ० १४८।

होती है। कृति के अन्तिम दशम अंक में भी उन्होंने नाभिपुत्र ऋषभदेव के स्मरण करने का निर्देश किया है।^३ इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि आचार्य ने कृति के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अपनी जैन परम्परा का निर्वाह किया है।

यहाँ स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आचार्य ने पार्श्व, महावीर आदि किसी अन्य तीर्थङ्कर की अपेक्षा प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव का ही चयन क्यों किया? वस्तुतः इसके पीछे आचार्य की एक गहन सूझ छिपी हुई है। मात्र यही नहीं, उन्होंने ऋषभदेव का चयन करके भी सम्पूर्ण कृति में कहीं भी उनके लिए ऋषभ शब्द का प्रयोग न करके नाभेय, नाभिसूनु, नाभिसमुद्भव जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। यहाँ स्वाभाविक रूप से यह भी जिज्ञासा हो सकती है कि उन्होंने भगवान् ऋषभदेव का चयन करके भी उनके लिए ऋषभ का प्रयोग न करके नाभेय या नाभिसूनु जैसे नामों का प्रयोग क्यों किया? यह तो सुनिश्चित है कि जैन परम्परा में ऋषभदेव को नाभिनन्दन, नाभेय आदि नामों से जाना जाता है, किन्तु इस विशिष्ट शब्द के चुनाव में भी आचार्य रामचन्द्रसूरि की एक दीर्घदृष्टि रही हुई है। यह सुविदित है कि ब्राह्मण परम्परा में नाभेय का अर्थ ब्रह्मा भी होता है, यद्यपि उसी परम्परा के ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में अष्टम अवतार के रूप में ऋषभ का निर्देश भी नाभिपुत्र के रूप में हुआ है। इस प्रकार आचार्य रामचन्द्रसूरि इस विशिष्ट शब्द का प्रयोग करके अपने इस नाटक को दोनों ही परम्पराओं के लिए ग्राह्य बना देते हैं, ताकि दर्शक और मंचन करने वाले दोनों ही अपनी-अपनी परम्परा के अनुरूप उसका अर्थ ग्रहण कर सकें। फिर भी यह सुस्पष्ट है कि नाभेय शब्द से कृतिकार का वाच्य भगवान् ऋषभदेव ही रहे हैं ब्रह्मा नहीं, क्योंकि कृतिकार को जब भी उनके सन्दर्भ में विशेषण देने का प्रश्न आया, उन्होंने उनके निवृत्तिप्रधान विरक्त स्वरूप का ही चित्रण किया है, जो ब्रह्माजी की अपेक्षा ऋषभदेव के साथ ही अधिक संगत सिद्ध होता है।^४

पुनः प्रस्तुत कृति में नाभेय और नाभिसमुद्भव के साथ-साथ एक स्थल पर सकलदेवताधि चक्रवर्ती नाभिसूनु^५ शब्द का प्रयोग भी किया है, जो पूर्णतः ऋषभदेव पर ही लागू होता है। नाभेय और नाभि-समुद्भव का अर्थ तो किसी अपेक्षा से ब्रह्मा हो सकता है, किन्तु नाभिसूनु शब्द तो मात्र ऋषभदेव के सन्दर्भ में ही

३. स्मरामि निष्ठितक्लेशं देवं नाभिसमुद्भवम् । — यही, पृ० १८५।

४. यः प्राप निवृत्तिं, क्लेशाननुभूय भवार्णवे । — पृ० १।

स्मरामि निष्ठित क्लेशं । — पृ० १८५।

५. सकलदेवताधिचक्रवर्ती नाभिसूनु। यही, पृ० १३७।

घटित होता है। जबकि ऋषभदेव के सन्दर्भ में तो नाभिपुत्र होने से तीनों ही शब्द सार्थक हैं। यहाँ नाभिसमुद्भव का अर्थ नाभिकुल समुद्भव ही है। फिर भी यह सत्य है कि उन्होंने नाभेय नाम के प्रयोग के द्वारा अपनी उस उदारदृष्टि का परिचय दिया है, जो जैनधर्म के अनेकान्तवाद पर स्थित है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत कृति में जहाँ ब्रह्मा का निर्देश हुआ है, वहाँ विधाता, स्वयम्भू जैसे शब्द का प्रयोग किया है।

मात्र यही नहीं, आचार्य रामचन्द्रसूरि ने इस नाटक में सर्वत्र जैनधर्म की अहिंसक दृष्टि का भी पूरी निष्ठा से परिपालन किया है। यद्यपि प्रस्तुत नाटक में अनेक प्रसङ्ग ऐसे हैं, जहाँ नरबली के हेतु समस्त व्यवस्थाएँ चित्रित की गई हैं। किन्तु आचार्य ने एक भी प्रसङ्ग पर नरबली, पशुबली को सम्भव नहीं होने दिया।^६

केवल इतना ही नहीं आचार्य ने स्पष्ट शब्दों में ऐसे हिंसक अनुष्ठानों की आलोचना भी की है, वे लिखते हैं—

अकूरं श्रेयसे कर्म क्रूरमश्रेयसे पुनः।

इति सिद्धे पथि क्रूरं श्रेयसे स्पृशतां भ्रमः।।

दूसरों को कष्ट न देनेवाले सत्कर्म का फल शुभ होता है, जबकि दूसरों को कष्ट देनेवाले असत्कर्म का फल अशुभ होता है। इस तरह की व्यवस्था के शास्त्रसिद्ध होने पर भी जो लोग शुभ फल की प्राप्ति हेतु असत्कर्म करते हैं, वे भ्रान्त ही हैं।^७

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत कृति में तीन देव मन्दिरों का चित्रण किया गया है— एक भगवान् ऋषभदेव का, दूसरा कामदेव का और तीसरा कात्यायनी देवी का। आचार्य ने बड़ी ही कुशलता के साथ कात्यायनी देवी के मन्दिर की वीभत्सता का, कामदेव के मन्दिर के सौन्दर्य का और ऋषभदेव के मन्दिर की शान्ति का चित्रण करके अव्यक्त रूप से अपनी वरेण्यता को इङ्गित कर दिया है। इस सन्दर्भ में उनके द्वारा किये गये विवरण प्रस्तुत हैं—

(अ) कात्यायनी के मन्दिर का स्वरूप

केतुस्तम्भविलम्बिमुण्डमभितः सान्द्रान्त्रमालाञ्जित

द्वारं शोणितपङ्किलाङ्गणमदन्मार्जारिभीष्मान्तरम् ।

६. यही पुस्तक, पृ० ११०, पृ० १४७, पृ० १८१।

७. यही, पृ० १०६।

गोपुच्छोत्थितदीपमश्रुकुहरक्रोडप्रलुप्तोत्वण-

व्यालं दर्दुरदाहधूमविधुरं कात्यायनीमन्दिरम् ।।

(ब) कात्यायनी देवी का स्वरूप

नेत्र-श्रोत्र-वरौष्ठ-बाहु-चरण-घ्राणादिभिः प्राणिनां,

मन्त्रैः क्लृप्तबलिर्वसारसकृतस्नानाऽन्त्रमालार्चिता।

कण्ठस्थोरगलिह्यमानबहलप्लीहाङ्गरागा गल-

द्रक्ताऽऽर्द्रार्द्रिनरेन्द्रकृत्तिरसनोत्तंसा मृडानी पुरः।।

भगवती कात्यायनी का यह मन्दिर ऐसा है जिसके ध्वज-स्तम्भ के चारों तरफ (बलिपशु के) मुण्ड लटकर रहे हैं, द्वार (बलि दिये गये पशुओं की खून से सनी हुई अतएव) चिपचिपी आँतडियों की माला से सुशोभित है और आन्तरिक भाग खून के कीचड़ से परिपूर्ण आङ्गन में मस्ती से घूमने वाली बिल्लियों के कारण अत्यन्त भयङ्कर है। इस मन्दिर के दीपस्तम्भों पर गोपुच्छाकार लौ वाले दीपक जल रहे हैं, पत्थरों (से बनी दीवारों) के छिद्रों में भयङ्कर (विषैले) साँप छिपे हुए हैं और नगाड़ों को तपाने हेतु जलायी गयी आग के धुएँ से यह मलिन (धूमिल) हो गया है।^८ पुनः भगवती कात्यायनी के स्वरूप का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं— भगवती कात्यायनी सामने दिखाई पड़ रही हैं। इन्हें पशुओं के नेत्र, श्रोत्र, प्रशस्त ओष्ठ, भुजा, घ्राण आदि अङ्ग मन्त्रोच्चारपूर्वक बलिरूप में समर्पित हैं, ये चर्बी के रस से गीली आँतडियों की माला से सुशोभित हैं, इनके शरीर पर तिल्लियों (प्लीहा) का अत्यधिक अङ्गराग (उबटन), जिन्हें गले में लिपटे हुए साँप चाट रहे हैं, लगा हुआ है और ये टपकाते हुए रक्त से अत्यन्त गीले गजचर्म की करधनी रूपी आभूषण से सुशोभित हैं।^९

कामदेव के मन्दिर का स्वरूप

स्फूर्जद्यावकपङ्कसङ्क्रमलसन्मध्यं जपासोदरै-

दूर्ध्वैः क्लृप्तपताकमाग्रकिसलैस्ताग्रीभवतोरणम् ।

कौसुम्भैर्घटितावचूलमभितो मत्तालिभिर्दामभिः,

सिन्दूरारुणिताङ्गणं गृहमिदं देवस्य चेतोभुवः।।

यह भगवान् कामदेव का मन्दिर है, जिसका आन्तरिक भाग चमकीले अलक्तक (महावर) के रस के प्रसार से चमकीला हो गया है, जिसके शिखर पर

८. यही पुस्तक, पृ० ६६-६७।

९. यही पुस्तक, पृ० ६८।

जपाकुसुम के समान गाढ़े लाल रंग की पताका लहरा रही है, तोरणद्वार आम्रपल्लवों से आच्छादित होने के कारण ताम्रवर्ण के प्रतीत हो रहे हैं, सब तरफ (मन्दिर को सजाने के लिए) केसरिया पताकाएँ लटक रही हैं, जिन पर उन्मत्त भ्रमरपंक्ति मँडरा रही है और आँगन सिन्दूर (के गिरकर फैलने) से लाल हो गया है।^{१०}

ऋषभदेव का चित्रण

कथमयं सकलदेवताधिचक्रवर्ती नाभिसूनुश्चैत्याभ्यन्तरमलङ्करोति?

(सर्वे प्रणमन्ति)

**भद्राम्भोजमृणालिनी, त्रिभुवनावद्यच्छिदाजाह्ववी,
लक्ष्मीयन्त्रणशृङ्खला, गुणकलावल्लीसुधासारणिः।
संसारार्णवनौर्विपत्तिलतिकानिखिंशयष्टिश्रिरं,
दृष्टिर्नाभिसुतस्य नः प्रथयतु श्रेयांसि तेजांसि च।।**

ये देवाधिदेव सकल देवों के चक्रवर्ती नाभिपुत्र भगवान् ऋषभदेव मन्दिर के मध्य भाग को किस प्रकार सुशोभित कर रहे हैं?

नाभिपुत्र भगवान् ऋषभदेव के दर्शन, जो कल्याणस्वरूप कमलों के लिए सरोवरंतुल्य, तीनों लोकों के पाप को नष्ट करने के लिए गङ्गासदृश, लक्ष्मी को नियन्त्रित रखने के लिए बेड़ी के समान, गुण और कलाओं के प्रसाररूपी अमृत के लिए प्रवाहस्वरूप, संसाररूपी समुद्र को पार करने के लिए नौकासदृश और विपत्तिलता के लिए खड्गस्वरूप हैं, हमारे लिए मङ्गलकारक और बलदायक हों।^{११}

यद्यपि प्रस्तुत कृति में नरबलि, पशुबलि की समर्थक तान्त्रिक कर्मकाण्डों का चित्रण अनेक स्थलों पर हुआ है, फिर भी रामचन्द्रसूरि ने एक भी स्थल पर न तो उनका अनुमोदन किया है और न उनके द्वारा उपलब्ध सिद्धि का चित्रण ही किया है, जिससे जनसामान्य की उनके प्रति आस्था उत्पन्न हो। अपितु प्रत्येक प्रसंग पर उनकी विफलता का ही चित्रण किया है। जैसा कि पूर्व में सूचित किया है— एक स्थल पर तो नमस्कारमन्त्र के अचिन्त्य प्रभाव के आगे न केवल उन तान्त्रिक साधनाओं की विफलता का सङ्केत किया गया है, अपितु उसमें स्वयं तान्त्रिक की मृत्यु दिखाकर उनके वीभत्स दुष्परिणामों को भी उजागर कर दिया गया है। पुनः जैसा कि हमने निर्देश किया है, रामचन्द्रसूरि ने ऐसी तान्त्रिक साधनाओं में की

१०. यही पुस्तक, पृ० १७७-१७८।

११. यही पुस्तक, पृ० १३७-३८।

जाने वाली नरबली आदि को क्रूरकर्म और ऐसे शास्त्र को क्रूरशास्त्र कहकर अपने अहिंसक जैन दृष्टिकोण का पोषण भी किया है।

इसी प्रकार उन्होंने भोगवादी जीवनदृष्टि की भी समालोचना की है। एक प्रसङ्ग में रामचन्द्रसूरि ने कामदेव की स्तुति के ब्याज से भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य और चन्द्र को कामदेव के वशीभूत होकर दुर्यश (अकीर्ति) का भागी होना दिखाया है—

जनमहितमहिम्नां विष्णु-शम्भु-स्वयम्भू-

हरि-हय-हिमधाम्नां दुर्यशोनाट्यबीजम् ।

हे कामदेव! आप तो लोकविश्रुत महिमा वाले भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य और चन्द्रदेव के दुर्यश के प्रसार के कारणभूत हैं।

कृति के प्रारम्भ में भी ब्रह्मा जी की कामवृत्ति का चित्रण करते हुए लिखते हैं—

एतां निसर्गसुभगां विरचय्य वेधाः

शङ्के स्वयं स भगवानभिलाषुकोऽभूत् ।

ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा इस निसर्गसुन्दरी की रचना करके स्वयं इसमें अनुरक्त हो गए।

इन संकेतों से यह स्पष्ट है कि आचार्य गमचन्द्रसूरि निवृत्तिमार्गी ब्रह्मचर्य-मूलक जैन जीवनदृष्टि को प्रधानता देते हैं।

यद्यपि रामचन्द्रसूरि के कौमुदीमित्रानन्द में प्रसङ्गानुकूल नारी के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण हुआ है, उसमें शृङ्गार की झलक भी दिखाई देती है। फिर भी, प्रस्तुत कृति में उन्होंने कहीं भी मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं किया है। शृङ्गार के उनके सारे वर्णन संयत और जैन श्रमण की मर्यादा के अनुकूल हैं। नायिका कौमुदी के पति के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं नायक मित्रानन्द की सच्चरित्रता, धर्मभोरुता और कर्तव्यनिष्ठा आदि ऐसे गुण हैं— जिससे यह सिद्ध हो जाता है रामचन्द्रसूरि ने प्रस्तुत कृति में जैन जीवन-मूल्यों के प्रति पूर्ण निष्ठा अभिव्यक्त की है।

विजयादशमी

१ अक्टूबर, १९९८

प्रो०सागरमल जैन

निदेशक (इमेस्टिस)

पार्श्वनाथ विद्यापीठ

वाराणसी

भूमिका

काव्य के मुख्यतः दो भेद स्वीकार किये गये हैं— 'दृश्यकाव्य' एवं 'श्रव्यकाव्य'— 'दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्'। दृश्यकाव्य वह है जो अभिनेय होता है। इसमें लोक की सुखदुःखात्मिका अनुभूतियों को अभिनय के माध्यम से मञ्च पर प्रदर्शित किया जाता है। दृश्यकाव्य की रचना में कवि का मुख्य उद्देश्य होता है सामाजिक को साक्षात् लोकोत्तर फल की प्राप्ति कराना। **अभिज्ञानशाकुन्तल, उत्तररामचरित** आदि नाटक दृश्यकाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। श्रव्य का अर्थ है श्रवणयोग्य अर्थात् काव्य की वह विधा जो अनभिनेय होती है और जिसका श्रवण या अध्ययन करके सहृदय आनन्दानुभूति करते हैं। **रघुवंश, नैषधीयचरित, कादम्बरी** आदि इसी कोटि में आते हैं।

काव्य की उपर्युक्त दोनों विधाओं में श्रव्यकाव्य की अपेक्षा दृश्यकाव्य उत्कृष्टतर होता है। यह अनुभवसिद्ध तथ्य है कि किसी वस्तु अथवा घटना के प्रत्यक्षदर्शन में जितना आनन्द है उतना उसके श्रवणमात्र में नहीं। इस दृष्टि से दृश्यकाव्य— नाट्य जैसी रसपेशलता श्रव्यकाव्य में कदापि सम्भव नहीं। संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने भी 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' कह कर दृश्यकाव्य की उत्कृष्टता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।

दृश्यकाव्य में अभिनेता में रामसीतादि अनुकार्यों के रूप का आरोप होने के कारण उसको 'रूपक' भी कहते हैं— 'तद्रूपारोपातु रूपकम्'। भरत, धनञ्जयप्रभृति नाट्याचार्यों ने रूपक के नाटकादि दश भेद स्वीकार किये हैं।

रूपक के दश भेद स्वीकार करने के पीछे धार्मिक भावना भी निहित थी। धनञ्जय ने अपने इष्टदेव विष्णु के दश अवतारों को दृष्टि में रख कर दश रूपक-भेदों का प्रतिपादन किया जिसका सङ्केत उन्होंने **दशरूपक** के मङ्गलाचरण में दिया है—

दशरूपानुकारेण यस्य माद्यन्ति भावकाः।

नमः सर्वविदे तस्मै विष्णवे भरताय च ॥ दशरूपक — १/२

धनञ्जय का ही अनुकरण करते हुए आचार्य रामचन्द्रसूरि ने जैन परम्परा के **आचाराङ्ग** से लेकर **दृष्टिवाद** पर्यन्त द्वादश अङ्गों का सम्बन्ध स्वोक्त द्वादश

रूपकभेदों के साथ स्थापित करते हुए मङ्गलाचरण प्रस्तुत किया—

चतुर्वर्गफलां नित्यं जैनीं वाचमुपास्महे ।

रूपैर्द्वादशभिर्विश्वं यथा न्याय्ये धृतं पथि ॥ नाट्यदर्पण — १/१

रामचन्द्र-प्रतिपादित द्वादश रूपकभेदों में से दश तो **दशरूपक** के समान ही हैं, दो अन्य भेद हैं— **नाटिका** एवं **प्रकरणी**। रामचन्द्र की इस मान्यता का आधार भरतमुनि का **नाट्यशास्त्र** है। भरतमुनि ने दश शुद्ध रूपकभेदों के अतिरिक्त दो सङ्कीर्ण भेदों का भी निरूपण किया है जिनकी रचना नाटक और प्रकरण के मिश्रण से होती है। सङ्कीर्णभेदप्रतिपादिका कारिका है—

अनयोश्च बन्धयोगादेको भेदः प्रयोक्तृभिर्ज्ञेयः ।

प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटीसंज्ञाश्रिते काव्ये ॥ नाट्यशास्त्र—१५/४७

इस कारिका की व्याख्या दो प्रकार से की जाती है। दशरूपककार धनञ्जय ने 'एको भेदः प्रयोक्तृभिर्ज्ञेयः' इस कारिकांश के आधार पर 'नाटिका' नामक केवल एक सङ्कीर्ण भेद स्वीकार करते हुए कुल एकादश रूपकभेदों का निरूपण किया है, तथापि उन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम शुद्ध रूपकभेदों के आधार पर 'दशरूपक' ही रखा है। जबकि रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने 'प्रख्यातस्त्वितरो वा' इस कारिकांश के आधार पर 'नाटिका' एवं 'प्रकरणी' नामक दो सङ्कीर्ण भेद माने हैं। प्रकरणी में चतुरङ्कत्वादि अन्य सभी धर्म तो नाटिकावत् ही होते हैं, किन्तु नायक राजादि न होकर प्रकरण के समान वणिक् आदि होते हैं और प्रकरण से इसी साम्य के आधार पर इसका नाम 'प्रकरणी' रखा गया है। वणिक् आदि के नायक होने के कारण 'प्रकरणी' में 'फल' भी राज्यप्राप्त्यादि न होकर नायकस्वभावानुकूल स्त्री-प्राप्ति, द्रव्यलाभादि ही होते हैं— "फलमपि महीलाभस्य वणिगादेरनुचितत्वात् स्त्रीप्राप्तिपुरस्सरं द्रव्यलाभादिकं द्रष्टव्यम् ।"^१

रूपकों के संख्या-निर्धारण विषयक उपर्युक्त विवाद को समाप्त करते हुए विश्वनाथ कविराज ने रूपकों की दश संख्या स्थिर कर दी। उन्होंने रामचन्द्रोक्त द्वादश रूपकभेदों में से 'नाटिका' एवं 'प्रकरणी' नामक दो भेदों को उपरूपकों में परिगणित कर लिया और शेष दश भेदों को ही रूपक की मान्यता दी।^२ कविराज का यही मत आज सर्वमान्य है।

१. **नाट्यदर्पण** (वृत्ति), पृ० २१७ (दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन)।

२. **साहित्यदर्पण**, ६/३-५।

संस्कृत नाट्यसाहित्य का विकास

संस्कृत नाट्यसाहित्य के विकास का मूल वेदों में ही निहित है। वैदिक साहित्य से लेकर अद्यावधि नाट्यसाहित्य के विकास की अजस्र धारा सतत प्रवहमान है। ऋग्वेद के पुरुरवा-उर्वशी-संवाद, इन्द्र-इन्द्राणी-संवाद, सरमा-पणी-संवाद, यम-यमी-संवाद इत्यादि स्थलों में नाट्य के बीज स्पष्टतः वर्तमान हैं, किन्तु इस काल की कोई स्वतन्त्र नाट्य-रचना उपलब्ध नहीं है। लौकिक साहित्य के आदि काव्यों रामायण और महाभारत में अनेकत्र उल्लिखित नट, नर्तक, नायक, गायक, शैलूष आदि शब्द प्रत्यक्षतः नाट्य से सम्बद्ध हैं। रामायण के उल्लेखानुसार नाटकों में पुरुष पात्रों के साथ स्त्रियाँ भी अभिनय किया करती थीं—

शैलूषाश्च तथा स्त्रीभिर्यान्ति। रामायण, २/८३/१५

महाभारत के खिलपर्व हरिवंशपुराण में अध्याय ९१ से ९६ तक यह उल्लेख है कि वज्रनाभ नामक राक्षस की नगरी में रामायण एवं कौबेररम्भाभिसार नामक नाटक का अभिनय किया गया था।

‘महर्षि पाणिनि’ (५०० ई०पू०) की अष्टाध्यायी के दो सूत्रों— ‘पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः’ (४/३/११०) एवं ‘कर्मन्दकृशाश्वादिनिः’ (४/३/१११) में ‘शिलालि’ एवं ‘कृशाश्च’ नामक दो नटसूत्रकारों का स्पष्ट निर्देश है। इसके अतिरिक्त पाणिनि ने ‘जाम्बवतीजय’ नामक एक नाटक की भी रचना की थी जिसका उल्लेख निम्नलिखित श्लोक में किया गया है —

स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रुद्रप्रसादतः।

आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्बवतीजयम्।।

अष्टाध्यायी पर महाभाष्य के रचयिता ‘महर्षि पतञ्जलि’ (लगभग १८० ई०पू०) ने भी कंसवध और बलिबन्ध नामक नाटकों के अभिनय का उल्लेख किया है—

ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति प्रत्यक्षं च बलिर्बध्नन्तीति।

महाभाष्य, ३/२/१११

उपर्युक्त विवरण से इतना तो स्पष्ट है कि वैदिक काल से लेकर रामायण, महाभारत के काल तक नाट्यकला का पूर्ण विकास हो चुका था और महत्वपूर्ण अवसरों पर नाटकों का अभिनय भी किया जाता था, परन्तु उन नाटकों को ग्रन्थ-रूप में निबद्ध किया गया था अथवा नहीं, यह निश्चय कर पाना सम्भव नहीं है,

क्योंकि अभी तक उस काल की कोई भी नाट्यरचना उपलब्ध नहीं हो सकी है। संस्कृत के उपलब्ध नाटकों में सर्वाधिक प्राचीन नाटक महाकवि 'भास' के हैं। महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने सन् १९१२ ई० में त्रिवेन्द्रम् के समीप भास के तेरह नाटकों को खोज निकाला। विभिन्न साक्ष्य महाकवि भास का स्थितिकाल ईसा-पूर्व चतुर्थ शताब्दी प्रमाणित करते हैं। इस प्रकार भास 'नाट्यशास्त्रकार' आचार्य भरत (१०० ई०पू०) से पूर्ववर्ती हैं। भास के नाटकों में **स्वप्नवासवदत्त**, **प्रतिज्ञायौगन्धरायण** और **दरिद्रचारुदत्त**— ये तीन विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रथम दो नाटकों में नायक वत्सराज उदयन है जो अपने सौन्दर्य और गुणों के कारण कई शताब्दियों तक चर्चा का विषय रहा है और अनेक कवियों की रचनाओं में प्रमुख पात्र के रूप में चित्रित है। **दरिद्रचारुदत्त** में दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त और गुणग्राहिणी वाराङ्गना वसन्तसेना के आदर्श प्रेम का वर्णन है। **प्रतिमा** और **अभिषेक** नाटकों की कथावस्तु रामायण पर आधारित है। **पञ्चरात्र**, **मध्यमव्यायोग**, **दूतघटोत्कच**, **ऊरुभङ्ग**, **कर्णभार** और **दूतवाक्य** — इन छः रूपकों की कथावस्तु का आधार महाभारत है। इसके अतिरिक्त **बालचरित** भगवान् श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से सम्बन्धित है और **अविमारक** एक प्राचीन आख्यायिका का नाटकीय रूप है जिसका सङ्केत वात्स्यायन के **कामसूत्र** में किया गया है। इसमें अविमारक और राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी के प्रेम का अत्यन्त सरस और मार्मिक चित्रण किया गया है। भास के नाटक सरस और अभिनेय तो अवश्य हैं, किन्तु इनमें नाट्यतत्त्वों का पूर्ण समावेश नहीं हो पाया है और साथ ही भरत से पूर्ववर्ती होने के कारण इनमें अनेक स्थलों पर नाट्यशास्त्रीय नियमों के अनुपालन का अभाव दृष्टिगत होता है। इस दृष्टि से भास के नाटकों को विकासयुग की रचनाएँ कहा जा सकता है।

भास के पश्चात् संस्कृतजगत् के मूर्धन्य महाकवि 'कविकुलगुरु कालिदास' ने अपने तीन अत्युत्कृष्ट रूपकों **मालविकाग्निमित्र**, **विक्रमोर्वशीय** और **अभिज्ञानशकुन्तल** की रचना कर नाट्यसाहित्य के विकास में अद्वितीय योगदान दिया। इन रूपकों में **विक्रमोर्वशीय** पाँच अङ्कों का एक 'त्रोटक' है जिसमें पुरुवंशीय राजा पुरुरवा और अप्सरा उर्वशी की प्रणयकथा वर्णित है। इसका उपजीव्य ऋग्वेद का 'पुरुरवा-उर्वशी-संवाद' है। **मालविकाग्निमित्र** एक नाटक है जिसमें शुङ्गवंशीय राजकुमार अग्निमित्र और अवन्ति देश की राजकुमारी मालविका की प्रेमकथा का हृदयाह्लादक चित्रण है। **अभिज्ञानशकुन्तल** भी एक नाटक है जिसका उपजीव्य **महाभारत** के आदिपर्व का शकुन्तलोपाख्यान है जिसमें पुरुवंशीय राजा दुष्यन्त

और शकुन्तला की प्रणयकथा वर्णित है। कालिदास ने अपनी कल्पनाशक्ति से मूलकथा में यथोचित परिवर्तन कर उसे अत्यन्त सरस नाटकीय रूप प्रदान किया है। आलोचकों ने मुक्तकण्ठ से इसे नाट्यसाहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना स्वीकार किया है — ‘काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला’।

कालिदास के पश्चात् महाकवि ‘अश्वघोष’ का नाम आता है। ये कुषाण-सम्राट् कनिष्क (७८ ई०) के गुरु एवं राजकवि थे और बौद्धमतावलम्बी थे। ‘ल्यूडर्स’ ने १९१० ई० में इनके तीन रूपकों का पता लगाया था, किन्तु अभी तक एकमात्र **शारिपुत्रप्रकरण** उपलब्ध हो पाया है। इसमें ९ अङ्क हैं और इसकी रचना का उद्देश्य मूलतः बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार करना है। अश्वघोष के पश्चात् महाकवि ‘शूद्रक’ की रचना **मृच्छकटिक** उपलब्ध होती है। शूद्रक का स्थितिकाल अधिकांश विद्वानों के अनुसार ईसा की दूसरी शताब्दी है। **मृच्छकटिक** १० अङ्कों का एक प्रकरण है जिसमें भासकृत **दरिद्रचारुदत्त** की कथा ही विस्तृत रूप में वर्णित है। इसमें कवि ने दरिद्र ब्राह्मण **चारुदत्त** और गणिका **वसन्तसेना** के निश्छल प्रेम को केन्द्र में रख कर तत्कालीन सामाजिक दशा का अत्यन्त स्वाभाविक और यथार्थ चित्रण किया है।

पाँचवीं शताब्दी में ‘विशाखदत्त’ नाम के सुप्रसिद्ध नाटककार हुए। इनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं जिनमें सर्वाधिक ख्याति **मुद्राराक्षस** नाटक की है। इस नाटक में मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त (३२२-२९८ ई०पू०) के प्रधानमन्त्री चाणक्य और नन्दनरेश धननन्द के महामात्य राक्षस के कूटनीतिक दाँव-पेचों का बड़ा ही रोचक और सजीव वर्णन है। दूसरी कृति **देवीचन्द्रगुप्त** में गुप्तवंशीय नरेश रामगुप्त की दुर्बलता और उसके अनुज चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८०-४१४ ई०) की वीरता एवं दोनों के पारस्परिक संघर्ष का अत्यन्त रोचक नाटकीय वर्णन है। तीसरी कृति **अभिसारिकावञ्चितक** में लोकविश्रुत वत्सराज उदयन के वृत्त का सरस नाटकीय वर्णन किया गया है। विशाखदत्त की उक्त सभी रचनाओं का आधार ऐतिहासिक इतिवृत्त है।

सातवीं शताब्दी में कन्नौजनरेश ‘हर्षवर्धन’ (६०६-६४८ ई०) ने तीन रूपकों **प्रियदर्शिका**, **रत्नावली** और **नागानन्द** की रचना कर विपुल ख्याति अर्जित की। प्रथम दो रचनाएँ **प्रियदर्शिका** और **रत्नावली** उदयन के प्रणयवृत्त से सम्बद्ध चार-चार अङ्कों की नाटिकाएँ हैं और अन्तिम **नागानन्द** बौद्ध अवदान पर आधृत पाँच अङ्कों का शान्तरसप्रधान नाटक है।

आठवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कन्नौज नरेश 'यशोवर्मा' के आश्रित 'भवभूति' नामक प्रख्यात नाटककार हुए। स्वयं यशोवर्मा ने भी **रामाभ्युदय** नामक नाटक की रचना की जो दुर्भाग्यवश सम्प्रति अनुपलब्ध है। महाकवि भवभूति की प्रतिष्ठा नाट्यजगत् में कालिदास के बाद सर्वाधिक है। इनकी तीन कृतियों में सर्वोत्कृष्ट **उत्तररामचरित** नामक सात अङ्कों का नाटक है जिसमें रामकथा का उत्तरार्ध वर्णित है। इसमें भवभूति ने बड़े मनोयोग से एकमात्र 'करुण रस' को ही सभी रसों का मूल सिद्ध किया है— 'एको रसः करुण एव।' दूसरे नाटक **महावीरचरित** में रामकथा का पूर्वार्ध वर्णित है। तीसरी कृति **मालतीमाधव** दश अङ्कों का विशाल प्रकरण है। इसमें मालती और माधव की प्रणयकथा का अत्यन्त मनोहारी चित्रण है। भवभूति के पश्चात् 'भट्टनारायण' ने **महाभारत** पर आधारित कथावस्तु वाले प्रसिद्ध नाटक **वेणीसंहार** की रचना की। यह नाटकीय संविधान की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि की रचना है और यही कारण है कि धनञ्जय, विश्वनाथप्रभृति ग्रन्थकारों ने इससे अनेक उद्धरण दिये हैं। आठवीं शताब्दी के ही एक अन्य प्रख्यात नाटककार 'मायूराज' (अनङ्गहर्ष) ने उदयन और वासवदत्ता की कथा पर आश्रित एक उत्कृष्ट नाटक **तापसवत्सराज** की रचना की। मायूराज के ही एक अन्य नाटक **उदात्तराघव** का उल्लेख आनन्दवर्धन, राजशेखर, धनिकप्रभृति आचार्यों ने अनेकशः किया है, किन्तु रामकथाश्रित यह नाटक दुर्भाग्यवश सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

नौवीं शताब्दी में सुविख्यात नाटककार 'मुरारि' ने रामकथा पर आधृत सात अङ्कों वाले **अनर्घराघव** नामक उत्कृष्ट नाटक की रचना की, किन्तु इस नाटक में अभिनेयता की अपेक्षा काव्यात्मक चमत्कार का ही प्राधान्य है। नौवीं शताब्दी के ही उत्तरार्ध में काव्यमीमांसाकार 'यायावरीय राजशेखर' (८८०-९२० ई०) ने **बालरामायण**, **बालभारत**, **कर्पूरमञ्जरी** और **विशालभञ्जिका**— इन चार महत्वपूर्ण रूपकों की रचना की। **बालरामायण** राजशेखर का सर्वोत्तम नाटक है जिसके दश अङ्कों में रामकथा को भव्य नाटकीय रूप दिया गया है। **बालभारत** महाभारत की कथा का विस्तृत नाटकीय रूप था, किन्तु दुर्भाग्य से अभी तक इसके केवल दो अङ्क उपलब्ध हो सके हैं। **कर्पूरमञ्जरी** चार जवनिकान्तरों में विभक्त प्राकृत भाषा में लिखित 'सट्टक' (उपरूपकभेद) है और **विशालभञ्जिका** चार अङ्कों की संस्कृत में निबद्ध नाटिका है। राजशेखर के रूपकों में लम्बे-लम्बे संवादों और शार्दूलविक्रीडित जैसे विशाल छन्दों का बाहुल्य होने से उनमें अभिनयपक्ष गौण और काव्यात्मक चमत्कार प्रधान है। राजशेखर के ही समकालीन और कन्नौज नरेश

महीपाल के सभापण्डित कवि 'क्षेमीश्वर' ने **चण्डकौशिक** और **नैषधानन्द** नामक दो नाटकों का प्रणयन किया। इनमें सत्यहरिश्चन्द्र के जीवनचरित पर आधारित नाटक **चण्डकौशिक** की विशेष प्रसिद्धि है।

दशवीं शताब्दी में केरलवासी कवि 'शक्तिभद्र' ने तीन नाटकों की रचना की जिनमें से केवल एक **आश्चर्यचूडामणि** सम्प्रति पूर्ण रूप में उपलब्ध है। नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि यह दक्षिण देश में रचित सर्वप्रथम नाटक था। इसके पूर्व दक्षिण में किसी नाटक की रचना नहीं हुई थी। इस प्रकार शक्तिभद्र को दक्षिण का आद्य नाटककार होने का गौरव प्राप्त है। इनका दूसरा नाटक **वीणावासवदत्ता** अपूर्ण रूप में उपलब्ध है, जबकि तीसरा नाटक **उन्मादवासवदत्ता** अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। शक्तिभद्र से कुछ परवर्ती केरल प्रदेशस्थ ट्रावनकोर राज्य के महोदय नामक प्रान्त के राजा 'कुलशेखर वर्मा' ने **तपतीसंवरण** और **सुभद्राधनञ्जय** नामक दो नाटकों की रचना की। **तपतीसंवरण** में छः अङ्क हैं जिनमें कुरु के पिता 'संवरण' तथा माता 'तपती' का चरित वर्णित है। यह कथा **महाभारत** के आदिपर्व में आयी है। **सुभद्राधनञ्जय** के पाँच अङ्कों में धनञ्जय (अर्जुन) द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा के हरण की कथा वर्णित है। इसका भी उपजीव्य महाभारत ही है।

ग्यारहवीं शताब्दी में चन्देलवंशीय नरेश कीर्तिवर्मा के सभापण्डित कवि 'कृष्णमिश्र' ने **प्रबोधचन्द्रोदय**¹ नामक 'प्रतीक नाटक' की रचना की। प्रतीक नाटकों एवं सामान्य नाटकों के लक्षण में कोई भेद नहीं है, अपितु इनकी 'प्रतीक'- इस विशेष संज्ञा का कारण यह है कि इनके पात्र श्रद्धा, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, मोह प्रभृति अमूर्त पदार्थों के प्रतीक हुआ करते हैं। कुछ प्रतीक नाटकों में मूर्त और अमूर्त दोनों का मिश्रण भी है। प्रतीक नाटकों का लेखन कब प्रारम्भ हुआ, यह निर्धारित कर पाना सम्भव नहीं। मध्य एशिया से बौद्ध नाटकों के जो त्रुटित अंश प्राप्त हुए हैं उनमें कतिपय अंश प्रतीक नाटक के भी हैं। इससे प्रतीत होता है कि प्रतीक नाटकों के लेखन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। जिस हस्तलिखित प्रति में अश्वघोष का **शारिपुत्रप्रकरण** उपलब्ध हुआ है उसी में इस प्रतीक नाटक के भी अंश उपलब्ध हुए हैं, अतः निश्चयपूर्वक यह तो नहीं कहा जा सकता कि यह कृति अश्वघोष की है अथवा नहीं, किन्तु इतना अवश्य स्पष्ट है कि प्रतीक नाटकों के लेखन की परम्परा अतिप्राचीन थी जो कालान्तर में किसी कारणवश विच्छिन्न हो गयी। पुनः ग्यारहवीं

१. निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई से दो टीकाओं सहित प्रथमतः प्रकाशित।

शताब्दी में कृष्णमिश्र ने **प्रबोधचन्द्रोदय** की रचना कर इस परम्परा को पुनरुज्जीवित करने का श्लाघनीय कार्य किया। इस नाटक में विवेक, मोह, दम्भ, अहङ्कार-प्रभृति अमूर्त पात्रों के सजीव संवादों के माध्यम से 'अद्वैतवेदान्त' तथा 'विष्णुभक्ति' का सुन्दर समन्वय किया गया है। ग्यारहवीं शताब्दी के ही अन्त में १०८० ई० के आस-पास **विक्रमाङ्कदेवचरित** महाकाव्य के रचयिता महाकवि 'विल्हण' ने **कर्णसुन्दरी**^१ नामक रोचक नाटिका की रचना की। इसमें 'अणहिलवाड' के राजा कर्णदेव त्रैलोक्यमल्ल (१०६४-१०९४ ई०) के वृद्धावस्था में कर्णाटनरेश की पुत्री के साथ विवाह का नाटकीय वर्णन है। नाटिका का कथानक राजशेखर की **विन्दशालभञ्जिका** से और शैली **रत्नावली** से प्रभावित है।

बारहवीं शताब्दी के मध्यभाग (लगभग ११३०-११८० ई०) में काव्यानुशासनकार आचार्य हेमचन्द्र के पट्टशिष्य और **नाट्यदर्पण** जैसे महत्त्वपूर्ण नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ के रचयिता आचार्य 'रामचन्द्र' ने कुल दश रूपकों की रचना की। इन रूपकों में **नलविलास**, **सत्यहरिश्चन्द्र**, **यादवाभ्युदय**, **राघवाभ्युदय** और **रघुविलास**— ये पाँच नाटक; **कौमुदीमित्रानन्द**, **मल्लिकामकरन्द** और **रोहिणीमृगाङ्क** — ये तीन प्रकरण— **निर्भयभीम** व्यायोग और **वनमाला** चार अङ्कों की नाटिका हैं। **नाट्यदर्पण** के उद्धरण से प्रतीत होता है कि **वनमाला** नाटिका में नल-दमयन्ती का चरित वर्णित है, जिसका उपजीव्य महाभारत का **नलोपाख्यान** है। रामचन्द्र के आश्रयदाता चालुक्यनरेश कुमारपाल के परवर्ती गुर्जरनरेश अभयदेव के सभाकवि 'यशःपाल' ने **मोहराजपराजय**^२ नामक सुविख्यात 'प्रतीक नाटक' की रचना की। यह कृष्णमिश्र के **प्रबोधचन्द्रोदय** से पूर्ण प्रभावित शान्तरस-प्रधान नाटक है।

तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'वेदान्तदेशिक' (१२६८-१३६९ ई०) ने दश अङ्कों में विभक्त **सङ्कल्पसूर्योदय**^३ नामक प्रतीक नाटक की रचना की। वेदान्तदेशिक विशिष्टाद्वैतवादी रामानुजाचार्य के मत को प्रतिष्ठित करने वाले आचार्य 'वेङ्कटनाथ' की ही उपाधि है। **सङ्कल्पसूर्योदय** में 'मोह' को पराजित कर 'ज्ञान' के उत्कर्ष का सरस नाटकीय वर्णन किया गया है। तेरहवीं शताब्दी में ही सुप्रसिद्ध अलङ्कारशास्त्रीय ग्रन्थ **चन्द्रालोक** के प्रणेता 'पीयूषवर्ष जयदेव' ने

१. काव्यमाला से प्रकाशित (ग्रन्थाङ्क ७)।

२. गायकवाड़ ओरियेण्टल सीरीज, बड़ौदा से १९३० में प्रकाशित (ग्रन्थाङ्क ८)।

३. अङ्गार लाइब्रेरी, मद्रास से १९४८ में प्रकाशित।

रामकथाश्रित सात अङ्कों के उत्कृष्ट नाटक **प्रसन्नराघव** की रचना की। जयदेव सम्भवतः मिथिलावासी थे और इनके माता-पिता का नाम सुमित्रा और महादेव था। ये गीतगोविन्दकार जयदेव से सर्वथा भिन्न हैं, क्योंकि गीतगोविन्दकार जयदेव भोजदेव और रामादेवी के पुत्र थे और बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विद्यमान बङ्गनरेश लक्ष्मणसेन के सभाकवि थे। तेरहवीं शताब्दी की ही एक अन्य महत्त्वपूर्ण रचना है— **वृषभानुजा** नाटिका।^१ इसके रचयिता 'मथुरादास' गङ्गा के तीरस्थ सुवर्णशेखर नामक स्थान के कायस्थ थे। इस नाटिका में राधा-कृष्ण के प्रेम का मनोहारी चित्रण किया गया है।

चौदहवीं शताब्दी में **साहित्यदर्पण** के प्रणेता 'विश्वनाथ कविराज' ने **चन्द्रकला**^२ एवं **प्रभावतीपरिणय** नामक दो नाटिकाओं की रचना की। इन दोनों रचनाओं का उल्लेख उन्होंने **साहित्यदर्पण** में किया है। **चन्द्रकला** हर्ष की **रत्नावली** को आदर्श मानकर लिखित मनोरम नाटिका है जिसकी भाषा और वर्ण्यविषय दोनों सरल और रोचक हैं। अभिनेयता की दृष्टि से भी यह अत्युत्तम रचना है। मिथिला के कर्णाटवंशीय नरेश हरिसिंह देव (१२७५-१३२४ ई०) के आश्रित महाकवि 'ज्योतिरीश्वर' ने सम्भवतः चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में **धूर्तसमागम** नामक प्रख्यात प्रहसन की रचना की। यह रचना ऐतिहासिक तथ्यों की उपलब्धि के कारण भी अति महत्त्वपूर्ण है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में जैनकवि नयचन्द्र ने **रम्भामञ्जरी**^३ नामक 'सट्टक' की रचना की जिसमें काशीनरेश जयचन्द्र द्वारा रम्भा नाम की सुन्दरी से विवाह की विचित्र कथा वर्णित है। इसमें चार के स्थान पर केवल तीन 'जवनिकान्तर' (सट्टक के अङ्कों का नामविशेष) हैं जो नाट्यशास्त्रीय नियम के विरुद्ध हैं और इसमें कहीं-कहीं संस्कृत के भी पद्य हैं।

सोलहवीं शताब्दी में सुविख्यात वैष्णव साधक महाप्रभु चैतन्यदेव के पार्श्व शिवानन्दसेन के पुत्र परमानन्ददास ने, जिन्हें चैतन्यदेव ने 'कर्णपूर' उपाधि प्रदान की थी, **चैतन्यचन्द्रोदय** नामक प्रतीक नाटक की रचना की। जगन्नाथ-क्षेत्र के अधिपति गजपति प्रतापरुद्र की आज्ञा से १५७९ ई० में लिखित इस नाटक में

१. काव्यमाला से प्रकाशित (ग्रन्थाङ्क २६)।
२. काशी संस्कृत ग्रन्थमाला (सं० १७७) में चौखम्भा कार्यालय द्वारा १९३७ में प्रकाशित।
३. निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई से १८८९ में प्रकाशित।

चैतन्यदेव के जीवन की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की गयी है। दश अङ्कों में विभक्त इस नाटक की भाषा अत्यन्त सरल और सरस है तथा इसमें आदि से अन्त तक प्रासादिकता वर्तमान है। चैतन्य के सिद्धान्तों के परिज्ञान के लिए यह नाटक अत्यन्त उपयोगी है।

सत्रहवीं शताब्दी में भी अनेक महत्त्वपूर्ण रूपकों का प्रणयन हुआ। इसी शताब्दी के मध्य में वर्तमान कालीकट के राजा के सभापण्डित 'उद्दण्ड' कवि ने **मल्लिकामारुत**^१ नामक प्रकरण का प्रणयन किया। इस प्रकरण का कथानक **मालतीमाधव** के समान है। कालीकट के ही राजा मानवेद (१६५९-१६६२ ई०) के सभापण्डित कवि 'रुद्रदास' ने **चन्द्रलेखा**^२ नामक 'सट्टक' की रचना की जिसमें राजा मानवेद और अङ्गदेश की राजकुमारी चन्द्रलेखा के विवाह-प्रसङ्ग का अत्यन्त रोचक वर्णन किया गया है। यह एक सरस और सुन्दर सट्टक है जिसमें अङ्गीरस शृङ्गार के अतिरिक्त अब्दुत आदि अन्य रसों का भी स्फुट परिपाक हुआ है। मिथिला के कवि 'गोकुलनाथ' द्वारा १६९३ ई० में विरचित प्रतीक नाटक **अमृतोदय**^३ बड़ा ही पाण्डित्यपूर्ण है। श्रुति, आन्वीक्षिकी, कथा, पतञ्जलि, जाबालि आदि पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से आत्मज्ञान का उदय दिखलाना ही इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है। मिथिला के ही शैव कवि 'हरिहर' द्वारा रचित **भर्तृहरिनिवेद**^४ अत्यन्त शिक्षाप्रद प्रतीक नाटक है। इसमें राजा भर्तृहरि के वैराग्य की प्रसिद्ध कथा का वर्णन है।

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तञ्जौर के राजा शाहजी (१६८४-१७१० ई०) और शरभोजी (१७११-१७२० ई०) के प्रधानमन्त्री 'आनन्दरायमखी' ने दो प्रतीक नाटकों **विद्यापरिणयन** तथा **जीवानन्दन**^५ की रचना की। सात अङ्कों में विभक्त **विद्यापरिणयन** में अद्वैत-वेदान्त और शृङ्गार रस का मञ्जुल सामञ्जस्य दिखलाया गया है। शिवभक्ति द्वारा मुक्तिलाभ के प्रतिपादन में ही नाटक का मुख्य प्रयोजन निहित है। **जीवानन्दन** में भी सात अङ्क हैं। इसमें आयुर्वेद एवं अध्यात्मवेद के मान्य तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है। इसी शताब्दी के पूर्वार्ध में संस्कृत

१. जीवानन्द विद्यासागर द्वारा प्रकाशित।
२. भारतीय विद्या ग्रन्थावली, मुम्बई से १९४५ में प्रकाशित (ग्रन्थाङ्क ६)।
३. काव्यमाला (ग्रन्थाङ्क ५९), १८९७ में प्रकाशित।
४. वही (ग्रन्थाङ्क २९) १८९२ में प्रकाशित।
५. अड्यार लाइब्रेरी, चेन्नई से १९५० में प्रकाशित।

आलोचनाशास्त्र के मर्मज्ञ विश्वेश्वर पण्डित ने **नवमालिका** नाटिका तथा **शृङ्गारमञ्जरी** सट्टक का प्रणयन किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में देश में राष्ट्रीय चेतना की जागृति ने संस्कृत लेखकों के चिन्तन की भी दिशा बदल दी, परिणामतः इस काल की नाट्य रचनाओं में मुख्यतः राष्ट्रप्रेम की भावना ही मुखरित हुई है। इन रचनाओं में प्रमुख हैं— पण्डित अम्बिकादत्त व्यास (१८५०-१९०० ई०) कृत **सामवत**; मूलशङ्कर मणिकलाल याज्ञिककृत **छत्रपतिसाम्राज्य**, **प्रतापविजय** और **संयोगितास्वयंवर** तथा हरिदास सिद्धान्तवागीशकृत **मेवाड़प्रताप**, **बङ्गीयप्रताप**, **विराजरोजिजी**, **कंसवध**, **जानकीशविक्रम** और **शिवाजीचरित**।

उपरिनिर्दिष्ट नाट्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त नाट्यसाहित्य के विकासक्रम में अनेक अप्रसिद्ध ग्रन्थों का भी प्रणयन हुआ। उनमें से अनेक ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं और अनेक ऐसे हैं जिनका अभी तक प्रकाशन नहीं हो पाया है। ऐसे रूपकों का विस्तरभय से परिचय प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है।^१

कवि-परिचय

कौमुदीमित्रानन्द प्रकरण के रचयिता महाकवि रामचन्द्रसूरि चालुक्य नरेशों जयसिंह सिद्धराज (१०९३-११४३ ई०) और कुमारपाल (११४३-११७२ ई०) के शासनकाल में वर्तमान थे। संस्कृत-साहित्य के विकास में गुजरात का विशेष योगदान रहा है और गुजरात के चालुक्यवंशीय नरेशों के ११वीं से १४वीं शती तक के समय को इस दृष्टि से स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इस काल में चालुक्य राजधानी अणहिलपट्टन समस्त देश के विद्वानों का अतिप्रिय केन्द्र बन गयी थी। यद्यपि अणहिलपट्टन के राजा शैवमतावलम्बी थे और स्वयं के लिए 'उमापतिलब्धप्रसाद' उपाधि का प्रयोग करते थे, तथापि उनके राज्य में पर्याप्त धार्मिक सहिष्णुता थी और उनकी राजसभा को ज्ञानदेव, सोमेश्वरपुरोहित, दामोदरपण्डित, महाकवि विल्हण आदि शैवाचार्यों के साथ-साथ शान्तसूरि, अजयदेवसूरि, हेमचन्द्रसूरि प्रभृति जैनाचार्यों ने भी अलंकृत किया। राजा कुमारपाल द्वारा जैनाचार्य हेमचन्द्रसूरि का शिष्यत्व ग्रहण करना भी उनकी धार्मिक सहिष्णुता का प्रमाण है।

१. विशेष अध्ययन हेतु इतिहास-ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

महाकवि रामचन्द्रसूरि काव्यानुशासनकार आचार्य हेमचन्द्र के पट्टशिष्य थे। जैनाचार्य प्रभावचरितसूरिप्रणीत **प्रभावकचरित** (१२६६ई०) से ज्ञात होता है कि आचार्य हेमचन्द्र ने जयसिंह सिद्धराज के काल में ही उन्हें अपना पट्टशिष्य घोषित कर दिया था।^१ स्वयं रामचन्द्रसूरि ने **कौमुदीमित्रानन्द**, **नलविलास**, **सत्यहरिश्चन्द्र**, **निर्भयभीमव्यायोग** आदि कृतियों में आचार्य हेमचन्द्र को अपना गुरु बताया है—

श्रीमदाचार्यहेमचन्द्रस्य शिष्येण रामचन्द्रेण।^२

श्रीमदाचार्यहेमचन्द्रस्य शिष्यस्य प्रबन्धशतकर्तुर्महाकवेः रामचन्द्रस्य भूयांसः प्रबन्धाः।^३

महाकवि रामचन्द्र के जन्मकाल और स्थान के विषय में निर्णय कर पाना सम्भव नहीं है, क्योंकि स्वयं उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों की ही भाँति अपने जन्म, वंश, माता-पिता आदि के सम्बन्ध में कोई निर्देश नहीं किया है और न ही इस सम्बन्ध में जानकारी के लिए कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध है, तथापि चूँकि ये चालुक्य शासकों जयसिंह सिद्धराज (१०९३-११४३ई०) और कुमारपाल (११४३-११७२ ई०) के काल में वर्तमान थे, अतः इनका आविर्भाव काल १२वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध मान लेने में कोई अनौचित्य नहीं।

महाकवि रामचन्द्र नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के धनी थे। वे तत्काल पद्यरचना में पारङ्गत (आशुकवि) थे। कहा जाता है कि एक बार महाराज जयसिंह सिद्धराज ने अपने सभासदों से प्रश्न किया कि ग्रीष्म ऋतु में दिन बड़े क्यों हो जाते हैं? अन्य कोई सभासद इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर न दे सका। उस समय रामचन्द्र भी सभा में उपस्थित थे। उन्होंने इस प्रश्न का स्तुतिपरक पद्यमय उत्तर इस प्रकार दिया—

देव! श्रीगिरिदुर्गमल्ल भवतो दिग्जैत्रयात्रोत्सवे

धावद्वीरतुरङ्गनिष्ठुरखुरक्षुण्णक्षमामण्डलात् ।

१. प्रभावकचरित, २२/१२९-२३।

२. कौमुदीमित्रानन्द, पृ० १।

३. निर्भयभीमव्यायोग, पृ० १, (पार्श्वनाथ विद्यापीठ प्रकाशन, १९९६)।

वातोद्धतरजोमिलत्सुरसरित्सञ्जातपङ्कस्थली-

दूर्वाचुम्बनचञ्चुरा रविहयास्तेनातिवृद्धं दिनम् ॥^१

अर्थात्, हे महाराज! आपकी दिग्विजय यात्रा के समय सैनिकों के शक्तिशाली अश्वों के कठोर खुरो से उड़ाई गयी धूलि के आकाश पर पहुँचने से वहाँ बने कीचड़ में दूब (घास) निकल आयी है जिसे खाने के लिए सूर्य के रथ में जुते घोड़े रुक जाते हैं और उन्हें गन्तव्य तक पहुँचने में विलम्ब हो जाता है। यही कारण है कि ग्रीष्म ऋतु में दिन बड़े हो जाते हैं। महाराज इस उत्तर से अत्यन्त प्रसन्न हुए। इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर राजा से अणहिलपट्टन नगर के तत्क्षण वर्णन का आदेश प्राप्तकर महाकवि ने अत्यल्प काल में ही नगर का उत्कृष्ट पद्यबद्ध वर्णन कर डाला—

एतस्यास्य पुरस्य पौरवनिताचातुर्यतानिर्जिता

मन्ये हन्त! सरस्वती जडतया नीरं वहन्ती स्थिता ।

कीर्तिस्तम्भमिषोच्चदण्डरुचिरामुत्सृज्य बाहोर्बला-

तन्त्रीकागुरुसिद्धभूपतिसरस्तुम्बीं निजां कच्छपीम् ॥^२

— हे महाराज! ऐसा प्रतीत होता है मानो अणहिलपट्टन की नगरवधुओं के चातुर्य से पराजित हुई सरस्वती मूर्ख सी बनकर उनके सम्मुख पानी भरने लगी है। इसी कारण वह अपनी वीणा की तुम्बी को आपके सरोवर की कच्छपी के रूप में नीचे छोड़कर केवल वीणादण्ड को अपने कीर्तिस्तम्भ के रूप में हाथ में लेकर और मेघावली को तन्त्री बनाये हुए घूम रही है।

उक्त दोनों पद्य महाकवि रामचन्द्र ने सद्यः रचे थे जो उनकी उत्कृष्ट कवित्वशक्ति के परिचायक हैं। उनकी इसी प्रतिभा से प्रसन्न होकर महाराज जयसिंह ने उन्हें 'कविकटारमल्ल' की उपाधि से विभूषित किया था।

रामचन्द्र समस्यापूर्ति के लिए भी विख्यात थे। उनके सम्मुख यदि कोई शब्द समस्यापूर्ति हेतु रखा जाता तो वे तत्क्षण उस शब्दविशेष के आधार पर पद्यरचना कर समस्यापूर्ति करने में दक्ष थे। ऐसी ही एक घटना का उल्लेख चरित्रसुन्दरगणि ने अपने महाकाव्य **कुमारपालचरित** में किया है। इसके अनुसार एक बार विश्वेश्वर कवि जब अणहिलपट्टन पहुँचे तो राजा कुमारपाल उनका आदर-सत्कार करके उन्हें आचार्य हेमचन्द्र की पाठशाला में ले गये। वहाँ आचार्य के शिष्यों की परीक्षा लेने

१. प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० १०२।

२. वहीं, पृ० १०२।

हेतु विश्वेश्वर कवि ने उनके समक्ष दो समस्याएँ पूर्ति हेतु रखीं— प्रथम व्यासिद्धा और द्वितीय शृङ्गाप्रेण। प्रथम समस्या व्यासिद्धा की पूर्ति महामात्य कपर्दी ने की जिसका उल्लेख प्रबन्धचिन्तामणि में भी किया गया है। दूसरी समस्या की पूर्ति रामचन्द्र ने इस प्रकार की—

त्वं नो गोत्रगुरुस्तवेन्दुरधिपस्तस्यामृतं तत्करे
तेन व्याधशरारतुरां मम प्रियामेनां समुज्जीवय।
इत्युक्ते मृगलाञ्छनस्य हरिणे कारुण्यमाजल्पतः
शृङ्गाप्रेण मृगस्य पश्य पतितं नेत्राम्बु भ्रूमण्डले ॥^१

अर्थात्, “तुम हमारे कुलगुरु हो, चन्द्रमा तुम्हारा स्वामी है, अतः तुम उसके अमृतमय हाथों (किरणों) से शिकारी के बाणप्रहार से मृतप्राय मेरी प्रिया को जीवित करवा दो। इस प्रकार चन्द्रमा में बैठे हुए मृग से अपनी प्रिया मृगी के प्राणदान हेतु कारुणिक प्रार्थना करने वाले मृग की आखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।” रामचन्द्र द्वारा तत्क्षण ही इस समस्यापूर्ति को सुनकर विश्वेश्वर कवि अत्यन्त प्रसन्न हुए।

महाकवि रामचन्द्र न केवल साहित्यशास्त्र में अपितु व्याकरण और न्यायशास्त्र में भी पारङ्गत थे। अपने नाटक रघुविलास की प्रस्तावना में उन्होंने स्वयं के लिए ‘त्रयीविद्याचणम’ उपाधि का प्रयोग किया है— “विद्यात्रयीचणमचुम्बितकाव्यतन्द्रं कस्तं न वेद सुकृती किल रामचन्द्रम्।” यहाँ विद्यात्रयी से वेद का ग्रहण न होकर व्याकरण, न्याय और साहित्यविद्या का ग्रहण होता है, क्योंकि जैन आचार्य होने के कारण रामचन्द्र का वेद से कोई सम्बन्ध नहीं था। नाट्यदर्पण की विवृति के अन्त में भी वे लिखते हैं—

शब्दलक्ष्मप्रमालक्ष्मकाव्यलक्ष्मकृतश्रमः ।

वाग्विलासस्त्रिमागों नौ प्रवाह इव जाहूजः ॥^२

महाकवि रामचन्द्र की साहित्यशास्त्रज्ञता का प्रमाण तो नाट्यदर्पण, कौमुदीमित्रानन्द आदि रचनाएँ ही, साथ ही द्रव्यालङ्कार और सिद्धहेमशब्दानुशासन के ऊपर लिखित टीका ‘न्यास’ उनके क्रमशः न्याय और व्याकरणशास्त्रविषयक नैपुण्य को प्रमाणित करते हैं।

१. प्र०चि०, ४/१९।

२. नाट्यदर्पण, पृ० ४०९।

महाकवि रामचन्द्र रसवादी कवि हैं। अपनी रचनाओं में उन्होंने रस के प्रति विशेष आग्रहभाव प्रदर्शित किया है। **नाट्यदर्पण** में रसकवियों की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं— वही कवि वस्तुतः कवि है जिसके काव्य को पढ़कर मनुष्य भी काव्यरसरूपी अमृत का पान करने वाले बन जाते हैं और जिसकी वाणी नाट्य की रसलहरियों में चकराती हुई सी नृत्य करती है—

स कविस्तस्य काव्येन मर्त्या अपि सुधान्धसः।

रसोर्मिधूर्णिता नाट्ये यस्य नृत्यति भारती।।^१

रस नाट्य का प्राण है— ‘रसप्राणो नाट्यविधिः’, अतः इसकी योजना कवि को यत्नपूर्वक करनी चाहिए। इस विषय में महाकवि की गर्वोक्ति है कि नये-नये शब्दों के दक्षतापूर्वक विन्यास से मधुर काव्यों की रचना करने वाले मुरारिप्रभृति न जाने कितने ही कवि हुए हैं, किन्तु नाट्य के प्राणस्वरूप रस की चरमानुभूति कराने में रामचन्द्र से इतर कोई निपुण नहीं है और यही कारण है कि अन्य कवियों की कृतियों की रसवत्ता तो इक्षु के समान क्रमशः क्षीणतर होती जाती है, किन्तु रामचन्द्र की सभी कृतियों की रसवत्ता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है—

**प्रबन्धानाथातुं नवभणितिवैदग्ध्यमधुरान्
कवीन्द्रा निस्तन्द्राः कति नहि मुरारिप्रभृतयः।
ऋते रामान्नान्यः किमुत परकोटौ घटयितुं
रसान् नाट्यप्राणान् पटुरिति वितर्को मनसि नः।।
प्रबन्धा इक्षुवत् प्रायो हीयमानरसाः क्रमात्।
कृतिस्तु रामचन्द्रस्य सर्वा स्वादुः पुरः पुरः।।^२**

रामचन्द्र की कृतियाँ

साहित्य जगत् में महाकवि रामचन्द्र प्रबन्धशतकर्ता के रूप में विख्यात हैं। अपनी अनेक कृतियों में उन्होंने स्वयं को १०० प्रबन्धों का रचयिता बताया है। इस विषय में उन्होंने **कौमुदीमित्रानन्द** की प्रस्तावना में ‘प्रबन्धशतविधाननिष्णात-बुद्धिना.....’ इत्यादि द्वारा स्पष्ट निर्देश किया है। **निर्भयभीमव्यायोग** की प्रस्तावना में भी उन्होंने ‘प्रबन्धशतकर्तुर्महाकवेः रामचन्द्रस्य’ कथन द्वारा स्वयं को १०० प्रबन्धों का कर्ता घोषित किया है, किन्तु इस सम्बन्ध में मुनि जिनविजयजी का मत

१. ना०द०, पृ० ४।

२. कौ०मि०, १/३-४।

कुछ भिन्न है। उनके अनुसार **प्रबन्धशतकर्ता** का आशय १०० प्रबन्धों की रचना करने वाला नहीं, अपितु **प्रबन्धशत** नामक ग्रन्थविशेष की रचना करने वाला है। इस प्रबन्धशत में ५००० पद्य थे। अस्तु, प्रायशः विद्वान् उन्हें १०० प्रबन्धों का कर्ता ही स्वीकार करते हैं, किन्तु उनकी सभी कृतियाँ अद्यावधि उपलब्ध नहीं हो सकी हैं। उनकी जो जो कृतियाँ सम्प्रति उपलब्ध हैं उनके शीर्षक निम्नलिखित हैं—

१. **नाट्यदर्पण** — सहपाठी गुणचन्द्र के सहयोग से विरचित नाट्यशास्त्रीय मौलिक कृति।
२. **नलविलास** — नाटक (पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी से प्रकाशित)।
३. **सत्यहरिश्चन्द्र** — नाटक।
४. **यादवाभ्युदय** — नाटक (नाट्यदर्पण में उद्धृत)।
५. **रघुविलास** — नाटक (नाट्यदर्पण में उद्धृत)।
६. **राधावाभ्युदय** — नाटक (नाट्यदर्पण में उद्धृत)।
७. **वनमाला** — नाटिका (नाट्यदर्पण में उद्धृत)।
८. **कौमुदीमित्रानन्द** — प्रकरण (आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित)।
९. **मल्लिकामकरन्द** — प्रकरण (नाट्यदर्पण में उद्धृत)।
१०. **रोहिणीमृगाङ्क** — प्रकरण (नाट्यदर्पण में उद्धृत)।
११. **निर्भयभीमव्यायोग** — (यशो जैन ग्रन्थमाला और पार्श्वनाथ विद्यापीठ, से प्रकाशित)।
१२. **सुधाकलश** — (नाट्यदर्पण में उद्धृत कोश-ग्रन्थ)।
१३. **यदुविलास** — (रघुविलासनाटक की प्रस्तावना में उद्धृत)।
१४. **कुमारविहारशतक** — (भारतीय आर्य सभा से प्रकाशित)।
१५. **द्रव्यालङ्कारवृत्ति** — (रघुविलासनाटक की प्रस्तावना में उद्धृत और गुणचन्द्र के सहयोग से विरचित न्यायशास्त्रीय ग्रन्थ)।
१६. **हैमबृहद्वृत्तिन्यास** — आचार्य हेमचन्द्रप्रणीत व्याकरणविषयक ग्रन्थ 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' की टीका।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त छोटे-छोटे स्तवस्वरूप कतिपय अन्य ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं जिनके शीर्षक हैं —

१७. युगादिदेवद्वात्रिंशिका
१८. व्यतिरेकद्वात्रिंशिका
१९. प्रसादद्वात्रिंशिका
२०. आदिदेवस्तव
२१. मुनिसुव्रतदेवस्तव
२२. नेमिस्तव
२३. जिनस्तोत्राणि
- २४-३९. सोलह साधारण जिनस्तव।

कौमुदीमित्रानन्द

कौमुदीमित्रानन्द १० अङ्कों का 'प्रकरण' है। दश रूपकभेदों में नाटक के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थिति प्रकरण की ही है। प्रस्तुत प्रकरण कवि रामचन्द्र के नाट्यकौशल का सुन्दर निदर्शन है।

कौमुदीमित्रानन्द की संक्षिप्त कथावस्तु

प्रथम अङ्क— मित्रानन्द अपने मित्रों मैत्रेय एवं मकरन्द के साथ व्यापार करने के उद्देश्य से समुद्री यात्रा पर निकलता है, किन्तु नौका के बीच समुद्र में डूब जाने पर मैत्रेय के साथ एक फलक पर सवार होकर किसी प्रकार सात दिन पश्चात् एक द्वीप में पहुँचता है। उस निर्जन द्वीप में एक वृक्ष की शाखा पर झूलती और विलाप करती हुई एक अनुपम सुन्दरी युवती को देखकर दोनों आश्चर्यपूर्वक उसके विषय में विचार करने लगते हैं। उसी बीच वह युवती उठकर कहीं चली जाती है। दोनों उसको खोजने निकलते हैं तो रास्ते में उनकी भेंट एक संन्यासी-वेषधारी व्यक्ति से होती है जो उन्हें बतलाता है कि यह जलपति पाशापाणि का क्रीड़ाद्वीप है। इस द्वीप में प्रशान्तविरोध नामक एक आश्रम भी है जिसके कुलपति का नाम घोरघोण है। वह संन्यासी उन दोनों को कुलपति से मिलवाता है। वहीं पर वे पूर्वदृष्ट युवती को भी देखते हैं जो कुलपति की ही पुत्री कौमुदी है। उन दोनों को अत्यधिक धनवान् समझकर धूर्त लोभी कुलपति धन-प्राप्ति की इच्छा से उनका पर्याप्त आदर-सत्कार

करता है और पुत्री कौमुदी का विवाह मित्रानन्द से करने की घोषणा करता है। अन्त में पाशपाणि के आगमन की सूचना पाकर कुलपति अपने अनुचरों को दोनों अतिथियों की सेवा का आदेश देकर चला जाता है।

द्वितीय अङ्क— उस द्वीप में भ्रमण करते समय मित्रानन्द और मैत्रेय को किसी के कराहने की ध्वनि सुनायी देती है। मन्दिर के पीछे जाकर वे देखते हैं कि वहाँ एक सिद्ध (देवयोनिविशेष) पीड़ा से छटपटा रहा है, जिसको पाशपाणि ने पकड़ कर वृक्ष में कील से ठोक दिया था। दोनों दयार्द्रचित्त होकर सिद्ध को बन्धनमुक्त कर देते हैं। सिद्ध दोनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर और भविष्य में प्रत्युपकार का वचन देकर अतिशीघ्र वहाँ से चला जाता है। पाशपाणि को जब ज्ञात होता है कि सिद्ध को मित्रानन्द और मैत्रेय ने मुक्त कर दिया है तो वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर दोनों को मारने हेतु उद्यत होता है, किन्तु कुलपति के अनुज गजपाद द्वारा बतलाए जाने पर कि मित्रानन्द कुलपति का जामाता है, पाशपाणि उन दोनों को मुक्त कर देता है। तदनन्तर गजपाद द्वारा कौमुदी-मित्रानन्द का विवाह स्वयं कराने की प्रार्थना सुनकर पाशपाणि मित्रानन्द को कल्पलता नाम की जादुई माला देकर उसको विवाहार्थ पर्णशाला में ले जाने का आदेश देता है।

तृतीय अङ्क— उद्यान में कौमुदी के प्रति प्रेमासक्त मित्रानन्द और उसका मित्र मैत्रेय कौमुदी के सौन्दर्य की चर्चा करते हुए उसका अन्वेषण करते हैं। कौमुदी भी लताकुञ्ज में सखी कुन्दलता के साथ मित्रानन्द के विषय में ही चर्चा कर रही होती है। मित्रानन्द और मैत्रेय छिपकर दोनों की बातें सुनते हैं। अनन्तर सम्मुख होने पर कौमुदी उन्हें बतलाती है कि इस आश्रम के कुलपति सहित सभी तपस्वी कपटी हैं जो छद्मवेष धारण कर यहाँ आने वाले सभी व्यापारियों को कपटजाल में फँसाकर पहले उनका विवाह उससे (कौमुदी से) करवा देते हैं और बाद में धोखे से उनकी हत्या करके उनका सम्पूर्ण धन हड़प लेते हैं। यह सुनकर दोनों के मन में कौमुदी के प्रति अविश्वास उत्पन्न होने की आशङ्का से कुन्दलता उन्हें कौमुदी के निष्कपट होने का विश्वास दिलाती है। उसके बाद कौमुदी और मित्रानन्द विवाह के पश्चात् रात्रि में चुपचाप सिंहलद्वीप भागने का निश्चय कर लेते हैं। सायंकाल कुलपति द्वारा विवाह सम्पन्न करवाने के पश्चात् मित्रानन्द कौमुदी के निर्देशानुसार कुलपति से यौतक (दहेज) रूप में विषापहरणमन्त्र की शिक्षा देने का अनुरोध करता है। कुलपति विषवैद्य जाङ्गुलीदेवी का आह्वान कर मित्रानन्द को मन्त्र की शिक्षा दिलवाते हैं। अन्त में वृद्धा तापसी गन्धमूषिका कौमुदी को आदेश देती है कि मित्रानन्द को पर्णशाला में ले जाये।

चतुर्थ अङ्क— कौमुदी और मित्रानन्द योजनानुसार रात्रि में ही आश्रम से भागकर सिंहलद्वीप की राजधानी रङ्गशालापुरी पहुँच जाते हैं। वहाँ चोर का पीछा करने वाले सैनिकों के भय से लोगों की भगदड़ देखकर दोनों समीपस्थ कात्यायनी मन्दिर में प्रविष्ट हो जाते हैं। नगररक्षक कालपाश और उसके अनुचर चोर को खोजते हुए मन्दिर में आते हैं और दोनों को चोर समझकर पकड़ लेते हैं। कालपाश अपने अनुचरों को उन्हें प्रातःकाल राजसभा में प्रस्तुत करने का आदेश देकर चला जाता है।

पञ्चम अङ्क— रङ्गशालापुरी में युवराज लक्ष्मीपति के नगरागमन के उपलक्ष्य में उत्सव की तैयारी चल रही है। उसी दिन कौमुदी एवं मित्रानन्द को राजा विक्रमबाहु के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। दोनों की सौम्य आकृति देखकर और प्राप्त प्रमाणों के आधार पर राजा उन्हें चोर मानकर दण्ड देने हेतु तैयार नहीं होता है, किन्तु कौमुदी के प्रति कामासक्त अमात्य कामरति जिस किसी प्रकार राजा को फुसलाकर मित्रानन्द को मृत्युदण्ड का आदेश दिलवा देता है। तभी चेटी आकर सूचना देती है कि युवराज को साँप ने काट लिया है और वे मूर्च्छित हो गये हैं। सुअवसर देखकर मित्रानन्द राजा की आज्ञा पाकर विषापहरण मन्त्र का प्रयोग कर युवराज को जीवित कर देता है जिससे प्रसन्न होकर राजा मित्रानन्द को दण्डमुक्त कर देता है और अमात्य को उसका समुचित सत्कार करने का आदेश देकर चला जाता है।

षष्ठ अङ्क— मैत्रेय भटकता हुआ रत्नाकरराज्य की सीमा में प्रविष्ट हो जाता है जहाँ के सैनिक उसको शत्रु का गुप्तचर समझकर पकड़ लेते हैं और सामन्त विजयवर्मा के सम्मुख ले जाते हैं। विजयवर्मा शत्रु राजा चक्रसेन के साथ युद्ध में अत्यधिक घायल होकर पड़ा हुआ है, अतः वह क्रोधावेश में विना विचार किये ही उस तथाकथित शत्रु के गुप्तचर के वध का आदेश दे देता है, परन्तु मैत्रेय द्वारा महान् उपकार की प्रतिज्ञा करने पर उसको मुक्त कर देता है। पश्चात् मैत्रेय वरुणद्वीप में सिद्ध से प्राप्त औषध के लेपन से तत्क्षण विजयवर्मा के सम्पूर्ण व्रण को ठीक कर देता है। इससे प्रसन्न होकर विजयवर्मा क्षमायाचनापूर्वक उसको अपना मित्र बना लेता है। उधर सिंहलद्वीप का अमात्य कामरति, जो कौमुदी पर आसक्त है, मित्रानन्द की हत्या करवाने हेतु उसे गुप्तरिति से विजयवर्मा के समीप भेज देता है। विजयवर्मा यक्षराज को मित्रानन्द की बलि प्रदान करते हेतु मैत्रेय से अनुरोध करता है, किन्तु मैत्रेय मित्रानन्द को परिवर्तित वेष में भी पहचान लेता है और गले लगाकर रोने लगता है। उन दोनों का सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात होने पर विजयवर्मा मित्रानन्द से क्षमायाचना करता है और युद्धबन्दी बनाकर लायी गयी सुमित्रा से विवाह करने की

प्रार्थना करता है, किन्तु मित्रानन्द स्वयं विवाहित होने के कारण अपने मित्र मकरन्द से उसका विवाह करवाने का वचन देता है।

सप्तम अङ्क— सिंहलद्वीप में अमात्य कामरति की पत्नी सपत्नी की आशङ्का से कौमुदी को घर से निकाल देती है। भटकती हुई कौमुदी को मार्ग में सुमित्रा भी मिल जाती है जो युद्ध में रत्नाकरदेश के नष्ट हो जाने के कारण मित्रानन्द और मैत्रेय से बिछुड़ गयी थी। मार्ग में एक स्थान पर दोनों को कुछ चोर घेर लेते हैं। चोरों की एकचक्रा नाम की बस्ती का मुखिया पल्लीपति वज्रवर्मा उन दोनों की सम्पत्ति के अपहरण का प्रयास करता है। तभी पल्लीपति के अनुचर एक अन्य व्यापारी को, जो वस्तुतः मकरन्द है, पकड़कर उसके सम्मुख लाते हैं। पल्लीपति द्वारा पूछे जाने पर उसके मुख से मकरन्द नाम सुनकर कौमुदी और सुमित्रा समझ जाती हैं कि यह मित्रानन्द का मित्र वही मकरन्द है जो समुद्र में नौका डूब जाने के बाद बिछुड़ गया था। उसी समय सिंहलद्वीप के युवराज लक्ष्मीपति दूत के माध्यम से पल्लीपति को कौमुदी एवं मित्रानन्द के अन्वेषण का आदेश देते हैं। मन में शङ्का होने पर पल्लीपति उन सबसे नाम पूछता है और कौमुदी को वहाँ उपस्थित जानकर अपने दुष्कृत्य पर अत्यन्त दुःखी होता है। पुनः कौमुदी से सुमित्रा एवं मकरन्द के विषय में जानकर स्वयं उनका विवाह करवाने का निश्चय करता है और सन्देशवाहक को कौमुदी आदि को प्रातःकाल युवराज के सम्मुख प्रस्तुत करने का सन्देश देकर वापस भेज देता है।

अष्टम अङ्क— कौमुदी एवं सुमित्रा को एकचक्रा नगरी घुमाने निकला मकरन्द घूमते-घूमते एक धूर्त कापालिक की मायानगरी में पहुँच जाता है। यह कापालिक वस्तुतः वही सिद्ध है जिसे मित्रानन्द और मैत्रेय ने वरुणद्वीप में पाशपाणि के चङ्गुल से मुक्त कराया था। कौमुदी और सुमित्रा में कामासक्त वह धूर्त कापालिक छल से मकरन्द को मारने का प्रयास करता है। मकरन्द तो किसी प्रकार प्राणरक्षा में सफल हो जाता है, किन्तु कापालिक कौमुदी और सुमित्रा को लेकर अदृश्य हो जाता है।

नवम अङ्क— मकरन्द भटकता हुआ रङ्गशालापुरी में पहुँच जाता है। वहाँ नरदत्त नामक एक कपटी व्यापारी उसकी रत्नादि समस्त सम्पत्ति हड़पने का प्रयास करता है। इस विवाद को सुलझाने हेतु दोनों युवराज के समक्ष जाते हैं। वहाँ भी नरदत्त छलपूर्वक मकरन्द की सम्पत्ति को अपना सिद्ध करने का प्रयास करता है और उसके कपटजाल में फँसकर युवराज मकरन्द को मृत्युदण्ड देने का आदेश दे देता है। उसी समय पल्लीपति वज्रवर्मा मित्रानन्द को खोजकर और साथ लेकर वहाँ आता है। मित्रानन्द युवराज को बताता है कि मकरन्द उसका भाई है, तो युवराज

को बहुत पश्चात्ताप होता है और वह मकरन्द को दण्डमुक्त कर नरदत्त को शूली पर लटकाने का आदेश दे देता है, किन्तु दयालु मित्रानन्द उसको क्षमा कर देता है। तदनन्तर श्रान्त होने के कारण प्रातःकाल बातचीत करने का विचार कर सभी विश्राम करने चले जाते हैं।

दशम अङ्क— सिद्धाधिनाथ, जिसने कापालिक के वेष में कौमुदी और सुमित्रा का अपहरण कर लिया था, उन दोनों के नाम और वेष बदलकर उन्हें अनुचरी लम्बस्तनी के भवन में छुपाकर रखता है। मैत्रेय भी रत्नाकरदेश में मित्रानन्द से बिलुड्डने के बाद वहीं पर कुन्दलता के भवन में मान्त्रिक के रूप में रहता है। सिद्धाधिनाथ के अनुचर कहीं से मित्रानन्द को पकड़कर उसके समक्ष लाते हैं। सिद्धाधिनाथ मित्रानन्द को विचित्र वेशभूषा धारण किये होने के कारण पहचान नहीं पाता और उसको छल से कौमुदी के ही हाथों मरवाना चाहता है, किन्तु बाद में जब उसे ज्ञात होता है कि यह मित्रानन्द है, तो वह बहुत लज्जित होता है और अपने दुष्कृत्य के लिए मित्रानन्द से क्षमायाचना करता है। उसके बाद वह छुपाकर रखी गई कौमुदी और सुमित्रा को मित्रानन्द को समर्पित कर देता है। पुनः मकरन्द और मान्त्रिक वेषधारी मैत्रेय को भी वहाँ लाया जाता है। सभी एक दूसरे से मिलकर अत्यन्त आनन्दित होते हैं। अन्त में सिद्धाधिनाथ उन सबको चिरकाल तक स्वतन्त्र रहने का आशीर्वाद देता है।

प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

मित्रानन्द— यह प्रकरण का वणिग्-जातीय धीरप्रशान्त कोटि का नायक है। इसमें दयालुता, विनयशीलता, नैतिकता आदि सभी गुण विद्यमान हैं जो धीरप्रशान्त नायक के लिए अपेक्षित होते हैं। मित्रानन्द अत्यन्त दयालु है। स्वयं सदैव सङ्कटग्रस्त रहने पर भी उसे अपनी चिन्ता नहीं, अपितु वह सर्वदा दूसरों के दुःख के विषय में ही सोचा करता है— 'मनस्तु मे सदाऽप्यन्यदुःखसद्भ्रान्तिदर्पणः'। सिद्ध को दुःखी देखकर उसका हृदय द्रवित हो उठता है और वह स्वयं सङ्कट में पड़कर भी उसको पाशपाणि के चङ्गुल से मुक्त कराता है। उसकी दृष्टि में परोपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं, चाहे उसे सम्पादित करने में अपना अहित ही क्यों न हो जाय—

परोपकारः क्रियते स्वस्य कल्याणाहेतवे।

ततोऽपि यद्यकल्याणं कल्याणात्तत् पदं परम्॥२/१३

मित्रानन्द अत्यन्त क्षमावान् भी है। पुनः-पुनः अपकार की चेष्टा करने वाले सिद्धाधिनाथ को भी वह सहज ही में क्षमा कर देता है। मकरन्द को प्रताड़ित करने

वाले धूर्त नरदत्त को प्राणदण्ड से मुक्त करवा देना भी उसकी क्षमाशीलता का प्रमाण है। वह मित्रवत्सल भी है, मित्रता का निर्वाह करना उसे भलीभाँति आता है। कौमुदी के प्रति उसकी निम्नलिखित उक्ति उसकी मित्रवत्सलता को द्योतित करती है—

सुखाकरोति संयोगस्तथा न तव कौमुदी।

मैत्रेयस्य परित्यागो यथा दुःखाकरोति माम्।। ४/७

अपने प्रियमिलन को वह मित्र मैत्रेय के अभाव में व्यर्थ समझता है—
'प्रियसम्पर्को वृथा मे मैत्रेयं विना।'

मित्रानन्द नीतिमार्गानुसारी है और विपत्तिग्रस्त होने पर भी नैतिकता का साथ नहीं छोड़ता। आश्रम में अपने स्वागत में कुलपति द्वारा पशुबलि की बात सुनकर वह अत्यन्त खिन्न हो जाता है, क्योंकि वह यज्ञादि अनुष्ठानों में पशुबलि को अत्यन्त गर्हित और अनैतिक कर्म मानता है। उसकी दृष्टि में वे सभी शास्त्रकार, ऋषिगण और सामान्य जन पाखण्डी हैं जो इसका विधान, समर्थन और पालन करते हैं। मित्रानन्द अत्यन्त धैर्यवान् भी है। उसे यह परिज्ञान है कि अधीर होकर विषाद और शोक करने से भाग्य को नहीं बदला जा सकता— 'सत्यं विषादशोकाभ्यां न दैवं परिवर्तते।' इसीलिए वह सभी सङ्कटों का अत्यन्त धैर्यपूर्वक सामना करता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मित्रानन्द एक उत्कृष्ट और गुणवान् नायक है।

कौमुदी— मध्यमकुलोत्पन्ना कौमुदी इस प्रकरण की मन्दगोत्रोत्पन्ना किन्तु उत्कृष्ट आचरण वाली नायिका है। वह वरुणद्वीपस्थ प्रशान्तविरोध नामक आश्रम के कुलपति घोरघोण की पुत्री है। धूर्त पिता की पुत्री होते हुए भी उसमें स्त्रीसुलभ सभी गुण निहित हैं। वह अत्यन्त सरलहृदया भोली-भाली युवती है। छल-प्रपञ्च से तो वह सर्वथा रहित है— 'वननिवासप्रसादेन मुग्धा खल्वहं न विचित्रभणितोः जानामि'। इसीलिए आश्रम के दूषित वातावरण में उसका दम घुटता है। कौमुदी अनन्य सुन्दरी भी है। उसका अङ्ग-अङ्ग लावण्य से परिपूर्ण अतएव इन्द्रियों को आह्लादित करने वाला है—

गात्रं सन्नतगात्रि! नेत्रसुखदं निःश्वासपूरांहति-

र्नासाऽऽह्लादकरी रदच्छदसुधा जिह्वाऽतिसौहित्यकृत।

नादः किन्नरकण्ठ! कर्णसुखदो वक्षोजलक्ष्मीरियं

वक्षः प्रीणयते मृगाक्षि! वद ते किं नेन्द्रियाणां मुदे।। ३/७

उसके सहज स्वाभाविक सौन्दर्य को प्रस्फुटित करने हेतु किसी कृत्रिम अलङ्करण की आवश्यकता नहीं। उसके शरीर पर तो कोई भी वस्त्र स्वतः आभूषणस्वरूप हो जाता है—

तदपि च वपुर्लक्ष्मीरस्याः स्फुरत्यपदं गिरां

प्रकृतिसुभगे पात्रे वेषो यदेव तदेव वा।। १/१८

कौमुदी एकनिष्ठ प्रेमिका—पतिव्रता स्त्री है। पति मित्रानन्द को वह अपना सर्वस्व समर्पित कर देती है— ‘आत्मा मया तुभ्यं समर्पितः अतः परं यत् ते प्रतिभासते तत् क्रियताम्’। वह घोर सङ्कट की स्थिति में भी पति का साथ नहीं छोड़ती और उसके लिए अपने माता-पिता और बन्धुजनों तक का परित्याग कर देती है। अपने पातिव्रत्य धर्म का वह सदैव दृढ़तापूर्वक निर्वाह करती है। सिद्धाधिनाथ द्वारा अपहरण कर अपने भवन में रखे जाने पर भी उसका मन तनिक भी विचलित नहीं होता और वह सदैव पतिविषयक चिन्तन ही करती रहती है— ‘नवरं कृततपोविधाननिश्चया तिष्ठति।’

कौमुदी को एक कुलवधू की मर्यादा का पूर्ण ज्ञान है। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी वह इस मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करती। यात्रा से श्रान्त होने के कारण जब मित्रानन्द उसके अङ्गसंवाहन का प्रस्ताव रखता है तो वह उसको इस कार्य के लिए मना करती है, क्योंकि उसकी दृष्टि में ऐसा करना कुलवधुओं के लिए सर्वथा अनुचित है— ‘आर्यपुत्र! अलमेतेन विनयप्रभ्रंशेन। न एष कुलवधूनां प्रशंसनीयो मार्गः।’

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कौमुदी का चरित्र एक आदर्श भारतीय नारी का चरित्र है। उसमें प्रकरण की नायिका हेतु अपेक्षित सभी गुण विद्यमान हैं।

प्रकृत रूपक का नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण

‘कौमुदीमित्रानन्द’ एक रूपक है और विशेष रूप से यह एक ‘प्रकरण’ है। यह स्वयं रूपककार ने अपने नाट्यदर्पण की वृत्ति में कहा है—

“यथा वाऽस्मदुपज्ञे कौमुदीमित्राण(न)न्दनाम्नि प्रकरणे....”

प्रकरण के रामचन्द्रोक्त लक्षण का समन्वय होने से भी यह प्रकरण सिद्ध होता है। **नाट्यदर्पणोक्त** प्रकरण-लक्षण निम्नलिखित है—

१. ना०द० (वृत्ति), पृ० १२५।

प्रकरणं वणिक्विप्रसचिवस्वाम्यसङ्करात्।
 मन्दगोत्राङ्गनं दिव्यानाश्रितं मध्यचेष्टितम्।
 दासश्रेष्ठिविदुर्युक्तं क्लेशाढ्यम्।।^१

इसका तात्पर्य यह है कि प्रकरण में वणिक्, विप्र अथवा सचिव में से किसी एक को नायक होना चाहिए। लक्षणोक्त 'मन्दगोत्राङ्गन' शब्द के स्वयं ग्रन्थकार ने दो अर्थ किये हैं— (क) नायिका को मन्द कुल में उत्पन्न होना चाहिए और (ख) नायिका को कुलीन, किन्तु आचरण से मन्द अर्थात् मध्यम होना चाहिए। इस प्रकरण की नायिका कौमुदी है जिसका पिता एक धूर्त-कपटी कुलपति है। उसके मूलगोत्र, जाति आदि का कोई पता नहीं है। अतएव प्रथम अर्थ में ही 'मन्दगोत्राङ्गन' शब्द का इस प्रकरण में समन्वय माना जा सकता है। दूसरी बात यह है कि मित्रानन्द के साथ कौमुदी का आचरण भी उत्कृष्ट है, मन्द—मध्यम नहीं। जहाँ इससे पूर्व अपने पिता की इच्छा के अनुसार अनेक सम्पन्न युवकों के साथ विवाह का नाटक कर कौमुदी उनके वध में निमित्त हो चुकी है वहीं मित्रानन्द के साथ वैसा आचरण न करने की उसने प्रतिज्ञा कर ली है जैसा कि उसके निम्नलिखित कथन से सुव्यक्त है— "सफलमेतस्य दर्शनेन मनुष्यजन्म। ईदृशोऽपि तातस्य स्नेहेन मया व्यापादयितव्यः? धिग् धिग् भुवनरत्नविनाशनं मे जीवितनिर्माणम्!!"^२

यह पश्चात्ताप जहाँ एक ओर कौमुदी के विवशताहेतुक पापकर्म का एक प्रायश्चित्त है वहीं दूसरी ओर मित्रानन्द के साथ वैसा क्रूर कर्म न करने की प्रतिज्ञा का भी सङ्केत देता है।

अब यह भी विचारणीय है कि रामचन्द्र ने नेता, कथावस्तु और फल में यथासम्भव एक, दो और तीनों के कल्पित होने पर प्रकरण के सात भेद किये हैं। उनमें यह कौमुदीमित्रानन्द ऐसे भेद के अन्तर्गत आता है जिसमें तीनों ही कल्पित हैं, किसी एक में भी किसी ऐतिहासिकता का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

इस प्रकार वणिक् मित्रानन्द के नायक होने और कौमुदी के नायिका होने से 'मन्दगोत्राङ्गनम्' पर्यन्त लक्षण का इसमें समन्वय तो स्पष्ट है। इसके बाद 'दिव्य पात्र से रहित' यह अंश आया है। दिव्य पात्र भी इस प्रकरण में अनुपलब्ध है। यद्यपि एक 'सिद्ध' दिव्य प्रतीत होता है, तथापि वस्तुतः वह दिव्य नहीं अपितु एक

१. ना०द० (वृत्ति), पृ० २०२।

२. कौ०मि०, पृ० १८।

धूर्त है। अतः उसे दिव्य नहीं कहा जा सकता। 'मध्यमस्तर का आचरण' यह अंश विवादग्रस्त है, क्योंकि यहाँ मित्रानन्द और कौमुदी के आचरण को उत्तम न कहना उनके साथ अन्याय होगा। यह स्वाभाविक है कि लक्षण-निर्माण करते समय जो आदर्श रहता है उसका पूर्णतः पालन लक्ष्य-निर्माण के समय प्रायः हो नहीं पाता। सम्भवतः यही कारण है कि इस प्रकरण में कवि रामचन्द्र उस आदर्श के पूर्णतः पालन में समर्थ न हो सके हों।

'दासश्रेष्ठिविद्वैर्युक्तम्' यह अंश भी इस प्रकरण में उपलब्ध है ही। इसकी वृत्ति में 'अमात्यस्थाने श्रेष्ठी'^१ जो कहा गया है उसका तात्पर्य यह है कि नाटक में वर्णित कञ्चुकी, अमात्य एवं विदूषक के स्थान पर प्रकरण में क्रमशः दास, श्रेष्ठी एवं विट (धूर्त) की योजना करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त वणिक् आदि नायकों के औचित्यानुसार अन्य चटुकारादि सहायकों की भी योजना की जा सकती है। प्रकृत प्रकरण में इस नियम का पूर्ण तो नहीं, किन्तु कुलपति-प्रभृति धूर्त (विट) पात्रों की योजना कर आंशिक अनुपालन अवश्य हुआ है।

'क्लेशाढ्यम्' यह अन्तिम अंश तो इस प्रकरण में सुलभ है ही। पोत के डूबने से लेकर सर्वत्र मित्रानन्द, कौमुदी, मैत्रेय आदि कष्ट का ही अनुभव करते हुए चित्रित किये गये हैं। यत्र-तत्र कुछ सुखद अवसर अवश्य आये हुये हैं, किन्तु वे नगण्य हैं। हाँ, अन्त में सब का मिलन सुखद है, किन्तु यह तो निर्वहण सन्धि में अपेक्षित ही है।

इस प्रकार स्वोक्त प्रकरण-लक्षण का समन्वय होने से रूपकों में इस कौमुदीमित्रानन्द को प्रकरण कहना सर्वथा उचित है।

पञ्चसन्धियों का विश्लेषण

मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण— ये पाँच सन्धियाँ नाटकादि कुछ रूपकों में आवश्यक हैं। रामचन्द्र के अनुसार नाटक, नाटिका, प्रकरणी के साथ-साथ प्रकरण में भी उक्त पाँचों सन्धियाँ आवश्यक हैं— 'अवस्थानां च ध्रुवभावित्वात् सन्धयोऽपि नाटक-प्रकरण-नाटिका-प्रकरणीषु पञ्च अवश्यम्भाविनः।'^२

अब हम देखेंगे कि इस प्रकरण में ये सन्धियाँ किस रूप में निबद्ध हैं। विशेष ध्यान योग्य यह है कि इस क्रम में हम नाट्यदर्पणोक्त लक्षण के आधार पर ही विवेचन करेंगे, क्योंकि नाट्यदर्पण रामचन्द्र की (गुणचन्द्र के साथ मिलकर लिखी गई)

१. ना०द० (वृत्ति), पृ० २०८।

२. वहीं, पृ० ९४।

अपनी कृति है। यद्यपि इसमें पूर्वाचार्यमत से कुछ भिन्नता है तथापि इन सब के युक्तायुक्तत्व का चिन्तन यहाँ उचित नहीं है।

सन्धियों का विश्लेषण करने से पूर्व पाँच क्रमिक अवस्थाओं का भी संक्षिप्त निरूपण आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं के अनुसार सन्धियों की व्यवस्था मान्य है। ये पाँच अवस्थाएँ हैं— आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्याशा, नियताप्ति और फलागम।

रामचन्द्र ने मुख्य फलप्राप्ति के पाँच 'उपाय' माने हैं— बीज, पताका, प्रकरी, बिन्दु और कार्य। इनमें बीज और कार्य अचेतन हैं जबकि अन्य तीन चेतन। यह चेतनाचेतन-विभाग इस पर निर्भर है कि बिन्दु, पताका और प्रकरी को रामचन्द्र ने पात्रार्थक माना है। हो सकता है कि जो अन्य आचार्यों के मत में 'अर्थप्रकृति' के स्वरूप बिन्दु, पताका और प्रकरी हैं उन्हें औपचारिक रूप में नाट्यदर्पणकार ने उनके साथ पात्रों के अर्थ में प्रयुक्त माना हो! अचेतन उपायों में बीज मुख्य है और कार्य फलप्राप्ति में बीज का सहकारी अमुख्य। इसी प्रकार चेतन उपायों में बिन्दु मुख्य है और अन्य दो उपकरणभूत अर्थात् अमुख्य हैं।^१ मुख्यता और अमुख्यता के क्रमशः कारण हैं— फल-प्राप्ति में विशेष उपकारक तथा सामान्य उपकारक होना। अतएव पताका, प्रकरी आदि की भी रूपक-विशेष में उक्त कारण से मुख्यता हो सकती है और उक्त कारण के अभाव में अमुख्यता, किन्तु बीज और बिन्दु की मुख्यता तो सर्वत्र होती ही है— “तत्र बीजबिन्द्वोस्तावन्मुख्यत्वमेव, सर्वव्यापित्वात्। पताका-प्रकरी-कार्याणां तु मुख्यफलं प्रत्युपयोगापेक्षया एकस्य द्वयोस्त्रयाणां वा मुख्यत्वमन्येषां चामुख्यत्वम्।”^२

अब बीज, जो फलप्राप्ति का मूल उपाय है, के विषय में भी संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है। बीज मुख्य फल की प्राप्ति का मुख्य उपाय है जो नायकमात्र के प्रयत्न से अथवा उसके सहयोगियों की सहायता से क्रमशः विकसित होता हुआ अन्त में मुख्य फल को प्राप्त कराता है। विकास की दृष्टि से बीज-तुल्य होने के कारण इस आरम्भिक सूक्ष्म उपाय को भी बीज कहा गया है—

“स्तोकोद्दिष्टः फलप्रान्तो हेतुर्बीजं प्ररोहणात्।। आदौ गम्भीरत्वादल्पनिक्षिप्तो मुख्यफलावसानश्च यो हेतुर्मुख्यसाध्योपायः स धान्यबीजवद् बीजम्। ‘प्ररोहणात्’ उत्तरत्र शाखोपशाखादिभिर्विस्तरणात्।”^३

१. ना०द० (वृत्ति), पृ० ६२-६३।

२. वहीं, पृ० ८१।

३. वहीं, पृ० ६३।

इस बीज का उपनिबन्ध रूपक में 'प्रस्तावना'— 'आमुख' के बाद ही करना चाहिए, क्योंकि 'आमुख' रूपक का अङ्ग नहीं है। यह तो सभ्यों को सावधान करने हेतु नट का कर्तव्य है, नायक का इससे साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं होता। अतएव यदि किसी रूपक के 'आमुख' में बीज का कथञ्चित् उपन्यास हुआ भी हो तो भी 'आमुख' के पश्चात् रूपक के प्रारम्भ में उसका निर्देश करना ही चाहिए—

“इदं च आमखानन्तरं निबध्यते। बीजं हि नाटकादीनाम् इतिवृत्तार्थस्योपायः। आमखं तु रूपकप्रस्तावनार्थं नटस्यैव वृत्तम्।... अत एव आमखोक्ता अपि बीजोक्तयः प्रविष्टनाटकपात्रेण पुनरुच्यन्ते।”

यह बीज, रामचन्द्र के अनुसार, चार प्रकार का होता है— (क) किसी पात्र का व्यापार-विशेष, (ख) विपत्ति का सङ्केत अथवा निर्देश, (ग) निराकरणीय विपत्ति और अभीष्टसिद्धि— इन दोनों का निर्देश तथा (घ) विपत्ति आने पर उसके निराकरण के उपाय का निर्देश। यह भी ध्यातव्य है कि तृतीय प्रकार में विपत्तिमात्र के बीज के निर्देश के अतिरिक्त विपत्ति और उसके निराकरण इन दोनों का भी निर्देश हो सकता है, यद्यपि रामचन्द्र ने स्पष्टतः ऐसा कहा नहीं है। इनमें से जिस रूपक का मुख्य फल इष्टप्राप्तिमात्र हो उसमें प्रथम, जिसका मुख्य फल विपत्तिनिवृत्तिमात्र हो उसमें द्वितीय अथवा चतुर्थ और जिस रूपक के मुख्य फल अभीष्टसिद्धि और अनिष्टनिवृत्ति दोनों ही हों उसमें तृतीय प्रकार के बीज का निर्देश होना चाहिए।

कौमुदीमित्रानन्द प्रकरण में अभीष्ट सुन्दरी कौमुदी की प्राप्ति के साथ-साथ पोत-निमज्जन आदि से जन्य अनिष्ट की निवृत्ति भी नायक को फल के रूप में अभिप्रेत है। अतः इसमें तृतीय प्रकार के बीज का निर्देश उचित है और इस प्रकरण के अध्ययन से यह सुस्पष्ट है कि इसमें अनिष्टनिवृत्तिपूर्वक इष्टफलप्राप्ति वर्णित है। अतः दोनों को स्वतन्त्र रूप में मुख्य फल तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु विशिष्ट अनिष्टनिवृत्तिपूर्वक इष्टप्राप्ति के एक होने से तात्पर्यतः दोनों को विशिष्ट रूप में मुख्य फल कहना तो सम्भव है ही और प्रकरणकार ने वैसा ही किया भी है।

प्रकरण के आरम्भ में मित्रानन्द की उक्ति— “अकृताखण्डधर्माणाम् (१/७)” आदि द्वारा विपत्ति और मैत्रेय की उक्ति— “अस्तमयति पुनरुदयति” (१/८)” इत्यादि द्वारा विपत्ति-निराकरण का भी उपनिबन्ध बीजरूप में किया गया है, साथ ही “अनुरूपं पतिमनासादयन्त्या कुतः पुनरियमस्माभिरुपलभ्या” तक की मित्रानन्द की उक्ति में अभीष्ट फल-प्राप्ति के लिये अपेक्षित उपाय का भी बीजरूप

में निर्देश किया गया है। यही बीज क्रमशः विकसित होता हुआ अन्तिम फल की प्राप्ति का साधन बना है।

सन्धि-निरूपण के लिये भूमिका के रूप में उपर्युक्त विचार के बाद अब पूर्वोक्त पाँच अवस्थाओं का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

(क) आरम्भ

फल-प्राप्ति के लिये औत्सुक्य का प्रदर्शन ही आरम्भ है। 'कुतः पुनरियमस्माभिरुपलभ्या' द्वारा इसका प्रतिपादन प्रकृत प्रकरण में किया गया है। यह मुखसन्धि के अन्तर्गत निबन्धीय है।

(ख) प्रयत्न

फलोपलब्धि के लिये अपेक्षित व्यापार में अधिक औत्सुक्य—शीघ्रता को प्रयत्न कहते हैं। इस प्रकरण में तृतीय अङ्क के आदि से इसका निबन्धन कवि ने किया है। इसका समावेश उस अंश में करणीय है जो प्रतिमुख सन्धि के अन्तर्गत होता है। प्ररूढ़ औत्सुक्य को प्रयत्न कहा जाता है जबकि औत्सुक्य प्ररूढ़ होने से पूर्व अपनी मूल अवस्था में आरम्भपदवाच्य है। यही इन दोनों अवस्थाओं में अन्तर है।

(ग) प्राप्त्याशा

फल-प्राप्ति में किसी निश्चित विघ्न की उपस्थिति न दिखाई पड़ने के कारण फल-प्राप्ति की जो आशा—सम्भावना होती है उसे ही प्राप्त्याशा कहा गया है। फलप्राप्ति का निश्चय तो इस अवस्था में नहीं होता, क्योंकि किसी अनिश्चित विघ्न की आशङ्का कुछ मात्रा में बनी ही रहती है। अतः इस अवस्था में इसका निरूपण इस रूप में किया गया है— “फलान्तरासम्बन्धात् अनिश्चितबाधकाभावाच्चोपायादीषत् प्रधानफलस्य या सम्भावना, न तु निश्चयः सा प्राप्तेः प्रधानफललाभस्य आशा।”^१

इस वाक्य में 'अनिश्चितबाधकाभावात्' 'उपायात्' का विशेषण है। इसका अर्थ है— ऐसा उपाय जिसकी सफलता में कोई प्रतिबन्धक आने वाला है या नहीं इसका निश्चय तो नायक को नहीं हुआ है, किन्तु आपाततः किसी प्रतिबन्ध के न दिखाई पड़ने से फलप्राप्ति की आशा उत्पन्न हो जाती है। इसीलिये इस अवस्था में फलप्राप्ति का निश्चय हो नहीं पाता।

१. ना०द० (वृत्ति), पृ० ८८।

(घ) नियताप्ति

फलप्राप्ति के विषय में निश्चय को नियताप्ति नामक अवस्था कहते हैं। यद्यपि इसे विमर्शसन्धि के अन्तर्गत अथवा विमर्शसन्धि से सम्बद्ध माना गया है जिसमें विघ्न और सफलता का समानबल होना पाया जाता है तथापि दृढ़ सङ्कल्प के कारण फलप्राप्ति का निश्चय हो जाता है। अतएव इसमें विघ्नों का निर्देश रूपक के अन्तर्गत रूपककार को करना ही चाहिए।

(ङ) फलागम

लौकिक इष्ट फल की उत्पत्ति का आरम्भ—फल की उत्पत्ति का होने लग जाना— फलागम है। फलप्राप्ति—नायक द्वारा फल की अनुभूति तो बाद में होती है। अतएव नायक को फलानुभूति के लिये इन पाँच क्रमिक अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। इसके पश्चात् ही उसे फल का अनुभव होता है।^१

उपर्युक्त क्रमागत पाँच अवस्थाओं से क्रमशः सम्बद्ध पाँच सन्धियाँ होती हैं। इनका विवेचन और इस प्रकरण में सीमा-निर्धारण इस प्रकार है—

(क) मुखसन्धि

प्रधान कथावस्तु के मुख जैसे महत्त्वपूर्ण अंश को, अर्थात् 'बीज' की आरम्भस्वरूप अवस्था के लिये साक्षात् या परम्परया उपयोगी विषयों का रूपक के जिस भाग में वर्णन किया जाता है उसे मुखसन्धि कहा गया है। इसमें बीज के उपन्यास के साथ-साथ अङ्गी एवं यथासम्भव अङ्गभूत रसों का समावेश भी होना चाहिए—

मुखं प्रधानवृत्तांशो बीजोत्पत्तिरसाश्रयः ॥^१

कौमुदीमित्रानन्द प्रकरण का प्रथम अङ्क के आदि से लेकर द्वितीय अङ्क के अन्त तक का भाग मुखसन्धि है। इसमें मुख्य फल के बीज का समावेश जहाँ हुआ है उसका निर्देश बीजस्वरूपनिरूपण के प्रसङ्ग में किया जा चुका है। प्रधान रस संयोग शृङ्गार की अभिव्यञ्जना भी प्रथम अङ्क के ११ से १४ तक के पद्यों में और १८वें पद्य में तथा बीच-बीच के गद्यांशों में भी हुई है।

१. इन सबका विस्तृत विवरण नाट्यदर्पण तथा उसकी वृत्ति में (पृ० ८५-९३) द्रष्टव्य है।

२. ना०द०, पृ० ९५

(ख) प्रतिमुखसन्धि

मुखसन्धि के अन्तर्गत सूक्ष्म रूप में विन्यस्त फलप्राप्ति के बीजस्वरूप मुख्य उपाय का प्रतिमुखसन्धि में कुछ अधिक विकास होना चाहिए। इसीलिये **नाट्यदर्पण** में कहा गया है— “प्रतिमुखं कियल्लक्ष्यबीजोद्घाटसमन्वितः।।”^१

इस प्रकरण में तृतीय अङ्क के आदि से लेकर चतुर्थ अङ्क के १४वें पद्य तक प्रतिमुखसन्धि है। तृतीयाङ्क के प्रारम्भ से ही शृङ्गार के स्थायीभाव परस्परानुराग (रति) का पूर्ण विकसित रूप किसी अध्येता से छिप नहीं सकता। वस्तुतः इस प्रकरण में कौमुदी-मिलनस्वरूप मुख्य फल का बीज भी तो वही परस्परानुराग है।

(ग) गर्भसन्धि

जिस सन्धि में पूर्वविकसित बीज में कुछ फलोन्मुखता प्रतीत होती हो— फल-प्राप्ति की कुछ सम्भावना हो परन्तु विघ्नातिशय के कारण फलप्राप्ति का निश्चय न हो अर्थात् फलप्राप्ति की अपेक्षा फल की अप्राप्ति अधिक प्रत्याशित हो वह गर्भसन्धि है। इसमें फलप्राप्ति गर्भगत—अत्यन्त अस्पष्ट दशा में रहती है। अतएव यह सन्धि प्राप्याशा नामक तृतीय उपाय से सम्बद्ध होती है। प्रकृत प्रकरण में चतुर्थ अङ्क के १४वें पद्य के बाद से लेकर पञ्चम अङ्क तक गर्भसन्धि का क्षेत्र है, क्योंकि इस भाग में मित्रानन्द को चोर मानकर पकड़ा जाता है और अमात्य कामरति कौमुदी के प्रति अत्यन्त आसक्त होने के कारण उसे (मित्रानन्द को) राजा के समक्ष किसी भी प्रकार चोर सिद्ध करके मरवाना चाहता है। अतएव बीज के फलोन्मुख होने पर भी विघ्नातिशय के कारण फलप्राप्ति की आशा की गौणता और उसकी अप्राप्ति की प्रधानता स्पष्ट रूप में परिलक्षित होती है।

(घ) विमर्शसन्धि

विमर्श का अर्थ संशय है। इस सन्धि में फलप्राप्ति की प्रायः निश्चितता होने पर भी तुल्यबल विघ्न की उपस्थिति के कारण नायक के मन में कुछ संशय फलप्राप्ति के विषय में होता ही है। वस्तुतः फलप्राप्ति के निश्चित होने का तात्पर्य नायक की दृढ़ इच्छाशक्ति के कारण निश्चितप्राय होना ही है। यही बात इस सन्धि से सम्बद्ध उपाय नियताप्ति के विषय में भी समझनी चाहिए— वहाँ भी नियत का अर्थ नियतप्राय ही है, पूर्णतः नियत नहीं। जब निश्चय संशय का विरोधी है तो फिर फलप्राप्ति का पूर्णतः निश्चय हो जाने पर उपस्थित विघ्नों के प्राप्त्युपाय का

१. ना०द०, पृ० ९६।

समानबलत्व और तन्मूलक संशय कैसे हो सकता है? अतः इस प्रसङ्ग में **नाट्यदर्पण** तथा उसकी वृत्ति में भी जो निश्चय की उक्ति है उसका पूर्वोक्त तात्पर्य ही उचित है।

प्रकृत प्रकरण-रूपक में षष्ठ अङ्क के प्रारम्भ से नवम अङ्क के —
(नेपथ्ये)

अहो! अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम्, अहह! पापकारित्वम्!!^१ इस अंश तक विमर्शसन्धि की सीमा है। इसके अन्तर्गत मैत्रेय द्वारा विजयवर्मा (जिसके द्वारा अमात्य कामरति ने मित्रानन्द को मरवाने की कुत्सित योजना बनाई थी) के व्रणों का औषध-द्रव्य के लेप से स्वस्थ करा देने में सफलता— विजयवर्मा की अनुकूलता अर्जित कर लेने के कारण मित्रानन्द के वध को रोकने की सम्भावना हो जाने से फलप्राप्ति निश्चितप्राय हो जाती है। किन्तु दूसरी ओर अमात्य कामरति की दुष्प्रेरणा से प्रतीहार द्वारा उपस्थापित और वेषभूषा आदि के बदल जाने के कारण अपरिचेय मित्रानन्द की विजयवर्मा द्वारा यक्षराज को बलि देने के लिए निश्चय कर लिये जाने और नरदत्त के कपट के कारण मकरन्द को भी चोरी के अभियोग में युवराज द्वारा वध करने का आदेश दे दिये जाने के कारण फलप्राप्ति में प्रबल बाधा उपस्थित हो जाती है।

अतः इस अंश को रामचन्द्रोक्त लक्षण “उद्भिन्नसाध्यविघ्नात्मा विमर्शो व्यसनादिभिः”^२ के अनुसार विमर्शसन्धि का क्षेत्र मानना प्रमाणित है।

(ङ) निर्वहणसन्धि

बीज आदि उपायों और प्रारम्भ आदि अवस्थाओं का जहाँ अन्ततोगत्वा मुख्य फल के साथ योग अर्थात् मुख्य फल का आगम (प्राप्ति) वर्णित हो रूपक का वह अंश निर्वहणसन्धि का क्षेत्र माना जाता है—

सबीजविकृतावस्था नानाभावा मुखादयः।

फलसंयोगिनो यस्मिन् असौ निर्वहणो ध्रुवम्।^३

इस रूपक के इसी अंश— विमर्शसन्धि के क्षेत्र से पश्चाद्वर्ती अंश में उपर्युक्त स्थिति वर्णित है। अतः यही अंश निर्वहणसन्धि के क्षेत्र में आता है। यह विषय

१. यह अंश प्रकृत संस्करण के पृ० १६६ पर मुद्रित है।

२. ना०द०, पृ० ९९।

३. वहीं, पृ० १०२।

साधारणतः प्रत्येक रूपक के भरतवाक्य में उपसंहृत होता है जिसे रूपककार ने यहाँ सिद्धाधिनाथ के वचन में प्रस्तुत किया है—

उपनतमित्रकलत्रः सन्तप्तारामचन्द्रकरविशदाम् ।

आसाद्य यशोलक्ष्मीं परां स्वतन्त्रश्चिरं भूयाः।।^१

सन्ध्यङ्ग-विवेक

उक्त क्रमिक पाँच सन्धियों के क्रमशः १२, १३, १३, १३ और १४ अङ्ग माने गये हैं। इनमें मुखसन्धि के १२ अङ्गों के नाम हैं— उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, समाहिति, उद्भेद, करण, विलोभन, भेदन, प्रापण, युक्ति, विधान और परिभावना।^२

अब इस रूपक की मुखसन्धि के अर्न्तगत इन १२ अङ्गों का परिचय देना है। किन्तु उससे पूर्व इन अङ्गों के क्रम के विषय में प्रकरणकार रामचन्द्र का **नाट्यदर्पण** में दिया गया वक्तव्य ध्यान देने योग्य है—

उपक्षेप-परिकर-परिन्यासानां यथोद्देशक्रममादावेव, समाधानस्य तु रचनावशान्मध्यैकदेश एव, उद्भेदकरणयोस्तु उपान्त्ये निबन्धः।^३

इनमें भी उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, समाधान (अथवा समाहिति), उद्भेद और युक्ति— ये छः अङ्ग तो मुखसन्धि में अवश्य होने चाहिए, अन्य अङ्गों का समावेश यथासम्भव सभी अन्य सन्धियों में भी सम्भव है। ऐसी स्थिति में सन्ध्यङ्गों की पूर्वोक्त संख्या में हास-वृद्धि भी सम्भव है।^४

इस सन्दर्भ में **नाट्यदर्पण** में विस्तृत विवेचन है, किन्तु उन सबका इसमें विवेचन करना सम्भव नहीं है।

अब इन सन्ध्यङ्गों का सोदाहरण विवरण प्रस्तुत है—

(१) उपक्षेप

रामचन्द्र ने इसका लक्षण इस प्रकार किया है— **बीजस्योप्तिरुपक्षेपः।**^५

१. कौ०मि०, १०/१८।

२. ना०द०, पृ० १०५।

३. वहीं, पृ० १०६।

४. ना०द०, पृ० १०६।

५. वहीं, पृ० १०८।

इसका तात्पर्य यह है कि फलप्राप्ति के बीज का वपन 'उपक्षेप' है। इस रूपक के—

अस्तमयति पुनरुदयति पुनरस्तमुपैति पुनरुदेत्यर्कः।

विपदोऽपि सम्पदोऽपि च सततं न स्थास्नवः प्रायः।।^१

इस पद्य में बीज का उपक्षेप किया गया है, क्योंकि समुद्र में नौका के डूब जाने से विपन्न मित्रानन्द आदि की सफलता की आशा इस उक्ति में परिलक्षित होती है।

(२) परिकर

परिकर का लक्षण है— 'स्वल्पव्यासः परिक्रिया।'^२ पूर्व में उपक्षिप्त बीज का विशेष वचन द्वारा स्वल्प विस्तार 'परिक्रिया'— 'परिकर' है। इस रूपक में मित्रानन्द से कुलपति का 'सञ्जातपाणिग्रहणोऽसि न वा'^३ यह प्रश्न और मैत्रेय द्वारा 'असञ्जातपाणिग्रहण एवायं सार्थवाहसूनुः'^४ यह उत्तर तथा इसके बाद 'द्रुततरमाह्वय कौमुदीम्'^५ कुलपति के इस कथन में कौमुदी-सम्प्राप्तिस्वरूप मुख्य फल के बीज— कौमुदीप्राप्त्यभिलाष का कुछ विस्तार हुआ है।

(३) परिन्यास

फल-प्राप्ति का विनिश्चय 'परिन्यास' कहलाता है— 'विनिश्चयः परिन्यासः।'^६ इस प्रकरण में मित्रानन्द की इस उक्ति— 'सफलतां प्रयातु मे प्रार्थनालेशः'^७ और कौमुदी की इस उक्ति— 'सफलमेतस्य दर्शनेन मनुष्यजन्म'^८ से परस्परानुराग की स्पष्ट अभिव्यक्ति से फल-प्राप्ति का विनिश्चय प्रमाणित है। अतः इसे 'परिन्यास' कहा जाना चाहिये।

१. कौ०मि०, १/८।

२. ना०द०, पृ० १०९।

३. कौ०मि०, पृ० १५।

४. वहीं, पृ० १६।

५. वहीं, पृ० १६।

६. ना०द०, पृ० १०९।

७. कौ०मि०, पृ० १७।

८. वहीं, पृ० १८।

(४) समाधान

पूर्व में संक्षिप्त रूप में उपक्षिप्त बीज का, स्पष्टता के लिये, पुनः भङ्गभेद से प्रकटन 'समाधान' है— 'पुनर्न्यासः समाहितः। संक्षिप्योपक्षिप्तस्य बीजस्य स्पष्टताप्रतिपादनार्थं पुनर्न्यासो भणितिवैचित्र्यं सम्यगासमन्ताद् धानं पोषणं समाहितः।'^१ प्रकृत प्रकरण में मित्रानन्द के दर्शन से कौमुदी में हुई सात्त्विक भावों की अभिव्यक्ति देखकर कुलपति के इस कथन— 'अयं खलु ते प्राणितस्यापि स्वामी, किमङ्ग पुनरपरासां क्रियाणाम्।'^२ और तदनन्तर मित्रानन्द की इस स्वगत उक्ति— 'सुमेधा निश्चितं वेधाः' (१/१९) में मुखसन्धि के समाधान नामक अङ्ग का उपनिबन्ध हुआ है।

(५) विलोभन

प्राप्तव्य पदार्थ की गुणवत्ता के कारण प्राप्ति की दृढ़ इच्छा को विलोभन कहते हैं।^३ इस प्रकरण में कुलपति के इस कथन— इयं च प्ररूढयौवना.....तदस्याः पाणिग्रहणेन सफलयितुमर्हसि मर्त्यलोकावतारम्'^४ के पश्चात् मित्रानन्द के कथन— 'भगवन्! कोऽयमस्मास्वज्ञातकुलशीलेषु प्रसादातिरेकः'^५ के द्वारा विलोभन नामक अङ्ग को प्रकट किया गया है।

(६) प्रापण

फल-प्राप्ति की सम्भावना से सुख के साधन की प्राप्ति तथा तदनुसार सुखानुभव को प्रापण कहते हैं— 'प्रापणं सुखसम्प्राप्तिः।'^६ कौमुदीमित्रानन्द प्रकरण में कुन्दलता से मित्रानन्द को जो मणि मिला और शीतल जल को उस मणि से सम्पृक्त कराकर उस जल द्वारा सिद्धाधिनाथ (पुरुष) के कीलितव्रण की मित्रानन्द ने जो सफल चिकित्सा की उसके वर्णन में^७ प्रापण उपनिबद्ध है।

-
१. ना०द०, पृ० १११।
 २. कौ०मि०, पृ० १९।
 ३. ना०द०, पृ० ११५।
 ४. कौ०मि०, पृ० २१।
 ५. वहीं, पृ० २१।
 ६. ना०द०, पृ० ११७।
 ७. कौ०मि०, पृ० ३०-३२।

(९) युक्ति

गुण-दोष का निरूपण कर कर्तव्य के विषय में निर्णय करना 'युक्ति' है—
'युक्तिः कृत्यविचारणा।'^१ 'एते वयमागता एव रहः किमपि भगवत्या सह पर्यालोचयितुम्'^२ मित्रानन्द की इस उक्ति में यह अङ्ग सन्निवेशित है।

कौमुदीमित्रानन्द में यह अङ्ग पूर्वोक्त प्रापण नामक सन्ध्यङ्ग के अन्तर्गत निबद्ध है, क्योंकि इस सन्दर्भ के प्रारम्भ में जैसा कहा जा चुका है तदनुसार कुछ अङ्ग-विशेषों के क्रम की तो मान्यता है किन्तु अन्य अङ्गों का यथासम्भव क्रम हो भी सकता है, नहीं भी। स्वयं नाट्यदर्पण में प्रकरणकार ने इसी 'युक्ति' के विषय में कहा है कि तापसवत्सराज में यह युक्ति उपक्षेप और परिकर के मध्य ही उपनिबद्ध^३ है।

(८) विधान

एक या अनेक पात्रों में सुख और दुःख की (पात्र के भिन्न-भिन्न होने पर एक काल में भी और पात्र के एक होने पर पौर्वापर्य से भिन्न-भिन्न काल में भी) प्राप्ति को विधान कहा जाता है— 'विधानं सुखदुःखाप्तिः।'^४

यह ज्ञातव्य है कि सुख और दुःख की प्राप्तियों में विपरीत क्रम भी हो सकता है। यह पूर्णतः निर्भर है कथा और रूपककार द्वारा उसके चित्रण पर। इसका जो उदाहरण नाट्यदर्पण में दिया गया है उसमें सुख-प्राप्ति पहले और दुःख-प्राप्ति पश्चात् है।

यद्विस्मयस्तिमितमस्तमितान्यभावम्
आनन्दमन्दममृतप्लवनादिवाभूत् ।
तत्सन्निधौ तदधुना हृदयं मदीयम्
अङ्गारचुम्बितमिव व्यथमानमास्ते।।^५

भवभूति के उक्त पद्य में सुख-प्राप्ति पहले और दुःख-प्राप्ति पश्चाद् वर्णित है। परन्तु कालिदास के विक्रमोर्वशीय के निम्नोल्लिखित पद्य में पहले दुःख और पश्चात् सुख की प्राप्ति वर्णित है—

१. ना०द०, पृ० ११९।

२. कौ०मि०, पृ० ३०।

३. ना०द०, पृ० ११९; अन्यत्र भी कहा है नाट्यदर्पण में— 'उपक्षेपपरिकरपरिन्यासेभ्योऽ-
पराण्यङ्गानि वृत्तानुगुण्यादुद्देशक्रमातिक्रमेणापि निबध्यन्ते।

४. वहीं, पृ० १०६।

५. मालतीमाधव, १/२०।

पादास्त एव शशिनः सुखयन्ति गात्रं
 बाणास्त एव मदनस्य ममानुकूलाः।
 संरम्भरूक्षमिव सुन्दरि यद् यदासीत्
 त्वत्सङ्गमेन मम तत् तदिहानुनीतम्।^१

नाट्यदर्पण में इस अङ्ग के तापसवत्सराज से दिये गये द्वितीय उदाहरण में भी यही स्थिति है।

(९) परिभावना

नाट्यदर्पण में परिभावना का स्वरूप यह दिया है— 'जिज्ञासातिशयेन किमेतदिति कौतुकानुबन्धो विस्मयः परिभावना।'^२

इस प्रकरण में मणिसम्पृक्त शीतल जल के लेपमात्र से सिद्ध के कीलित व्रणों की सफल चिकित्सा से चकित मित्रानन्द की यह कौतुकपूर्ण उक्ति इसका उदाहरण है— 'कथं क्षणादेव गात्रमशेषमप्यलक्षितव्रणसन्निवेशमजायत!'^३

(१०) उद्भेद

प्रारम्भ में उपक्षिप्त बीज का स्वल्प विकास अर्थात् पुष्पित होना उद्भेद है।^४ पूर्व में कहा जा चुका है कि उद्भेद और करण का सन्धि के अन्त से कुछ पूर्व (उपान्त्य में) उपनिबन्ध होना चाहिए। कौमुदीमित्रानन्द में भी नेपथ्य में उच्चरित यह पद्य— 'श्रेयांसि प्रभवन्तु ते प्रतिदिशं तेजांसि वर्धिष्णिगताम्' (२/११)— इस अङ्ग का उदाहरण है।

(११) करण

अवसरोचित कार्य का सम्पादन (बीज के विकास हेतु) करण कहा जाता है— 'करणं प्रस्तुतक्रिया।'^५

कौमुदीमित्रानन्द का वह सन्दर्भ इसका उदाहरण है जिसमें पाशापाणि द्वारा जब मित्रानन्द और मैत्रेय पर सिद्ध के कीलों के निकालने का अभियोग लगाकर

१. विक्रमोर्वशीय, ३/२०।
२. ना०द०, पृ० ११२।
३. कौ०मि०, पृ० ३३।
४. ना०द०, पृ० ११४।
५. वहीं, पृ० ११५।

उन दोनों को दण्डित करने का प्रयत्न किया जाता है तो मित्रानन्द आदि द्वारा अपनी सुरक्षा के लिए अन्ततः भगवान् ब्रह्मा की शरण में जाना आदि वर्णित है।^१

(१२) भेदन

सभी पात्रों के रङ्गमञ्च से चले जाने को भेदन कहा जाता— ‘भेदनं पात्रनिर्गमः।’^२ यह अङ्ग अङ्क के अन्त में तथा विष्कम्भक और प्रवेशक के अन्त में अवश्य उपनिबन्धनीय है— ‘भेदस्तु सर्वसन्धिष्वङ्गान्ते प्रवेशकविष्कम्भकान्ते च अवश्यं निबन्धनीयः।’^३

इसी प्रकार अन्य सन्धियों के अङ्गों का भी, रूपक में यथासम्भव क्रम अथवा आवश्यकतानुसार व्युत्क्रम से, निबन्धन रूपककार को करना चाहिए, क्योंकि इससे रूपकों में चमत्कार आता है। यहाँ केवल मुखसन्धि के सभी अङ्गों का सोदाहरण निरूपण किया गया है। इसी रीति से प्रतिमुखादि सन्धियों के अङ्गों का भी उदाहरण देखना चाहिए। सब का निरूपण तो यहाँ सम्भव नहीं है। सन्ध्यङ्गों के विषय में निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान अवश्य देना चाहिए—

(क) जैसे सन्धि (मुखसन्धि) का आरम्भ आमुख के बाद ही करना चाहिए वैसे इसके अङ्गों का भी आमुख के बाद ही, क्योंकि अङ्गी से बहिर्भूत अङ्गों का समावेश अनुचित है। कहा भी है **नाट्यदर्पण** में— ‘आमुखस्य च नटवृत्तत्वेन इतिवृत्तानङ्गत्वात्तदनन्तरमङ्गानां निबन्धः।’^४

(ख) कुछ अङ्ग ऐसे हैं जिनका एक सन्धि में भी आवश्यकतानुसार अनेक बार समावेश सम्भव है और भिन्न सन्धियों में भी— ‘विलोभनादीनि तु सर्वसन्धिष्वपि भवन्ति, संविधानकवशात्तदर्थस्यान्यत्रापि सम्भवात्।’^५

(ग) कहीं-कहीं एक सन्धि के सभी अङ्गों में से कुछ का समावेश दूसरी सन्धियों से भी किया जा सकता है यदि ऐसा करने पर कथा में अधिक चमत्कार आ जाय। ऐसी स्थिति में सन्ध्यङ्गों की आरम्भ में जो १२, १३ आदि संख्या बतलाई गई है वह सामान्य व्यवस्था के अनुसार है, विशेष व्यवस्था में यह संख्या भिन्न भी

१. कौ०मि०, पृ० ३६।

२. ना०द०, पृ० ११६।

३. वहीं, पृ० १०६।

४. वहीं, पृ० १०६।

५. ना०द०, पृ० १०६।

हो सकती है, किन्तु कुल मिलाकर सन्ध्यङ्गों की संख्या ६५ है। हाँ, यदि किसी रूपक में किसी अङ्ग या अङ्गों का अनेक बार उपनिबन्ध किया गया हो और उनको अलग-अलग स्वतन्त्र रूप में लिया जाय तब तो रूपक-भेद से पूर्वसङ्कलित संख्या-६५ में वृद्धि भी हो सकती है।

(घ) सन्ध्यादि की संख्या, विशेषतः सन्ध्यङ्गों की संख्या में ह्रास भी हो सकता है, यदि किसी सन्धि या सन्ध्यङ्ग की रसाभिव्यक्ति में कोई उपयोगिता न हो अथवा उसमें वह सन्धि या सन्ध्यङ्ग बाधक हो। अत एव आचार्य आनन्दवर्धन ने स्पष्ट कहा है—

सन्धिसन्ध्यङ्गघटनं रसाभिव्यक्त्यपेक्षया।

न तु केवलया शास्त्रस्थितिसम्पादनेच्छया।।^१

नाट्यदर्पण के निम्नलिखित वक्तव्य से भी यही ध्वनित होता है— ‘अवस्थानां च ध्रुवभावित्वात् सन्ध्योऽपि नाटक-प्रकरण-नाटिका-प्रकरणीषु पञ्चावश्यम्भाविनः। समवकारादौ तु विशेषोपादानादूनत्वेऽपि न दोषः।।’^२

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि **कौमुदीमित्रानन्द** एक उत्कृष्ट प्रकरण है जिसमें प्रकरण के प्रायः सभी वैशिष्ट्य उपलब्ध हैं।



१. ध्वन्यालोक, ३/१२।

२. ना०द०, पृ० ९४।

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

सूत्रधार	= प्रकरणाभिनय का निर्देशक प्रधान नट
नट	= सूत्रधार का सहायक — पारिपार्श्विक
मित्रानन्द	= प्रकरण का नायक
मैत्रेय } मकरन्द }	= मित्रानन्द के मित्र
कुलपति	= प्रशान्तविरोध नामक आश्रम का घोरघोण नामक छद्मवेषधारी प्रधान तपस्वी
गजपाद	= कुलपति का अनुज
तुन्दिल } खर्वशाख } गृधाक्ष }	= कुलपति के अनुचर
पुरुष	= द्वितीय अङ्क में कामी सिद्ध और षष्ठ एवं दशम अङ्क में मित्रानन्द।
पाशपाणि	= वरुणद्वीप पर कामकेलि करने वाले जलपति वरुणदेव
कुन्दप्रभ } मर्कटवर्ण }	= पाशपाणि के अनुचर
बटु	= बालतपस्वी
पुरोध्या	= कुलपति का पुरोहित
देवता	= विषवैद्या जाङ्गलीदेवी
द्विज } स्थविर } वृद्धा }	= रङ्गशालापुरी के नागरिक
कालपाश	= रङ्गशालापुरी का सुरक्षाधिकारी

दीर्घदंष्ट्र } वराहतुण्ड } वज्राङ्कुर }	= कालपाश के सहायक सैनिक
श्रपाक	= चाण्डाल
कामरति	= सिंहलद्वीप का महामन्त्री
विनयन्धर } शिखण्ड }	= कामरति के अनुचर
राजा	= सिंहलनरेश विक्रमबाहु
कुमार } युवराज }	= सिंहलद्वीप का युवराज लक्ष्मीपति
प्रतीहार	= सिंहलनरेश का द्वारपाल
विजयवर्मा	= रत्नाकर नगर का सामन्त
मदनक } मङ्गलक } माधव्य } सुनन्द } कपिञ्जल }	= विजयवर्मा के अनुचर
पल्लीपति } वज्रवर्मा }	= चोरों की बस्ती का मुखिया
सर्पकर्ण } यमदण्ड } पिङ्गलक }	= पल्लीपति के अनुचर
कापालिक } सिद्धाधिनाथ }	= छद्मवेषधारी कपटी सिद्ध
मायामय	= कापालिक का अनुचर
चारायण	= सिंहलद्वीप का मन्त्री
नरदत्त	= धूर्त व्यापारी

देवशर्मा	= चारायण का अनुचर	
कञ्चुकी	= अन्तःपुर का वृद्ध सेवक	
बर्बर	= नरदत्त का सहायक	
पञ्चभैरव सुघण्ट नन्दिघोष ब्रह्मलय	} = सिद्धाधिनाथ के अनुचर	
सार्थवाह पथिक		} = मकरन्द
मान्त्रिक		
प्रतीहार		= सिद्धाधिनाथ का द्वारपाल

स्त्री पात्र

कौमुदी	= कुलपति की पुत्री और प्रकरण की नायिका
कुन्दलता	= आश्रम की तापसी और कौमुदी की सखी
गन्धमूषिका	= छद्मवेषधारिणी वृद्धा तापसी और कौमुदी की बुआ
पत्रलेखा	= सिंहलद्वीप की महारानी
चेटी	= महारानी पत्रलेखा की दासी
सुमित्रा	= मकरन्द की पत्नी
क्षेमङ्करी लम्बस्तनी	} = सिद्धाधिनाथ की अनुचरियाँ

प्रबन्धशतकर्तृ-महाकवि-श्रीरामचन्द्रसूरि-विरचितं

कौमुदीमित्रानन्दरूपकम्

॥ प्रथमोऽङ्कः ॥

यः प्राप निर्वृतिं क्लेशाननुभूय भवार्णवे।

तस्मै विश्वैकमित्राय त्रिधा नाभिभुवे नमः ॥१॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—(साक्षेपम्) भो भोः सभासदः! सावधानाः शृणुत विज्ञापनामेकाम्—

ध्यामोहप्रतिरोहपीतमनसः प्रज्ञाप्रसादाञ्चिता-

स्तस्माद् यद्यपजानते किमपि तैर्बाध्यामहे किं वयम्?।

प्रथम अङ्क

जिसने संसाररूपी सागर में (अनेकविध आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक) कष्टों को सहकर मोक्ष प्राप्त कर लिया है, विश्व के एकमात्र मित्रस्वरूप उस भगवान् ऋषभदेव को तीन बार नमस्कार है ॥१॥

(नान्दी के पश्चात्)

सूत्रधार—(क्रोधपूर्वक) हे हे सभासदो! आप लोग सावधान होकर एक सूचना सुनें—

मोह (अज्ञान) के आवरण से मन्दबुद्धि वाले लोग यदि हमारी कुछ निन्दा करते हैं तो क्या उससे ज्ञानी (नाट्यकर्म में दक्ष) हम अज्ञानी सिद्ध हो जायेंगे?

१. **टिप्पणी** : प्रकृत श्लोक नान्दी के रूप में पठित है। रूपकभेदों में उनके निर्विघ्न प्रदर्शन के उद्देश्य से सम्पादित होने वाले पूर्वरङ्ग के अन्तर्गत नाटकादि के प्रदर्शन से ठीक पहले सूत्रधार नान्दीपाठ करता है। इसमें अपने इष्टदेव, ब्राह्मण अथवा राजाओं की आशीर्वचनयुक्त स्तुति की जाती है, जैसा कि इसका साहित्यदर्पणोक्त लक्षण है —

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।

देवद्विजनुपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥ —सा.द., ६/२४।

सूर्या-चन्द्रमसावपि द्युतिमयौ निस्तेजसी लोचने

जानीतः स्फुरिताञ्जनैकवपुषौ, तत् किं न तौ भास्वरौ? ।। २ ।।

(आकाशे)

किमादिशत? ये दुरात्मानो भवन्तमप्यपजानते न ते नाट्यवेदाभ्योधिपार-
दृशानः, ततः कृतं वैमनस्येन। प्रभूतकौतुकानुबन्धं (प्रबन्धं) कमप्यभिनीय
व्यपेतव्यामोहतमांसि प्रसादय प्रबलभाग्यप्रागल्भ्यलभ्यानां सभ्यानां मनांसि।
(विमृश्य) यथावस्थितमादिशन्ति सभ्याः। दुर्जनोपनीतक्लेशकोटिकण्टकिला
खल्वियं संसाराटवी। गरीयसे च फलायोपनिबद्धकक्षेण प्रेक्षापूर्वकारिणा
लोचने निमील्य सोढव्या एव प्रत्यूहव्युपनिपत्तयः। तदहं गृहं गत्वा
प्रबन्धविशेषं कमपि पर्यालोचयामि।

(नेपथ्ये)

कृतं पर्यालोचनेन। अस्ति खलु श्रीसिद्धहेमचन्द्राभिधानशब्दानुशासन-
विधानवेधसः श्रीमदाचार्यहेमचन्द्रस्य शिष्येण प्रबन्धशतविधाननिष्णातबुद्धिना

दीप्तिमान् सूर्य और चन्द्रमा को भी निस्तेज (प्रकाशहीन) आँखें अञ्जन का ढेर मात्र
समझती हैं, तो क्या वे दीप्तिमान् नहीं हैं? अर्थात् अवश्य हैं।। २ ।।

(आकाश में)

क्या कह रहे हैं? जो दुरात्मा (मूर्ख) आपकी भी निन्दा कर रहे हैं, वे नाट्यवेद
के मर्म को नहीं समझते। अतः (उनकी निन्दा से) दुःखी होना व्यर्थ है। आप किसी
अत्यधिक कौतूहलपूर्ण प्रबन्ध (रूपक) का अभिनय कर हमारे प्रबल भाग्य की
प्रगल्भतावश (सभा में) आये हुए सामाजिकों के मोहान्धकार से लिप्त मन को
आह्लादित करें। (सोचकर) प्रेक्षकगण किसी समसामयिक (वर्तमान) सामाजिक
स्थिति को चित्रित करने वाले रूपक के प्रदर्शन का आदेश दे रहे हैं। यह संसाररूपी
जङ्गल दुर्जनों द्वारा उपस्थापित भाँति-भाँति के क्लेशों से कँटीला हो गया है, अतः
उत्कृष्ट फल की प्राप्ति हेतु कमर कसकर और सोच-समझकर कार्य करते हुए हमको
इन विघ्नों को सहन करना ही होगा। अतः अब मैं घर जाकर किसी प्रबन्धविशेष
के बारे में विचार करता हूँ।

(नेपथ्य में)

विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं। 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' नामक
व्याकरण की रचना करने वाले विद्वान् श्रीमदाचार्य हेमचन्द्र के शिष्य, एक सौ प्रबन्धों

नाट्यलक्षणनिर्माणापातावगाढसाहित्याम्भोधिना विशीर्णकाव्यनिर्माणनिस्तन्त्रेण श्रीमता रामचन्द्रेण विरचितं कुतूहलसहस्रनिधानं कौमुदीमित्रानन्दाभिधानं निःशेषरसभावप्रदीपकं द्वितीयं रूपकम्।

सूत्रधारः— कथमयं वत्सस्ताण्डकः प्रबन्धविशेषं निर्णयति?

(प्रविश्य)

नटः— भाव ! प्रणमामि।

सूत्रधारः— मार्श ! कौमुदीमित्रानन्दनामः प्रकरणस्याभिनये कृतनिश्चयोऽसि?

नटः— सन्ति नामात्र भूयांसि सामाजिकजनमनःकौतुकानुबन्धीनि कथावस्तूनि। रसनिवेशभावाऽभावयोः पुनर्भावः प्रमाणम्।

सूत्रधारः— (विहस्य) प्रकरणस्यास्य सरसतायां किमुच्यते?

यतः —

की रचना करने से निष्णात बुद्धि वाले, नाट्यलक्षण (नाट्यदर्पण) की रचना कर साहित्यसागर में डुबकी लगाने वाले और सतत काव्यरचना में तत्पर श्रीमान् रामचन्द्र द्वारा रचित सहस्रों कुतूहलों का निधान और समस्त रस-भावों को उद्दीप्त करने वाला 'कौमुदीमित्रानन्द' नामक एक रूपक (प्रकरण) तो है ही।

सूत्रधार—क्या यह वत्स ताण्डक (किसी) प्रबन्धविशेष (के अभिनय) का निर्णय कर रहा है?

(प्रवेश कर)

नट—भाव ! प्रणाम करता हूँ।

सूत्रधार—मार्श! क्या 'कौमुदीमित्रानन्द' नामक प्रकरण के अभिनय का निश्चय कर चुके हो?

नट—(हाँ भाव, क्योंकि) इसमें प्रेक्षकों के मन में कुतूहल उत्पन्न करने वाली अत्यधिक कथा-सामग्री है। इसमें रसयोजना के भाव या अभाव के विषय में तो आप ही प्रमाण हैं।

सूत्रधार—(हँस कर) इस प्रकरण की सरसता के विषय में क्या कहना? क्योंकि —

प्रबन्धानाघातुं नवभणितिवैदग्ध्यमधुरान्
 कवीन्द्रा निस्तन्द्राः कति नहि मुरारिप्रभृतयः?
 ऋते रामान्नान्यः किमुत परकोटौ घटयितुं
 रसान् नाट्यप्राणान् पटुरिति वितर्को मनसि नः ॥३॥

अपि च —

प्रबन्धा इक्षुवत् प्रायो हीयमानरसाः क्रमात् ।
 कृतिस्तु रामचन्द्रस्य सर्वा स्वादुः पुरः पुरः ॥४॥

नटः— (सावहेलम्) भाव!

परोपनीतशब्दार्थाः स्वनाम्ना कृतकीर्तयः ।
 निबन्धारोऽधुना तेन विश्रम्भस्तेषु कः सताम्? ॥५॥

सूत्रधारः— मार्ष! नास्य पर्यनुयोगस्य वयं पात्रम् । अत्रार्थे प्रबन्धविधान-
 समानकालाः सुमेधस एव प्रमाणम् ।

नटः— (सविषादम्) भाव ! निर्विण्णोऽस्मि तेनामुनाऽपदे क्लेशावेशदुर्भगेन

नये-नये शब्दों के दक्षतापूर्ण विन्यास से मधुर प्रबन्धों की रचना करने वाले मुरारि प्रभृति कितने ही मननशील कविश्रेष्ठ हुए हैं, किन्तु नाट्य के प्राणस्वरूप रस की चरम अनुभूति करवाने में रामचन्द्र से अधिक पटु अन्य कोई नहीं है—
 ऐसा मेरा विचार है ॥३॥

और भी—

प्रायशः अन्य प्रबन्धों की रसवत्ता (स्वादुत्व) इक्षु के समान क्रमशः क्षीण होती जाती है, किन्तु रामचन्द्र की कृतियों की रसवत्ता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है ॥४॥

नट—(तिरस्कारपूर्वक) भाव !

इस युग में जो कविगण दूसरों के शब्दार्थयुगल (काव्य) को अपने नाम से करके यश प्राप्त करने वाले हैं, ऐसे कवियों में सज्जनों का विश्वास (श्रद्धा) कैसे हो? ॥५॥

सूत्रधार—मार्ष! इस कविकर्म की भर्त्सना करने की योग्यता हम लोगों में नहीं। इस (प्रबन्ध की उत्कृष्टता अथवा अनुत्कृष्टता के) विषय में तो प्रबन्धरचना के समकालिक सुधीजन ही प्रमाण हैं।

नट—(विषादपूर्वक) भाव! असमय में (अनुचित स्थान पर) इस क्लेशाधिक्य

शैलूषविद्यावैभवोपभोगेन। ततस्तां कामपि क्रियामनुतिष्ठ श्रेष्ठां यथा
विश्रान्ताशेषविपदं श्रायसीं सम्पदमासाद्य सततसन्निहितमित्र-कलत्र-स्वापतेयः
सुचिरममन्दमानन्दमुद्ग्रहामि।

सूत्रधारः— (साक्षेपम्) मार्ष ! संसारस्वरूपपरिज्ञानवैदग्धीबन्धु इव
व्याहरसि। ननु —

अकृताखण्डधर्माणां पूर्वे जन्मनि जन्मिनाम्।

सापदः परिपच्यन्ते गरीयस्योऽपि सम्पदः॥६॥

(नेपथ्ये)

विवेकोपनिषदमभिहितवानसि।

सूत्रधारः— कथमयं मित्रानन्दभूमिकावाही नर्तकः शब्दायते? तदेहि
मार्ष ! करणीयान्तरमनुतिष्ठामः।

(इति निष्क्रान्तौ।)

॥आमुखम्॥

के कारण अशोभनीय (दुःखद) नटविद्या के वैभव के उपभोग से व्यथित हो गया
हूँ। अतः किसी ऐसी श्रेष्ठ क्रिया (रूपक) का अनुष्ठान (प्रदर्शन) कीजिए जिससे
मैं सकल-विघ्नहारिणी मोक्षरूपिणी सम्पत्ति को प्राप्तकर तथा सतत मित्र, भार्या
एवं स्वजनों के साथ रह कर चिरकाल तक प्रचुर आनन्द का उपभोग कर सकूँ।

सूत्रधार—(क्रोधपूर्वक) मार्ष! संसार के वास्तविक स्वरूप के परिज्ञान में
असमर्थ अज्ञानियों जैसी बातें कर रहे हो। सुनो—

पूर्वजन्म में अखण्ड धर्माचरण न करने वाले प्राणियों की प्रभूत सम्पत्ति भी
अतिशीघ्र विनष्ट हो जाया करती है॥६॥

(नेपथ्य में)

तुमने बड़े ज्ञान की बात कही है।

सूत्रधार—क्या यह मित्रानन्द की भूमिका का निर्वाह करने वाला नट बोल
रहा है? तो आओ मार्ष! अन्य अवशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करें।

(दोनों निकल जाते हैं।)

॥आमुखम्॥'

१. टिप्पणी : नाटकादि के प्रारम्भ में नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक प्रस्तुत

(ततः प्रविशति मित्रानन्दो मैत्रेयश्च)

मित्रानन्दः— परमार्थोऽयम् —

अकृताखण्डधर्माणां पूर्वं जन्मनि जन्मिनाम्।

सापदः परिपच्यन्ते गरीयस्योऽपि सम्पदः ॥७॥

(विमृश्य मैत्रेयं प्रति) प्रथाणप्रारम्भनिरूपितस्य शुभोदकसंसूचिनस्तस्य त्वदीयस्य शकुनस्य तदिदं यानपात्रभङ्गावेदितं शुभमभूत्।

मैत्रेयः— सार्थवाहपुत्र! मा स्म विषीद,

(तत्पश्चात् मित्रानन्द और मैत्रेय प्रवेश करते हैं।)

मित्रानन्द— यह परमसत्य है —

पूर्वजन्म में अखण्ड धर्माचरण न करने वाले प्राणियों की प्रभूत सम्पत्ति भी अतिशीघ्र विनष्ट हो जाया करती है ॥७॥

(सोचकर मैत्रेय से) यात्रा के प्रारम्भ में तुम्हारे द्वारा विवेचित उस शुभसूचक शकुन के शुभ फल की सूचना नौका नष्ट होने से ही मिल गयी ??

मैत्रेय— सार्थवाहपुत्र! दुःखी मत हो,

कथानक की सूचना देने वाले विचित्र वाक्यों द्वारा सूत्रधार के साथ वार्तालाप करते हैं। नाटकादि का यह भाग 'आमुख' अथवा 'प्रस्तावना' कहलाता है —

नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्विक एव वा।

सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥

चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः

आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥

— साहित्यदर्पण, ६/३१, ३२

इस आमुख के उद्घात्यक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक और अवलगित— ये पाँच भेद हैं —

उद्घात्यकः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा।

प्रवर्तकावलगिते पञ्च प्रस्तावनाभिदाः ॥ — सा०द०, ६/३३

अस्तमयति पुनरुदयति पुनरस्तमुपैति पुनरुदेत्यर्कः।

विपदोऽपि सम्पदोऽपि च सततं न स्थास्नवः प्रायः॥८॥

तदेहि जानीमः कोऽयं द्वीपः? (इति परिक्रामतः।)

मित्रानन्दः— (विलोक्य) कथमिदं पुरो देवतायतनम्? तदस्य जगत्यां स्थित्वा मानुषं किमपि विलोकयामः।

मैत्रेयः— यथेदं सर्वतः काञ्चनमयं तथा जाने देवताविनिर्मितम्, मध्ये च भगवतः पाशपाणेः प्रतिनिधिर्दृश्यते।

(नेपथ्ये)

नवकंतिमंडणाण वि मुक्ताणं सुत्तिसंपुडिआणं।

गुणसंगममलहंतीण निष्फलो जम्मसरंभो॥९॥

(नवकान्तिमण्डनानामपि मुक्तानां शुक्तिसम्पुटस्थितानाम् ।

गुणसङ्गममलभमानानां निष्फलो जन्मसरंम्भः ॥)

मित्रानन्दः— अनुरूपं पतिमनासादयन्त्याः कस्या अपि लावण्यपुण्यवपुषः पक्ष्मलाक्ष्याः परिदेवितमिदम्।

सूर्य अस्त होता है, उदित होता है, पुनः अस्त होता है और पुनः उदित होता है। इसी प्रकार विपत्तियाँ और सम्पत्तियाँ भी प्रायः सतत स्थायी नहीं रहतीं, अपितु आती-जाती रहती हैं॥८॥

तो आओ ज्ञात करें कि यह कौन सा द्वीप है? (यह कहकर दोनों घूमते हैं।)

मित्रानन्द—(देखकर) क्या यह सामने मन्दिर है? तो इसके प्राङ्गण में खड़े होकर किसी मनुष्य को देखते हैं।

मैत्रेय—जिस प्रकार यह मन्दिर पूर्ण रूप से स्वर्णमय है, उससे प्रतीत होता है कि यह देवता द्वारा निर्मित है और इसके मध्य भाग में भगवान् पाशपाणि (वरुण) की प्रतिमा दिखलाई पड़ रही है।

(नेपथ्य में)

नवीन कान्ति से मण्डित होने पर भी शुक्तिसम्पुट में बन्द, अतएव गुण (सूत्र) का सम्पर्क प्राप्त न कर पाने वाले मोतियों का जन्मग्रहण निष्फल ही है॥९॥

मित्रानन्द— यह स्वगुणानुरूप पति को न प्राप्त कर पाने वाली लावण्य से विभूषित शरीर वाली किसी सुनेत्री (तरुणी) का विलाप है।

(नेपथ्ये)

करसंबंधं काऊण अंगपरिरंभणं अदितेहिं।

न विडंबिज्जइ मित्तेहि कित्तिएहिं सरोरुहिणी? ॥१०॥

(करसम्बन्धं कृत्वा अङ्गपरिरम्भणमददानैः।

न विडम्ब्यते मित्रैः कियद्धिः सरोरुहिणी? ॥)

मित्रानन्दः— इदमपरमस्या वराब्याः किमपि वैशसम्। यत् किल पाणिग्रहणेऽपि पत्यङ्गपरिरम्भालाभः। (मैत्रेयं प्रति) क्षणं निक्षिप दिक्षु चक्षुषी। जानीहि कुतस्त्योऽयं परिदेवितध्वनिः?

मैत्रेयः— (विलोक्य) वयस्य! पश्य निकषा सहकारखण्डदोलाधिरूढां प्ररूढप्रौढयौवनाञ्चितां वनिताम्।

मित्रानन्दः— (सवितर्कम्)

लक्ष्मीः किं पितुरम्बुधेः प्रतिकलं कूलेषु सङ्ग्रीडते ?

कन्या काऽपि किमस्य खेलति मुहुर्देवस्य यादःपतेः?

(नेपथ्य में)

पहले अपनी किरणों के सम्पर्क से कमल को विकसित करके भी सायंकाल में उसको अपनी किरणों से आलिङ्गित न करने वाले सूर्य द्वारा क्या वह कमलिनी ठगी नहीं जाती? नायिकापक्ष में- पाणिग्रहण करके भी शरीर से आलिङ्गन न करने वाले कुछ (धूर्त) मित्रों (प्रेमियों) द्वारा नवयौवना वनिताएँ क्या छली नहीं जाती? ॥१०॥

मित्रानन्द— इस बेचारी का यह कुछ अलग प्रकार का ही दुःख है कि विवाह हो जाने पर भी इसको पति के आलिङ्गन का सुख नहीं मिल सका। (मैत्रेय से) क्षणभर के लिए चारों तरफ दृष्टि डालो और पता लगाओ कि यह रोदनध्वनि कहाँ से आ रही है?

मैत्रेय— (देखकर) मित्र ! समीप में ही आप्रवृक्ष के डालरूपी झूले पर बैठी हुई यौवन से परिपूर्ण तरुणी को देखो।

मित्रानन्द— (वितर्क करते हुए)

क्या यह लक्ष्मी है जो अपने पिता समुद्र के तट पर मधुर-मधुर क्रीड़ा कर रही है? अथवा यह वरुणदेव की कोई पुत्री है जो वारम्वार खेल (झूल) रही है?

द्वीपस्यास्य पयोधिरोधसि कृतस्थानस्य वेलोच्छल-

न्नानारत्ननिधेः किमत्रभवती लीलायते देवता? ॥११॥

मैत्रेयः —

काऽप्येषा सरुषः प्रभाववशतो देवस्य दैत्यस्य वा

लोके शोकमलीमसेऽत्र मनुजीभावं दधौ देवता।

तेनेयं सुरलोकवैभवपरीरम्भाकुलोच्चैस्तरां

दोलोत्सालमिषेण खेचरगतिप्रागल्भ्यमभ्यस्यति ॥१२॥

मित्रानन्दः—

एतां निसर्गसुभगां विरचय्य वेधाः

शङ्के स्वयं स भगवानभिलाषुकोऽभूत् ।

तेनापरग्रहभयाद् वियदङ्कदोला-

दोलायितैरमनुजग्रहणां चकार ॥१३॥

(विमृश्य) यथेयं निरुद्धदोलाकेलिः प्रतिमुहुरस्मान् कटाक्षयति तथा व्यक्तमनयाऽपि वयं दृष्टाः । तदुत्तीर्य नेदीयांसो भवामः ।

अथवा यह बहुविध रत्नों के भण्डार, ऊँची-ऊँची लहरों वाले समुद्र के तट पर स्थित इस द्वीप की वन्दनीया देवी लीला कर रही है? ॥११॥

मैत्रेय— यह सम्भवतः कोई देवी है जिसने किसी देव अथवा दैत्य के शापवश इस दुःख से कलुषित (मर्त्य) लोक में मनुष्यरूप धारण किया है, इसीलिए सुरलोक के वैभव के उपभोग के लिए व्याकुल यह तरुणी काफी ऊँचाई पर झूला झूलने के बहाने से आकाश में विचरण हेतु निपुणता-प्राप्ति का अभ्यास कर रही है ॥१२॥

मित्रानन्द— मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा इस निसर्गसुन्दरी की रचना करके स्वयं इसमें अनुरक्त हो गये। इसीलिए दूसरे इसका ग्रहण न कर लें इस भय से आकाश के गोदरूपी झूले में झुलाकर इसको मनुष्यों के लिए अप्राप्य बना दिया ॥१३॥

(सोचकर) जिस प्रकार यह झूलना बन्द कर बार-बार हम दोनों पर कटाक्ष कर रही है, उससे स्पष्ट है कि इसने हमको देख लिया है। तो (अब हम) उतर कर इसके पास चलें।

मैत्रेयः— कथमियमुत्तीर्णा दोलातः?

मित्रानन्दः— न केवलमुत्तीर्णा, तरुभिस्तिरोधाय क्वचिदपि गता च। हा! हताः स्मः। अकाण्डक्रोधसंरुद्धचेतसा वेधसा कन्यारत्नमिदमुपदर्शय त्वरिततरं तिरोधाय सत्यमस्माकमद्य यानपात्रभङ्गः कृतः। कुतः पुनरियमस्माभिरुपलभ्या ?

(नेपथ्ये)

स्वागतमतिथिभ्याम् ।

मैत्रेयः— कथमयं तापसः शब्दायते?

(ततः प्रविशति तुन्दिलः।)

(उभौ प्रणमतः।)

तुन्दिलः— स्वस्ति यजमानाभ्याम् ।

मित्रानन्दः— मुने ! देशान्तरिणो वयमनभिज्ञा अत्रत्यवृत्तान्तस्य । तत् कथय कोऽयं द्वीपः? कथं च निर्मानुषप्रचारः?

मैत्रेय— क्या यह झूले पर से उतर गयी ?

मित्रानन्द— न केवल उतर गयी, अपितु वृक्षों की आड़ में छिपकर कहीं चली भी गयी। हाय! मारे गये। अकारण ही क्रोध करने से निरुद्ध चित्त वाले विधाता ने इस कन्यारत्न को दिखा कर और फिर शीघ्र ही गायब कर आज वस्तुतः हमारी नौका डुबो दी। अब फिर यह (युवती) हमको कहाँ मिलेगी?

(नेपथ्य में)

दोनों अतिथियों का स्वागत है।

मैत्रेय— क्या यह कोई तपस्वी बोल रहा है?

(तत्पश्चात् तुन्दिल प्रवेश करता है।)

(दोनों प्रणाम करते हैं।)

तुन्दिल— दोनों यजमानों का कल्याण हो।

मित्रानन्द— हे मुनि! परदेशवासी हम दोनों यहाँ के वृत्तान्त से अनभिज्ञ हैं। अतः आप हमें बतलाइये कि यह कौन सा द्वीप है ? और यहाँ कोई मनुष्य क्यों नहीं दिखलायी पड़ रहा है ?

तुन्दिलः— महाभाग! भगवतः पाशपाणोर्वरुणाभिधानोऽयं क्रीडाद्वीपः । सततं च सान्तःपुरः पाशपाणिरत्र क्रीडतीति ब्रह्मचारिणस्तपोधना एव प्रतिवसन्ति, न गृहमेधिनः । इदं च प्रशान्तविरोधाभिधानमाश्रमपदम् । घोरघोणो नाम कुलपतिः सततमधिवसति । तदागच्छत यूयम् । पश्यत ब्रह्माण्डभाण्डोदर-सञ्चारिष्णुयशसः कुलपतेर्निःशेषकल्मषच्छिदालङ्कर्मिणां क्रमाम्भोजयुगलीम् ।

(सर्वे आश्रमाभिमुखमुपसर्पन्ति ।)

मित्रानन्दः— (साश्चर्यम्)

जीर्यत्कर्कटपच्यमानचरवः संरक्ष्यमाणोटज-

द्वारास्तर्णकपङ्क्तभिः शुककुलैरध्याप्यमानद्विजाः ।

एते ते स्थगयन्ति होमसुरभीहम्भापरीरम्भण-

स्फारोद्गारिभिरध्वरस्तवरवैर्दिङ्मण्डलीमाश्रमाः ॥ १४ ॥

तुन्दिलः—

नासान्तस्थितलोचनो गुरुजटाजूटाटवीमेखला-

नीडान्तः कलविङ्ककेलिकलहैर्व्यालोलमन्त्राक्षरः ।

तुन्दिल— महाभाग! यह भगवान् पाशपाणि का 'वरुण' नामक क्रीडाद्वीप है और पाशपाणि यहाँ रमणियों के साथ सतत कामक्रीड़ा करते रहते हैं। यहाँ केवल ब्रह्मचारी तपस्वी ही रहते हैं, गृहस्थ नहीं और यह 'प्रशान्तविरोध' नामक आश्रम है। यहाँ घोरघोण नामक कुलपति सदैव निवास करते हैं। अतः आप लोग आवें और महायशस्वी कुलपति के समस्त पापों के धुल जाने से शोभित चरणकमलों को देखें।

(सभी आश्रम की तरफ बढ़ते हैं।)

मित्रानन्द— (आश्चर्यपूर्वक)

यह आश्रम ऐसा है जहाँ वृद्ध-असमर्थ पक्षियों के लिए चरु (जङ्गली चावल) पकाये जा रहे हैं, कुटियों के द्वारों पर बछड़ों का समूह मानो पहरा दे रहा है, तोतों का समूह द्विज बालकों को पढ़ा रहा है और होमार्थ पालित गायों के रँभाने के सम्पर्क से परिवर्धित और इसीलिए तार स्वर में उच्चारित वैदिक मन्त्रों की ध्वनि से सभी दिशाएँ गुञ्जित हो रही हैं ॥ १४ ॥

तुन्दिल— जिनके नेत्र नासिका के अन्त भाग तक फैले हुए हैं, जिनके द्वारा उच्चारित मन्त्र विशाल जटारूपी जङ्गल के मेखलास्वरूप घोंसले के भीतर

विश्रम्भभ्रमदेणशावककुलव्यालेहनिर्लेपित-

स्कन्धोरः-कर-पाद-भालतिलकः सोऽयं पुरस्तान्मुनिः ॥१५॥

वामतश्चायं कुलपतेरेव भ्राता गजपादः ।

(ततः प्रविशन्ति कुलपतिर्गजपादप्रभृतयश्च तापसाः।)

तुन्दिलः— (अपवार्यं) प्रभूतप्रधानधनाविवैतौ लक्ष्येते।

कुलपतिः— तर्हि सुतरां नः सम्भ्रममर्हतः।

(उभौ प्रणमतः।)

गजपादः— (सादरमिव) इदमासनमास्यताम् ।

कुलपतिः— (सप्रसादमिव मित्रानन्दं प्रति)

अस्तु स्वस्ति शुभोदयाय भवते सन्दृष्टयूयं वयं

जाताः साम्प्रतमद्भुतामृतरसव्यासेकदृष्ट्यद्दृशः।

रहने वाले चटक पक्षियों (गौरैयों) के कलरव से मिश्रित हैं और जिनके कन्धे, हृदय, भुजा और ललाट का तिलक आश्वस्त होकर (आश्रम में) विचरण करने वाले मृगशावकों के टपकते हुए लार से लिप्त हो गये हैं— ऐसे ये मुनिवर सामने दिखलाई पड़ रहे हैं ॥१५॥

और ये बायीं तरफ कुलपति के ही भाई गजपाद हैं।

(तत्पश्चात् कुलपति, गजपाद आदि तपस्विगण प्रवेश करते हैं।)

तुन्दिल— (दूसरी तरफ मुँह घुमाकर) ये अत्यधिक धनवान् प्रतीत होते हैं।

कुलपति— तब तो हमें अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक इनको विश्वास में ले लेना चाहिए।

(दोनों प्रणाम करते हैं।)

गजपाद— (आदर सा प्रकट करते हुए) आप इस आसन पर बैठें।

कुलपति— (प्रसन्न से होकर मित्रानन्द से)

हे मङ्गलकारी (मित्रानन्द)! आपका कल्याण हो, आपको देखकर हमारी आँखें इस समय अद्भुत अमृतरस की बूँदों से मदोन्मत्त हो गयी हैं। (अतः आप

कुत्रत्योऽसि? किमर्थमद्य स भवानस्माकमत्राश्रमे

सम्प्राप्तः? प्रथयामि सामसुभगां कामातिथेयीं त्वयि ।। १६ ।।

मित्रानन्दः— (सविनयम्) भगवन्! कौतुकमङ्गलनगराधिवासिनः क्रमा-
गताद्भुतवैभवस्य जिनदासनाम्नः परमधार्मिकप्रकाण्डस्य वणिजो मित्रानन्दनामा
सुनुरहम् । अयं चास्मत्पुरोहिततनयः शकुनमन्त्रकुशलो मैत्रेयः । उन्मीलित-
यौवनश्चाहं प्रभूतद्रविणोपार्जनाश्रद्बालुरतन्द्रालुना समानकुल-शील-विभवेन
मकरन्दनाम्ना बालवयस्येन समं यानपात्रमधिरूढः।

कुलपतिः— सुपन्थाः समाश्रितस्तत्रभवता भवता । निजभुजदण्डाम्यां
हि वणिजां द्रविणोपार्जनं मण्डनम्, न तु खण्डनम्।

मित्रानन्दः— अवगाह्य च मध्यमुदन्वतो भगवतः प्रवहणे अविशरारुता-
मधिगतवति गृहीतस्वापतेयसारः कल्लोलान्दोलितं मैत्रेयेण सार्धं
फलकमेकमधिरूढः सप्तभिरहोभिरहं पारमधिगतवान्। मकरन्दस्य तु
किमपि वृत्तमिति न जानीमः।

बतायें कि) आप कहाँ के रहने वाले हैं? आज हमारे आश्रम में किस हेतु पधारे
हैं? और मैं आपके प्रति कैसा सात्त्विक आतिथ्य प्रदर्शित करूँ ?।।१६।।

मित्रानन्द— (विनयपूर्वक) भगवन् ! कौतुकमङ्गल नामक नगर के निवासी
कुलक्रमप्राप्त अद्भुत समृद्धिशाली जिनदास नामक परमधार्मिक व्यापारी का मैं
मित्रानन्द नामक पुत्र हूँ और यह हमारे पुरोहित का पुत्र एवं शुभाशुभ-सूचक मन्त्रों
के प्रयोग में कुशल मैत्रेय हैं। नवयौवनसम्पन्न मैं प्रभूत धनोपार्जन में तत्पर एवं
परिश्रमी, समान कुल, शील एवं वैभवशाली मकरन्द नामक बालसखा के साथ
नौका पर सवार हुआ.....।

कुलपति— आदरणीय आप लोगों ने सन्मार्ग का ही अवलम्बन किया।
क्योंकि, व्यापारियों द्वारा अपने बाहुबल (सामर्थ्य) से धनोपार्जन करना शोभनीय
ही है, अशोभनीय नहीं।

मित्रानन्द— और उसके बाद समुद्र के मध्य में पहुँच कर नौका के डूब
जाने पर अपना अवशिष्ट धन लेकर मैत्रेय के साथ लहरों से आन्दोलित एक फलक
(तख्त) पर सवार होकर सात दिनों में पार पहुँचा। मकरन्द का तो कोई समाचार
नहीं जानता हूँ।

कुलपतिः— महाभाग! प्रशस्तलक्षणो भवान् नाऽऽस्पदं विपदाम्,
अतः समुपार्जितप्रभूतद्रविणो ध्रुवं सङ्घटिष्यते ते परमप्रेमपात्रं मित्रं मकरन्दः।

मैत्रेयः— यदादिशति कुलपतिस्तदस्तु।

(नेपथ्ये)

हंहो बटवः! प्रवर्तयत वर्णाश्रमजुषामतिथीनां सपर्यार्थं यथौचित्यं
पशुविशसनानि।

मित्रानन्दः— (अपवार्यं सोद्वेगम्) मैत्रेय ! कोऽयमुभयलोकप्रतिपन्थी
पापव्याहारः?

धिक् तानमुष्य सुहृदो नरकैकमार्गान्

यैः शास्तृभिः पशुवधोऽयमिहोपदिष्टः।

तानप्यमून् मुनिमिषश्चपचान् विचार-

बन्ध्यान् धिगेव खलु यैरयमादृतश्च॥१७॥

कुलपति— महाभाग! आप अत्यन्त भाग्यशाली होने के कारण इस विपत्ति से बच गये, अतः आपका परमप्रिय मित्र मकरन्द प्रभूत धन अर्जित करके आपसे अवश्य मिलेगा।

मैत्रेय— कुलपति महोदय जैसा कह रहे हैं, वैसा ही हो।

(नेपथ्य में)

अरे अरे बालको! आश्रम में उपस्थित अतिथियों के यथोचित पूजन (सत्कार) हेतु पशुबलि की व्यवस्था करो।

मित्रानन्द—(दूसरी तरफ मुँह घुमाकर उद्विग्नतापूर्वक) मैत्रेय! यह दोनों लोकों (इहलोक एवं परलोक) के लिए प्रतिकूल कैसा पापवचन है?

धिक्कार है इस कुलपति के इन नरकमात्रगामी सहचरों को और उन शास्त्रकारों को भी, जिन्होंने इस लोक में (अथवा ऐसे अवसरों पर) पशुवध का उपदेश दिया है। साथ ही उन विचारशून्य मुनिवेषधारी चाण्डालों को भी धिक्कार है जो उक्त शास्त्रवचनों का आदर करते (हुए पशुवध किया करते) हैं॥१७॥

(पुनः कुलपतिं प्रति) अशेषमपि कल्याणमस्माकं कुलपतिमिश्राः सम्पादयिष्यन्ति। साम्प्रतं पुनरिदमेवातिथेयमर्थयामहे।

कुलपतिः— (ससम्भ्रमम्) किं तत्?

मित्रानन्दः— अस्ति नः कियानपि द्रविणसारः, तं तावदात्मसात् कुर्वतां कुलपतिपादाः यावद् वयं स्वनगरं प्रति प्रतिष्ठामहे।

गजपादः -कोऽत्र भोः ?

(प्रविश्य)

खर्वशाखः— भगवन् ! एषोऽस्मि।

(गजपादः खर्वशाखस्य कर्णे—एवमेव।)

(खर्वशाखो निष्क्रान्तः।)

कुलपतिः— महाभाग! निर्विण्णा वयं भिन्नयानपात्राणां वणिजां निक्षेपसंरक्षणेन, तदियमास्तां कथा। सञ्जातपाणिग्रहणोऽसि न वा? येन तदुचितां कामप्यातिथेयीमाचरामः।

(पुनः कुलपति से) आप हमारा पूर्ण कल्याण करेंगे, किन्तु इस समय तो हम केवल इतना ही आतिथ्य चाहते हैं कि

कुलपति— (घबड़ाहट सहित) वह क्या ?

मित्रानन्द— हमारे पास कुछ धन है, उसको तब तक आप अपने पास रखें, जब तक कि हम अपने घर नहीं लौट जाते।

गजपाद— अरे! यहाँ कौन है?

(प्रवेश कर)

खर्वशाख— भगवन्! मैं हूँ।

(गजपाद खर्वशाख के कान में— ऐसा ही करो।)

(खर्वशाख निकल जाता है।)

कुलपति— महाभाग! भग्न नौका वाले व्यापारियों की सम्पत्ति का संरक्षण करते-करते हम खिन्न हो गये हैं, अतः अब यह कथा यहीं समाप्त हो। (आप हमको यह बतावे कि) आप विवाहित हैं या नहीं, जिससे हम तदनुरूप उचित आतिथ्य का सम्पादन कर सकें।

मैत्रेयः— भगवन् ! असञ्जातपाणिग्रहण एवायं सार्थवाहसुनुः।

कुलपतिः— (विमृश्य) काऽत्र भोः तापसीषु?

(प्रविश्य तापसी प्रणमति।)

कुलपतिः— वत्से कुन्दलतिके! द्रुततरमाह्वय कौमुदीम्।

(तापसी निष्क्रान्ता ।)

(प्रविश्य कृतोष्णीषः)

वणिग्— भगवन् ! प्राप्ता देशान्तरादपरे सहायाः, तदुपनय न्यासीकृतं वित्तम्।

गजपादः— (सावहेलम्) यथैव त्वया मुक्तं तथैवोदजाभ्यन्तरे गत्वा गृहाण।

(वणिग् मध्यतो वित्तमादाय कुलपतिं प्रणमति।)

कुलपतिः— वत्स! यथाबद्धमेव प्राप्तं त्वया द्रविणम्?

वणिग्— किमिदमनात्पोचितमुच्यते? दुस्तपतपः परिकलितस्वर्गाऽपवर्ग-

मैत्रेय— भगवन् ! यह सार्थवाहपुत्र अविवाहित ही है।

कुलपति— (सोचकर) अरे! यहाँ कोई तापसी है?

(तापसी प्रवेश करके प्रणाम करती है।)

कुलपति— पुत्रि कुन्दलतिके! कौमुदी को अतिशीघ्र बुलाओ।

(तापसी निकल जाती है।)

(पगड़ीधारी प्रवेश करके)

व्यापारी— भगवन्! मेरे अन्य सहायक (व्यापारीगण) दूसरे देश में मिल गये, अतः धरोहरस्वरूप रखा हुआ (हमारा) धन (आप) ले आयें।

गजपाद— (अवहेलनापूर्वक) तुमने जैसे (जिस अवस्था में) रखा था वैसे ही कुटी के भीतर जाकर ले लो।

(व्यापारी भीतर से धन लेकर कुलपति को प्रणाम करता है।)

कुलपति— वत्स! क्या तुमने धन को जिस अवस्था में रखा था, उसी अवस्था में प्राप्त कर लिया?

व्यापारी— क्यों इस प्रकार अपने गुणों के विपरीत बोल रहे हैं? कठिन

शर्मणो भगवतः पांशुप्रायेषु मर्त्यकीटानां विभवेषु को नाम कामः सम्भवति?
तद् व्रजामि युष्मत्प्रभावप्रत्यस्तप्रत्यूहव्यूहः स्वपुरीम्।

कुलपतिः— (सप्रश्रयमिव) शिवास्ते पन्थानः।

(वणिग् निष्क्रान्तः।)

मित्रानन्दः— भगवन्! सफलतां प्रयातु मे प्रार्थनालेशः।

(प्रविश्य)

कुन्दलता— [भगवन्!] कौमुदी प्रणमति।

मित्रानन्दः— (मैत्रेयं प्रति) सैवेयं वनिता यां दोलाधिरूढामपश्याम। (पुनः
साश्चर्यम्) केयमनघ्रा नेत्रोत्पलानां सुधावृष्टिः?

कुलपतिः— वत्से कौमुदि ! समानवयः शीलाऽऽकारधारिणः
सार्थवाहतनयस्यास्य स्वयं प्रथय महतीमातिथेयीम्।

तपस्या से स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त कर लेने वाले आदरणीय आपकी मर्त्यलोक के कीड़ों (मनुष्यों) के मलिन (तुच्छ) धन के प्रति लिप्सा कैसे सम्भव है? अतः अब आपके प्रभाव (प्रसाद) से नष्ट हुए विघ्नसमूह वाला मैं अपने नगर को जा रहा हूँ।

कुलपति— (स्नेह-सा प्रकट करते हुए) तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो (यात्रा शुभ हो)।

(व्यापारी निकल जाता है।)

मित्रानन्द— भगवन् ! मेरी छोटी सी प्रार्थना सफल (स्वीकार) हो।

(प्रवेश कर)

कुन्दलता— भगवन्! कौमुदी प्रणाम कर रही है।

मित्रानन्द— (मैत्रेय से) यह वही युवती है, जिसको हमने झूले पर बैठी हुई देखा था। (पुनः आश्चर्यपूर्वक) विना बादलों के ही नयनकमलों में अमृतवर्षा करने वाली यह कौन है?

कुलपति— पुत्रि कौमुदि! समान आयु, स्वभाव और आकार वाले इस सार्थवाहपुत्र का महान् आतिथ्य (स्वागत) तुम स्वयं करो।

कौमुदी— (तिर्यग्वलोक्य स्वगतम्) कटरि ! अंगचंगिमा, अहो! विलासविअङ्गिमा, अरिरि ! सुहृवत्तणं। (पुनः साश्चर्यम्) [सहलोए] दस्स दंसणेण मणुस्सजम्मो। (पुनः सदुःखम्) ईदिसो वि तादस्स सिणेहेण मए वावाएअब्बो?, धी धी! भुवणरयणविणासणं मे जीविदनिम्माणं।

(कटरि! अङ्गचङ्गिमा, अहो! विलासवैदग्ध्यम्, अरेऽरे! सुभगत्वम्। [सफलमे] तस्य दर्शनेन मनुष्यजन्म। ईदृशोऽपि तातस्य स्नेहेन मया व्यापादयितव्यः?, धिग् धिग्! भुवनरत्नविनाशनं मे जीवितनिर्माणम् ।)

मित्रानन्दः— (अपवार्य साभिलाषं मैत्रेयं प्रति)

अधिकुचतटं पौष्यं दाम श्रुती किसलार्चिते

बिसवलयितौ पाणी श्रोणीलता रसनाञ्जिता ।

तदपि च वपुर्लक्ष्मीरस्याः स्फुरत्यपदं गिरां

प्रकृतिसुभगे पात्रे वेषो यदेव तदेव वा ॥१८॥

कुलपतिः— कोऽत्र भोः ? पाद्यं पाद्यम्, अर्घोऽर्घः।

कौमुदी— (तिरछी दृष्टि डालकर मन ही मन) हाय रे! (इसका) अङ्गसौष्ठव, वाह रे! (इसका) सुन्दर हावभाव और अरे रे! (इसका) चारुत्व। (पुनः आश्चर्यपूर्वक) इसके दर्शन से मेरा मनुष्यजन्म सफल हो गया। ऐसा (गुणवान् नवयुवक) भी पिताजी के (प्रति मेरे) स्नेहभाव (आदरभाव) के कारण मेरे द्वारा मारा जायेगा? धिक्कार है! धिक्कार है! जगत् के रत्नभूत (प्राणियों) का विनाश करने वाले मेरे जीवन को।

मित्रानन्द— (दूसरी तरफ मुँह घुमाकर आसक्तिपूर्वक मैत्रेय से)

इस कौमुदी के स्तनतट पर पुष्पमाला लटक रही है, इसके कान पल्लव (स्वरूप आभूषण) से सुशोभित हो रहे हैं, कलाइयाँ कमलनाल के कङ्कन से युक्त हैं और विशाल नितम्बस्थल करधनी से अलङ्कृत हैं, फिर भी इसके शरीर की शोभा ऐसी झलक रही है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। निसर्गसुन्दर शरीर पर कोई भी वेश-भूषा हो, सबके सब उस सौन्दर्य का सम्पोषण ही करते हैं ॥१८॥

कुलपति— अरे! यहाँ कौन है? पादोदक लाओ, पादोदक, अर्घ लाओ, अर्घ।

(प्रविश्य तुन्दिलः सर्वमुपनयति।)

कुन्दलतिका— अय्ये! एदस्स निअदइअस्स, नहि नहि अदिधिणो विधेहि आदिधेइं।

(आर्ये! एतस्य निजदयितस्य, नहि नहि अतिथेर्विधेहि आतिथेयीम्।)

(कौमुदी कृतकसात्त्विकभावान् नाटयन्ती आतिथ्यं प्रथयति।)

कुलपतिः— वत्से! कोऽयमपूर्वोऽतिथिदर्शनेन प्रतिभयप्रथितः स्वेदकम्पोपप्लवः? ततः स्वस्थीभूय सर्वमप्याचर। अयं खलु ते प्राणितस्यापि स्वामी, किमङ्ग! पुनरपरासं क्रियाणाम्?

मित्रानन्दः— (सानन्दं मैत्रेयं प्रति)

सुमेधा निश्चितं वेधाः साधूनामानुकूलिकः।

जाने यानस्य भङ्गोऽयमस्माकं श्रेयसी क्रिया।।१९।।

(नेपथ्ये)

भो भो आश्रमकर्मपटवो बटवः! प्रमार्जयत होमगृहाङ्गणानि, प्रज्वालयत जातवेदसः, सन्निधापयत समिधः, ननु इदानीं कुलपतेः प्रदोषसन्ध्यासवनसमयः।

(तुन्दिल प्रवेश करके सब कुछ लाता है।)

कुन्दलतिका— आर्ये! अपने इस प्रिय अतिथि का आतिथ्य मत करो।

(कौमुदी बनावटी सात्त्विक भावों का अभिनय करती हुई, आतिथ्य सम्पन्न करती है।)

कुलपति— पुत्रि! विशिष्ट अतिथि के दर्शन से भय के कारण उत्पन्न होने वाला यह अत्यधिक पसीना और कम्पन किस हेतु? अतः स्वस्थ (प्रसन्न) होकर सब कार्य सम्पन्न करो। यह-तो तुम्हारे प्राणों का भी स्वामी है, तुम्हारे दूसरे कार्यों के विषय में तो कहना ही क्या?

मित्रानन्द— (आनन्दपूर्वक मैत्रेय से)

ज्ञानी विधाता अवश्य ही सज्जनों के लिए अनुकूल (हितकर) हैं। (इसीलिए) मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि नौका का डूबना हमारे लिए श्रेयस्कर ही हुआ।।१९।।

(नेपथ्य में)

अरे अरे आश्रमकर्म में दक्ष बालको! होमस्थल को साफ करो, यज्ञाग्नि प्रज्वलित करो और समिधाएँ एकत्रित करो, (क्योंकि) अब कुलपति के सन्ध्याकालिक होम का समय हो गया है।

मैत्रेयः— (सभयमात्मगतम्) कथमुत्थानसमयः कुलपतेः? (प्रकाशम्) भगवन्! एतावत्यपि सार्थवाहप्रयोजने किंनिमित्तोऽयं कालविलम्बः?

गजपादः— (कुलपतिं प्रति सकैतवम्) यदभिधत्ते सार्थवाहस्तदस्तु।

कुलपतिः— (मित्रानन्दं प्रति सविषादमिव) भवत्प्रेमाद्र्चेतसो वयं किं नानुत्तिष्ठामः? तदुत्तिष्ठ, स्वयमेव विमुञ्चोत्तजाभ्यन्तरे स्वमुद्रामुद्रितं द्रविणजातम्। वत्से कौमुदि ! दर्शय सार्थवाहस्योत्तजाभ्यन्तरम् ।

कौमुदी— इदो इदो सत्थवाहे !

(इत इतः सार्थवाहौ !)

(उभौ मध्यप्रवेशं नाटयतः।)

कौमुदी— (सकपटम्) अज्जउत्त! (पुनः सलज्जम्) सत्थवाह ! अत्थि बहु मंतिदब्बं, परं दाणि नावसरो। एदं खु संखेवेण मंतेमि—अप्पा मए तुह समप्पिदो, अओ वरं जं ते पडिहासइ तं करिज्जासु।

(आर्यपुत्र !, सार्थवाह ! अस्ति बहु मन्त्रयितव्यम्, परमिदानीं नावसरः। एतत् खलु सङ्क्षेपेण मन्त्रयामि—आत्मा मया तुभ्यं समर्पितः, अतः परं यत् ते प्रतिभासते तत् क्रियताम् ।)

मैत्रेय— (भयपूर्वक मन ही मन) क्या यह कुलपति के यज्ञमण्डप में जाने का समय है? (प्रकरूप से) भगवन्! सार्थवाह के इतने छोटे से कार्य में इतना अधिक विलम्ब क्यों?

गजपाद— (कुलपति से धूर्ततापूर्वक) सार्थवाह जो कहता है, वही हो।

कुलपति— (मित्रानन्द से विषादपूर्वक) आपके प्रेम से आर्द्र चित्त वाले हम क्या नहीं कर सकते? तो आप उठिए और अपने मुद्राङ्कित धन को कुटिया के भीतर रख आइये। पुत्रि कौमुदि ! सार्थवाह को कुटिया का भीतरी भाग दिखावो।

कौमुदी— इधर से इधर से सार्थवाह!

(दोनों भीतर प्रवेश का अभिनय करते हैं।)

कौमुदी— (कपटपूर्वक) आर्यपुत्र! (पुनः लज्जित होकर) सार्थवाह! आप से बहुत बात करनी है, किन्तु अभी समय नहीं। संक्षेप में इतना ही कहती हूँ कि मैंने स्वयं को आपको समर्पित कर दिया। अब आप जो उचित समझें वह करें।

मित्रानन्दः— (सरोमाञ्चम्) आर्ये ! मयाऽपि धनं जीवितं च तवोपनीतम्, अतस्त्वमपि यदभिरुचितं तद् विदध्याः।

कौमुदी— ताऽवस्सं अहिष्पायाणुरोहेण अहं पि सव्वं करिस्सामि। दोण्णि उण लहुं मिल्लेहिं (ह) दविणजायं, जेण बाहिं नीहरामो।

(तदवश्यमभिप्रायानुरोधेनाहमपि सर्वं करिष्यामि। द्वौ पुनः लघु मुञ्चतं द्रविणजातम्, येन बहिर्निःसरामः।)

(तथा कृत्वोभौ निर्गच्छतः।)

कुलपतिः— वत्स मित्रानन्द ! परिणतवयसो वयं कृतप्रायोपवेशननिश्चयाः। इयं च प्ररूढप्रौढयौवना स्वानुरूपं पतिमनासादयन्ती ताम्यति वराकी पुत्री मे कौमुदी। तदस्याः पाणिग्रहणेन सफलयितुमर्हसि मर्त्यलोकावतारम्।

मित्रानन्दः— (सरोमाञ्चम्) भगवन्! कोऽयमस्मास्वज्ञातकुल-शीलेषु प्रसादातिरेकः?

कौमुदी— (स्वगतम्) पभाए अप्पेमि एदस्स किं पि सप्पहावं रयणं जेण वीसंभं करेदि।

(प्रभातेऽर्पयामि एतस्य किमपि सप्रभावं रत्नं येन विश्रम्भं करोति।)

मित्रानन्द— (रोमाञ्चित होकर) आर्ये! मैंने भी अपना धन और जीवन तुमको अर्पित कर दिया, अतः तुम भी जैसा उचित समझो वैसा करो।

कौमुदी— तब तो मैं अवश्य ही आपके अभिप्रायानुसार सब कार्य करूँगी। आप दोनो शीघ्र धन रख दें, जिससे हम बाहर निकल सकें।

(वैसा करके दोनों बाहर निकल जाते हैं।)

कुलपति— पुत्र मित्रानन्द! अत्यन्त वृद्ध हम अब मरणपर्यन्त अन्नजल त्यागने का निश्चय कर चुके हैं और मेरी नवयौवना पुत्री स्वगुणानुरूप पति को प्राप्त न कर पाने के कारण खिन्न रहा करती है, अतः इसका पाणिग्रहण कर तुम मेरे पृथ्वी पर जन्मग्रहण को सफल करो।

मित्रानन्द— (रोमाञ्चसहित) भगवन्! अज्ञात कुल-शील वाले हमारे ऊपर इतनी कृपा क्यों ?

कौमुदी— (मन ही मन) प्रातःकाल इसको कोई प्रभावशाली रत्न प्रदान करूँगी, जिससे इसको मुझ पर विश्वास हो जाये।

गजपादः— सार्थवाह! नार्हसि कुलपतेः प्रसादभङ्गमाधातुम्।

कुलपतिः— वत्स ! श्रेयसि मुहूर्ते ते विवाहमङ्गलविधिः। इदानीं तावद्- ध्वश्रमापगमाय पर्णशालामनुसर। भो भोस्तपोधनाः! अभ्यङ्क्त इङ्गदीस्नेहेन पयोधिपाश्र्वःसञ्जातलावण्यभङ्गान्यतिथीनामङ्गानि। पाययध्वमध्वश्रमापगम- पटीयांसि नालिकेरीफलाम्भांसि। वत्से कौमुदि ! त्वमपि क्रीडान्तरमनुतिष्ठ।

(नेपथ्ये)

आद्यत् त्वरितं तटेषु जलधेः स्वर्लोकधात्रीरुहः

पुष्पाणां प्रकरं परं, स्थगयत स्वच्छै रजांस्यम्बुभिः।

पुंसः कर्मकृतोऽपि रक्षत बत ! स्वेच्छाप्रचारं चिरं,

शुद्धान्तेन समं समेष्यति यतो देवः प्रतीचीपतिः।। २०।।

कुलपतिः— (आकर्ण्य) कथमयं प्रचेताः संक्रीडितुमात्मनो द्वीपमधितिष्ठति? (विमृश्य) वयमपि तपोभृतां प्रचारं निवारयितुं प्रक्रमामहे, सान्ध्यं च विधिमनुतिष्ठामः।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

।। प्रथमोऽङ्कः समाप्तः।।

गजपाद— सार्थवाह! आप कुलपति को निराश न करें।

कुलपति— पुत्र! उत्तम मुहूर्त में तुम्हारा शुभविवाह सम्पन्न होगा। इस समय तुम मार्ग (यात्रा) की क्लान्ति दूर करने के लिए (विश्रामार्थ) पर्णशाला में जावो। हे हे तपस्वियो! समुद्री यात्रा के श्रम से अतिथियों के नष्ट हुए लावण्य वाले अङ्गों की हिङ्गोट के तेल से मालिश करो और यात्रा की क्लान्ति मिटाने में लाभकारी नारियल का पानी पिलाओ। पुत्रि कौमुदि! तब तक तुम भी दूसरा कपट-जाल रचो।

(नेपथ्य में)

समुद्रतट पर यथाशीघ्र कल्पवृक्ष के पुष्पों का समूह रख दिया जाय, स्वच्छ जल छिड़ककर धूलि को शान्त किया जाय और दीर्घकाल से कार्य करने वाले लोग भी अब स्वेच्छया भ्रमण बन्द करें, क्योंकि भगवान् पाशपाणि अपनी कान्ताओं के साथ (द्वीप पर) आ रहे हैं।। २०।।

कुलपति— (सुनकर) क्या ये पाशपाणि कामकेलि हेतु अपने द्वीप पर आ रहे हैं? (सोचकर) मैं भी तपस्वियों का भ्रमण रोकने हेतु जाता हूँ और सन्ध्यावन्दन सम्पन्न करता हूँ।।

(सभी निकल जाते हैं।)

।। प्रथम अङ्क समाप्त।।

॥ अथ द्वितीयोऽङ्कः ॥

(ततः प्रविशति गृध्राक्षः।)

गृध्राक्षः— (उच्चैःस्वरम्) भो भो आश्रमवासिनः ! स्वयं वः कुलपतिः समादिशति—अद्य खलु सान्तःपुरः पाशापाणिः सङ्क्रीडितुमिह समायातवान्, ततः सर्वैरपि कुश-प्रसून-समिधः समादाय पुरुषैरहोरात्रमेकमुटजाभ्यन्तर एव स्थातव्यम् ।

(नेपथ्ये)

यदादिशति कुलपतिः तदनुतिष्ठामः ।

गृध्राक्षः— (विचिन्त्य) मकरन्दस्यापि द्रविणमपहर्त्तव्यमेव, ततस्तावप्यज्ञात-वरुणद्वीपव्यवहारावतिथी विशेषतो निवारयामि । (उच्चैःस्वरम्) भो भोः तपोधनाः! तावतिथी क्वचिदपि तिष्ठत इति जानीत ।

(नेपथ्ये)

एतौ तौ देवतायतनजगत्यां तिष्ठतः ।

द्वितीय अङ्क

(तत्पश्चात् गृध्राक्ष प्रवेश करता है।)

गृध्राक्ष— (उच्च स्वर में) हे हे आश्रमवासियो! आपके कुलपति स्वयं आदेश दे रहे हैं कि आज पाशापाणि वरुण देव अन्तःपुर-सहित केलि करने हेतु आये हैं, अतः सभी पुरुष कुश, पुष्प एवं समिधाएँ लेकर एक दिन-रात कुटी के भीतर ही रहें।

(नेपथ्य में)

कुलपति जो आदेश दे रहे हैं, वही करते हैं।

गृध्राक्ष— (सोचकर) मकरन्द के भी धन का अपहरण करना ही है, अतः वरुणद्वीप के व्यवहार से अनभिज्ञ उन दोनों अतिथियों को भी विशेषरूप से रोकता हूँ। (उच्च स्वर में) अरे अरे तपस्वियो! पता लगाओ कि वे दोनों अतिथि कहाँ हैं?

(नेपथ्य में)

ये दोनों अतिथि मन्दिर के प्राङ्गण में हैं।

(ततः प्रविशति मित्रानन्दो मैत्रेयश्च।)

मित्रानन्दः— (मैत्रेयं प्रति) पश्य पश्य,

ग्लासनुध्वान्तततिर्मुखेषु ककुभां, स्थासुः प्रतापोच्चयो,
मीलत्युत्पलिनीवनं, कमलिनीखण्डं समुन्मीलति।
मज्जत्यम्बरवारिधावुडुगणो, दिक्चक्रमुन्मज्जति,
प्राचीं चुम्बति चण्डरोचिषि जगद् वैचित्र्यमालम्बते।।१।।

गृध्राक्षः— 'भो भो अतिथी! भवद्भ्यां त्वरिततरमागन्तव्यम्' इति
कुलपतिर्वा समादिशति।

मित्रानन्दः— एते वयमागता एवेति गत्वा निवेदय कुलपतिपादेभ्यः।

(गृध्राक्षो निष्क्रान्तः।)

(नेपथ्ये)

भाभिः कुङ्कुमसोदराभिरभितो देवे प्रभाणां प्रभौ
घात्रीं लिम्पति शीर्णमुद्रनयनैः किं किं न दृष्टं जनैः।

(तत्पश्चात् मित्रानन्द और मैत्रेय प्रवेश करते हैं।)

मित्रानन्द— (मैत्रेय से) देखो देखो,

दिशाओं में व्याप्त अन्धकार क्षीण हो रहा है, सर्वत्र प्रकाशपुञ्ज प्रसारित हो रहा है, कुमुदिनी-समूह मुरझा रहा है, कमलदल प्रस्फुटित हो रहा है, नक्षत्रगण आकाशरूप समुद्र में डूब रहे हैं और सभी दिशाएँ प्रकाशित हो रही हैं, इस प्रकार प्रचण्ड किरणसमूह वाले भगवान् सूर्य के उदित होने पर यह संसार वैचित्र्य का आलम्बन कर रहा है, अर्थात् अत्यन्त मनोहारी प्रतीत हो रहा है।।१।।

गृध्राक्ष— हे हे अतिथियो! आप शीघ्र आये— ऐसा कुलपति आपको आदेश दे रहे हैं।

मित्रानन्द— कुलपति महोदय से जाकर कहो कि हम आ ही रहे हैं।

(गृध्राक्ष निकल जाता है।)

(नेपथ्य में)

प्रकाश के स्वामी सूर्यदेव द्वारा पृथ्वी को सर्वतः कुङ्कुमसदृश आभा से लिप्त करते समय (प्रभात काल में) थकी और अधमूँदी आँखों से मैंने क्या-क्या नहीं

पूर्वोपार्जितकर्मवर्मपटलप्रभ्रष्टदृष्टिक्रियो

नात्मानं न परं च पश्यति कृपापात्रं पुनः कौशिकः॥२॥

मित्रानन्दः— (आकर्ष्य सभयम्) कस्यापि महौजसो दुःस्थावस्थोपनिपातप्रति-
रुद्धाशेषशुभाऽशुभव्यापारस्यायं व्याहारः। तदेहि मैत्रेय ! देवतायतनस्य
पाश्चात्यभागमवलोकयामः।

मैत्रेयः— (विलोक्य सभयम्) कथमयं पुरुषः सहकारतरुणा सह
वज्रकीलैः कीलितोऽस्ति?

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः पुरुषः।)

पुरुषः— कष्टं भोः! कष्टम्,

क्व सा सिद्धश्रेणिप्रणतिसुभगा खेचरदशा?

क्व चायं सण्टङ्गस्त्रिभुवनमनःशोकरसिकः?।

न यो वाचः पात्रं भवति न दृशो नापि मनस-

स्तमप्यर्थं क्रुद्धो हतविधिरकाण्डे घटयति॥३॥

देखा? पूर्व सञ्चित कर्मरूपी कवच के आवरण से देखने (विचार कर पाने) में असमर्थ
यह कौशिक (पाशापाणि) न तो अपनों पर कृपा करता है और न ही दूसरों पर॥२॥

मित्रानन्द— (सुनकर भयपूर्वक) यह दुरवस्था में पड़ जाने से अवरुद्ध हुए
समस्त शुभाशुभ क्रियाकलाप वाले किसी महान् तेजस्वी व्यक्ति के शब्द हैं। तो
आओ मैत्रेय! मन्दिर के पीछे देखते हैं।

मैत्रेय— (देखकर भयपूर्वक) यह पुरुष वज्रकील से आम के वृक्ष में गड़ा
हुआ क्यों है?

(उसके बाद यथानिर्दिष्ट पुरुष प्रवेश करता है।)

पुरुष— कष्ट है अरे! महान् कष्ट है ?

कहाँ तो वह सिद्धगण द्वारा अर्पित प्रणाम से सुखद (वैभवपूर्ण) आकाश
में विचरण करने वाली आनन्दात्मिका अवस्था और कहाँ यह तीनों लोकों को
मनस्ताप का अनुभव कराने वाला वज्रकील का बन्धन। विधाता भी अघटितघटनापटु
हैं जो वाणी, चक्षु और मन के लिए सर्वथा अगोचर (कल्पनातीत) घटनाओं को
घटित कर देते हैं॥३॥

मित्रानन्दः— किमिदमश्रद्धेयम्? भवतु, समीपीभूय जानीमः।

पुरुषः— (वेदनामभिनीय) अहह !

मित्रानन्दः—

आकारः स्मरसोदरस्तनुलतालक्ष्माणि विश्वत्रयी-
 साम्राज्यं प्रथयन्ति शंसति भुजा निर्वीरवर्जं जगत् ।
 यद्वा वाङ्मनसां दृशां च न पदं किञ्चिन्नु तद् वर्तते
 यूयं सत्पुरुषा वयं च पथिकाः प्रष्टुं ततः कः क्रमः? ॥४॥

पुरुषः— (मन्दस्वरम्) महाभाग!

चिन्तयन्त्युपकुर्वन्तः संस्तवं हृदि सस्पृहाः।
 निस्पृहाणां च को नाम कामः संस्तवचिन्तने ? ॥५॥

ततस्तमेनिमिदानीं मद्बृत्तान्तमसंस्तुतोऽपि परोपकारैकरसिकः स भगवान्

मित्रानन्द— यह कैसा निन्दनीय कर्म है? अच्छा, समीप जाकर ज्ञात करते हैं।

पुरुष— (पीड़ा का अभिनय करके) आह!

मित्रानन्द— आपका आकार कामदेव-सदृश मनोहर है, आपके शरीर में दिखाई पड़ने वाले चिह्न तीनों लोकों के आधिपत्य के सूचक हैं और आपकी भुजाएँ शेष संसार के वीरशून्यत्व को द्योतित कर रहीं हैं। यद्यपि आपकी यह दुरवस्था वाणी में व्यक्त, मन से कल्पना और आँखों से दर्शन करने योग्य नहीं है, तथापि आप एक महापुरुष हैं और हम एक (तुच्छ) पथिक, तो ऐसी दशा में हमारे द्वारा (इसका निदान सम्भव न होने से) इस विषय में कुछ पूछने का क्या औचित्य है? ॥४॥

पुरुष— (मन्द स्वर में) महानुभाव!

स्वार्थसिद्धि की भावना से परोपकार करने वाले व्यक्ति तो उपकृत व्यक्ति द्वारा अपनी प्रशंसा सुनने की इच्छा अपने मन में रखते हैं, परन्तु निःस्वार्थभाव से परोपकार करने वालों को अपनी प्रशंसा के विषय में सोचने से भला क्या प्रयोजन? ॥५॥

अतः मेरे वृत्तान्त से अनभिज्ञ और परोपकारमात्र में तत्पर आपको मैं अवश्य

भवानर्हत्येव विज्ञातुम्। किमुत महत्तमेयं कथा श्रूयमाणाऽपि कातरचेतसां
महान्तमातङ्कमावहति। न चानया प्रथितयाऽपि कुतोऽपि किमपि परित्राणम्।

मित्रानन्दः—

विधातुं सम्पदो हर्तुमापदश्च न निश्चयः।

मनस्तु मे सदाऽप्यन्यदुःखसङ्क्रान्तिदर्पणः॥६॥

तदावेदयत— के यूयम्? कथं च दुःस्थावस्थापातिनः?

पुरुषः— महाभाग! रत्नकूटपर्वतनिवासी सिद्धश्रेणीमणिमुकुट-
वितङ्कमसृणीकृतपादपीठोऽहमनङ्गदासाभिधानो योनिसिद्धः।

मित्रानन्दः— ततस्ततः?

पुरुषः— त्रैलोक्यकामिनीजनमनःक्षोभैकतानया च कल्पलताभिधानया

बतलाऊंगा। अतिमहत्त्वपूर्ण यह कथा सुनने मात्र से ही भीरु व्यक्ति के मन को अत्यधिक आतङ्कित कर देती है और इसको सुना देने पर भी कहीं से कोई छुटकारा मिलने वाला नहीं।

मित्रानन्द— हम किसी को सम्पन्न बनाने या किसी की विपत्ति को दूर करने में सफल हो सकेंगे या नहीं, यह तो निश्चित नहीं है, परन्तु हमारे मनोरूपी दर्पण में दूसरों का दुःख सर्वदा प्रतिबिम्बित हो उठता है॥६॥

अतः बतलायें कि आप कौन हैं? और इस सङ्कट में कैसे पड़ गये?

पुरुष— महाभाग! मैं रत्नकूटपर्वत का निवासी सिद्धसमूह के मणिमय मुकुट के शीर्षभाग से (उनके द्वारा झुककर चरणस्पर्श करते रहने के कारण) घिस कर चिकने हुए चरणों वाला अनङ्गदास नामक 'सिद्ध' हूँ।

मित्रानन्द— फिर उसके बाद?

पुरुष— त्रिलोक की कामिनियों में मनःक्षोभ की एकमात्र उत्पादिका

१. सिद्ध, यक्षाविद्याधरादि की ही भाँति दिव्यशक्तिसम्पन्न पुरुष है। आठ देवयोनियों में इसकी भी गणना की गयी है —

विद्याधराऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः ।

पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥ अमरकोश, १/१/११।

दिव्यकण्ठकथा प्रसाधितकण्ठपीठः केनापि व्यसनेन प्रकाशयितुमनुचितेन सततोपप्लुतान्तःकरणशूर्णविशेषप्रभावविहितरूपान्तरः प्रतिनिशमस्मिन् वरुणद्वीपे परिभ्रमामि ।

मैत्रेयः— अहो! समृद्धकुतूहलानुबन्धः प्रबन्धः ।

पुरुषः— अद्य पुनर्निशीथे सान्तःपुरेण क्रीडार्थमितस्ततः स्वैरं विहरता क्रूरचेतसा प्रचेतसा समुपलभ्य 'सततमसूर्यम्यश्यमस्मदन्तःपुरकामिनीजनमभिलाषुकः परिभ्राम्यसि' इत्यभिदधानेन कण्ठपीठतः कण्ठकामाच्छिद्य बद्ध्वा च स्फुटं दोःकन्धरम् ... ।

मैत्रेयः— (सकम्पम्) ततः किं कृतम् ?

पुरुषः— (सदैन्यम्) पुरन्दरेणाप्यविषह्यपीडाभिर्निशातकोटिभिर्बहु-कीलकोटिभिः स्वयमिहाऽऽनीय प्रत्यङ्गं कीलितोऽस्मि ।

मित्रानन्दः— इदानीं प्रचेताः क्व वर्तते?

पुरुषः— क्वचिदपि कूले सङ्क्रीडते। प्रतिनिवृत्तः पुनः किमप्यतः

कल्पलता नामक दिव्य माला से सुशोभित कण्ठ वाला, किसी कारणवश, जो बतलाना उचित नहीं है, सतत उद्विग्न अन्तःकरण वाला और चूर्णविशेष के प्रभाव से रूप बदल लेने वाला मैं प्रत्येक रात्रि में इस वरुणद्वीप पर भ्रमण करता हूँ।

मैत्रेय— अहो! अत्यन्त कौतूहलपूर्ण कथा है।

पुरुष— आज पुनः रात्रिकाल में रमण करने हेतु रमणियों के साथ इधर-उधर भ्रमण करते हुए क्रूरहृदयी प्रचेता (पाशापाणि) ने मुझे पकड़ कर 'कभी सूर्य को भी न देखने वाली मेरे अन्तःपुर की सुन्दरियों की अभिलाषा करते हुए घूम रहे हो' यह कहते हुए मेरे कण्ठ से माला छीनकर और मुझे बाँधकर मेरा कन्धा पीट-पीट कर फोड़ दिया।

मैत्रेय— (कांपते हुए) उसके बाद क्या किया?

पुरुष— (दीनतापूर्वक) पाशापाणि ने ही स्वयं यहाँ लाकर असह्य पीड़ादायक अत्यधिक नुकीले असंख्य कील मेरे अङ्ग-अङ्ग में ठोक दिये हैं।

मित्रानन्द— इस समय पाशापाणि कहाँ है?

पुरुष— कहीं किसी सरोवर-तट पर रमण कर रहा है। न जाने वापस लौट

परमपि विधास्यतीति नावगच्छामि।

मैत्रेयः— अश्रोतव्यम्! अश्रोतव्यम्! (पुनरपवार्य) तेनामुना महात्मनोऽस्य प्रबन्धेनाहमप्यन्तःशोकशङ्कुना कीलितोऽस्मि। तद् विचिन्तय किमपि शल्यसमुद्धरणौपयिकम्।

मित्रानन्दः— अस्ति नः कुलक्रमागतः शल्यसमुद्धरणप्रथितमहिमा नाम पवित्रो मन्त्रः। परं कदाचिदप्यनिरूपितप्रत्ययः, अतो मे मनाग् मनः सन्देग्धि।

(नेपथ्ये)

सत्यवाह! अज्जा कोमुई संदिसेदि।

(सार्थवाह! आर्या कौमुदी संदिशति।)

मित्रानन्दः— (विलोक्य) कथमियं कुन्दलता?

(मैत्रेयः ससम्भ्रममुत्थाय पुरुषं बृहतिकया प्रच्छादयति।)

(प्रविश्य)

कुन्दलता— सत्यवाह! अज्जा कोमुई संदिसेदि।

कर पुनः इससे भी अधिक कुछ करे।

मैत्रेय— यह सुनने योग्य नहीं है, सुनने योग्य नहीं है। (पुनः मुँह घुमा कर) इस महापुरुष की इस दुःखद कथा को सुनकर मैं भी अन्तःशोकरूपी शङ्कु से कीलित (पीड़ित) हो गया हूँ। अतः शल्यक्रिया का कोई उपाय सोचो।

मित्रानन्द— मेरे पास वंशपरम्परा से प्राप्त 'शल्यसमुद्धरणप्रथितमहिमा' नामक पवित्र मन्त्र है, परन्तु कभी प्रयोग न होने के कारण इसकी सफलता के विषय में मेरे मन में थोड़ा सन्देह है।

(नेपथ्य में)

सार्थवाह! आर्या कौमुदी कुछ कह रही हैं।

मित्रानन्द— (देखकर) क्या यह कुन्दलता है?

(मैत्रेय घबड़ाहटपूर्वक उठकर पुरुष को उत्तरीय से ढँक देता है।)

(प्रवेश कर)

कुन्दलता— सार्थवाह! आर्या कौमुदी कुछ कह रही हैं।

मित्रानन्दः— किमादिशति भगवती ?

कुन्दलता— पडिच्छेदु एदं महप्पभावं मणिं सत्थवाहो । कयावि एस महंतं उवयारं करिस्सदि ।

(प्रतीच्छतु एतं महाप्रभावं मणिं सार्थवाहः । कदापि एष महान्तमुपकारं करिष्यति।)

मित्रानन्दः— कुन्दलतिके! कीदृशमस्य प्रभावमुपवर्णयति कौमुदी?

(कुन्दलता कर्णे— एवमेव।)

मित्रानन्दः— (सहर्षम्) साधु! समयोचितमनुगृहीतोऽस्मि भगवत्या। एते वयमागता एव रहः किमपि भगवत्या सह पर्यालोचयितुम्।

(कुन्दलता निष्क्रान्ता।)

मित्रानन्दः— महासत्त्व !

पदार्थः कोऽप्यनर्घ्योऽपि स्थितः पुंसि लघीयसि।

महत्त्वक्षीबचितेषु महत्सु खलु नार्घति।।७।।

मित्रानन्द— क्या कह रही हैं देवी कौमुदी?

कुन्दलता— इस महान् प्रभावशाली मणि को सार्थवाह ग्रहण करें। यह मणि कभी महान् उपकार करेगा।

मित्रानन्द—कुन्दलतिके! कौमुदी इस मणि का कैसा प्रभाव बता रही है?

(कुन्दलता कान में—ऐसा ही।)

मित्रानन्द— (प्रसन्नतापूर्वक) अति उत्तम! देवी ने उचित समय पर मुझको अनुगृहीत किया है। हम देवी कौमुदी के साथ एकान्त में कुछ विचार-विर्मश करने आ ही रहे हैं।

(कुन्दलता निकल जाती है।)

मित्रानन्द— हे महात्मा!

किसी क्षुद्र पुरुष में भी कोई बहुमूल्य पदार्थ (गुण) वर्तमान हो सकता है और अपनी महत्ता के मद से उन्मत्त (तथाकथित) महापुरुषों में भी वह बहुमूल्य पदार्थ नहीं रह सकता है।।७।।

पुरुषः— (साक्षेपम्) लघीयसीति विशेषणं विश्वोपकारकरणकच्छुराभ्या-
मात्मनो व्यवसायाऽध्यवसायाभ्यां प्रतिहतमुपात्तवानसि। महत्त्वक्षीबतां
पुनरस्माकमयमकाण्डोपस्थितः प्रचेतःप्रभवः प्रतिभयाडम्बरः समूलकाषं
कषितवान्। अपि च— अपारेऽप्यस्मिन् त्रिभुवनपारावारे परमार्थतस्त्वमेव
महत्त्ववान्, यस्याऽयं वाङ्मनसयोरुत्तीर्णः स्वभावशीर्णप्रत्युपकारस्पृहाकौलीन-
वृत्तिर्निरर्गलः परोपकाररसावेशः।

मित्रानन्दः—

सम्पत् परस्य रोहन्ती भाग्यानां मुखमीक्षते।

स्वशक्तितोलनं नाम माहात्म्यं तु महात्मनाम्॥८॥

पुरुषः— को नामात्र त्रिलोकीविश्रुते राजवर्त्मनि भ्रान्तिमावहति?

स्फुरन्त्युपायाः शान्त्यर्थमनुकूले विधातरि।

प्रतिकूले पुनर्यान्ति तेऽप्युपाया अपायताम्॥९॥

ततः कृतं कालविलम्बेन । आक्रामन्ति प्राणाः कण्ठपीठम् । अतः परं

पुरुष— (क्रोधपूर्वक) आपने विश्व का उपकार करने को उद्यत अपने प्रयास
और सङ्कल्प के लिए 'लघीयसि' (तुच्छ व्यक्ति में)- इस सर्वथा विपरीत विशेषण
का प्रयोग किया है। असमय में उपस्थित पाशपाणि के भय ने महत्वाभिमानी मुझको
पूर्णरूप से खिन्न कर दिया है। और भी—इस अपार त्रिलोकरूपी महासागर में
वस्तुतः आप ही एकमात्र महत्त्वशाली हैं जिनमें मन और वाणी (के वर्णन) से परे
और प्रत्युपकार की स्पृहा से सर्वथा रहित ऐसी निःस्वार्थ परोपकारपरायणता है।

मित्रानन्द— दूसरे (तुच्छ व्यक्तियों) की सम्पत्ति का उदय तो भाग्य के अधीन
होता है, किन्तु महापुरुषों का माहात्म्य यही है कि वे (भाग्य के आश्रित न रहकर)
अपने पुरुषार्थ पर भरोसा रखते हैं॥८॥

पुरुष— कौन है जो इस त्रिलोकप्रसिद्ध विधान के विषय में भी भ्रान्त धारणा
रखता है?

विधाता (भाग्य) के अनुकूल होने पर शान्ति हेतु तत्काल अनेक उपाय सूझ
जाते हैं, किन्तु विधाता के प्रतिकूल होने पर वे ही उपाय अपाय बन जाते हैं॥९॥

अतः विलम्ब करना व्यर्थ है। मेरे प्राण निकल रहे हैं। इतना ही नहीं, सभी

सर्वाङ्गीणप्ररोहिणा वज्रकीलपीडासम्भारेण प्रतिहताशेषेन्द्रियस्थानो निरीक्षितुमप्र-
भविष्णुः। किमपरं मन्दमपि वक्तुमनलम्भूष्णुरस्मि । तत् त्वरिततरं प्रकटय
कस्याप्यनर्घ्यस्य मन्त्रस्य वा तन्त्रस्य वा रत्नस्य वा प्रभावातिशयम् ।

मित्रानन्दः— (विमृश्य) मैत्रेय! कुतोऽपि शीतमम्भः समानय।

मैत्रेयः— (निष्क्रम्य प्रविश्य च) तदिदमम्भः।

(मित्रानन्दः मणिसम्पर्केणाग्निः पवित्रयित्वा सर्वाङ्गीणं पुरुषमभिषिञ्चति।)

मैत्रेयः— कथमपसृताः सर्वतोऽपि गात्रतो वज्रकीलकोटयः? अहो!
मनसोऽप्यभूमिः प्रभावातिशयो रत्नस्य !

पुरुषः— (क्षणं लोचने निमील्य सुखमास्ते। पुनर्मन्दस्वरम्) नितान्तशिशिरेणा-
म्भसा सर्वाङ्गीणमभिषिच्य सुचिरमभिधीजयत माम्।

(उभौ तथा कुरुतः।)

पुरुषः— (क्षणमाश्रयस्य) मैत्रेय ! अमुष्य कलाचीनिवेशितस्यौषधेर्वलयस्य

अङ्गों में गड़े हुए वज्रकील की अत्यधिक पीड़ा से आहत हुई समस्त इन्द्रियों वाला मैं देख पाने में भी समर्थ नहीं हूँ। और क्या कहूँ धीरे से बोलने में भी असमर्थ हूँ। अतः अतिशीघ्र किसी प्रभावशाली मन्त्र या तन्त्र या रत्न का प्रभाव दिखलाओ।

मित्रानन्द— (सोचकर) मैत्रेय! कहीं से शीतल जल ले आओ।

मैत्रेय— (निकलकर और प्रवेश कर) यह है शीतल जल।

(मित्रानन्द मणि के सम्पर्क से जल को पवित्र करके उससे पुरुष के पूरे शरीर को अभिषिक्त करता है।)

मैत्रेय— क्या सम्पूर्ण शरीर से करोड़ों वज्रकील निकल गये? अहो! रत्न का प्रभाव तो कल्पना से भी परे है।

पुरुष— (क्षण भर के लिए आँख मूँद कर सुख का अनुभव करता है। पुनः मन्द स्वर में) अत्यन्त शीतल जल से मेरे समस्त अङ्गों को अभिषिक्त कर मुझको देर तक पढ़ा झलो।

(दोनों वैसा ही करते हैं।)

पुरुष— (क्षण भर श्वास लेकर) मैत्रेय! अपनी कलाई में पहने हुए इस

द्रवेण मामभिलिम्प येन व्रणानि संरोहन्ति ।

(मैत्रेयस्तथाकरोति।)

मित्रानन्दः— (सकौतुकम्) कथं क्षणादेव गात्रमशेषमप्यलक्षितव्रण-
सन्निवेशमजायत? (पुनः साश्चर्यम्) सोऽयमपरो भूर्भुवः स्वश्चेतश्चमत्कारकारी
प्रभावातिशयः।

पुरुषः— (सहसा प्रणम्य)

कारुण्यैकनिधान! विश्वजनतासन्तापनिर्वापना-

पाथोद! त्रिजगत्त्रियङ्करगुणग्रामाभिरामोदय!।

स्तोतुं यत्र न ते चरित्रविभवं वक्त्रैश्चतुर्भिः प्रभु-

ब्रह्मा सोऽपि निसर्गदुर्गजडिमा को नाम त (त्रास्यहम्)? ।। १०।

(मित्रानन्दो लज्जया दिक्षु दृष्टिं निक्षिपति।)

पुरुषः— (पुनरञ्जलिं बद्ध्वा) इयन्तं कालमहमनङ्गदासः। साम्प्रतं पुनः
प्राणदानवेतनाक्रीतः कल्पसहस्रावधि मित्रानन्ददासः।

औषधि-वलय के द्रव से मेरे घाव पर लेप लगाओ, इससे घाव शीघ्र भर जाते हैं।

(मैत्रेय वैसा करता है।)

मित्रानन्द— (कुतूहलपूर्वक) कैसे क्षणमात्र में ही सम्पूर्ण शरीर का घाव
गायब हो गया? (पुनः आश्चर्यपूर्वक) यह तो पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं स्वर्ग—तीनों
लोकों के चित्त को चमत्कृत करने वाला महाप्रभाव है।

पुरुष— (सहसा प्रणाम कर)

हे करुणा के एकमात्र सागर! हे जगत् के प्राणियों का सन्ताप हरने वाले
मेघस्वरूप (मित्रानन्द) ! हे तीनों लोकों को आनन्दित करने वाले उत्कृष्ट गुणों के
निधान! तुम्हारे चरित्र के वैभव का तो ब्रह्मा अपने चारों मुखों से भी स्तवन करने
में असमर्थ हैं, तो फिर स्वभाव से ही वक्र और जड़ बुद्धि वाला मैं कौन हूँ? ।। १०।।

(मित्रानन्द लज्जा से दूसरी तरफ दृष्टि घुमा लेता है।)

पुरुष— (पुनः हाथ जोड़कर) अब तक तो मैं अनङ्गदास था, किन्तु अब
प्राणदानरूप वेतन से खरीदा गया मैं सहस्रों युगों तक के लिए मित्रानन्ददास हो
गया हूँ।

मित्रानन्दः— (कर्णौ पिधाय) सिद्धाधिनाथ! मामेवमौचित्यातिक्रमेण मा दवीथाः। वसुधास्पृहणीयवैभवैः खेचरचक्रवर्तिभिर्भवाद्दृशैः प्रबोधितस्य श्रवणोदरसदःसुधावर्षिणश्चाटुकर्मणः पुरन्दरार्हस्य तस्यास्यानर्हाः खलु जठरपिठरीभरणमात्रोन्मदिष्णुचेतसो निस्तेजसो वणिजः।

(नेपथ्ये)

श्रेयांसि प्रभवन्तु ते, प्रतिदिशं तेजांसि वर्धिष्णुतां

तां पुष्णन्तु, भवन्तु वीतविपदस्ते पाथसां सम्पदः।

आशाः सन्तु भवद्यशोभिरनिशं व्याकोशकुन्दत्विषो,

विश्वेषां शमिनां तपोभिरनघैः कल्पान्तजीवी भव।।११।।

पुरुषः— (समाकर्ण्य सकम्पम्) यथाऽभी घोरघोणप्रभृतयस्तपोधनाः प्रमोदप्रबोधितबाध्योष्ममूर्छालकण्ठकुहरसदसो मधुरगम्भीरघोषमाशिषमुद्घोषयन्ति तथा जाने देवतायतनमुपसर्पति पाशपाणिः, तद् विसर्जयत माम् । अपरथा पुनरप्यथं दुरात्मा मयि कामपि यातनामाधास्यति । अहं च साम्प्रतं विगतशोकपरिच्छदः प्रत्युपकारविद् रुषमपि प्रथयितुमनलम्भूष्णुः। ततो यदि

मित्रानन्द— (कान बन्द कर) हे सिद्धराज! इस प्रकार औचित्य का अतिक्रमण करके मुझको दुःखी न करें। उदररूपी घट की पूर्तिमात्र में संलग्न और तेजोहीन (हमारे जैसे) वणिक् पृथ्वीलोक के वासियों के लिए स्पृहणीय वैभव से सम्पन्न आप जैसे सिद्धराजों द्वारा कहे गये कर्णकुहररूपी सदन में अमृतवर्षा करने वाले इस पुरन्दरोचित चाटुकर्म (प्रशंसावचन) के पात्र नहीं हैं।

(नेपथ्य में)

आपका कल्याण हो, सभी दिशाओं में आपका सुयश फैले, आपकी जलसम्पदा अथवा प्रतिष्ठा में कभी किसी प्रकार की बाधा न हो, आपके सुयश से सभी दिशाएँ विकसित कुमुदिनी की कान्ति जैसी कान्ति से युक्त हों और सभी तपस्वियों के पुण्यमय तपोबल से आप कल्पान्तपर्यन्त जीवित रहें।।११।।

पुरुष—(सुनकर काँपते हुए) जिस प्रकार प्रसन्नता के कारण प्रवाहित उष्ण अश्रुधारा से अवरुद्ध (रूँधे हुए) कण्ठकुहर वाले ये घोरघोणप्रभृति तपस्वीजन मधुर एवं गम्भीर आशीर्वादात्मक उद्घोष (स्तुति) कर रहे हैं, उससे प्रतीत हो रहा है कि पाशपाणि मन्दिर की तरफ आ रहा है, अतः अब मुझे जाने दें, अन्यथा यह दुरात्मा मुझको पुनः कोई यातना दे देगा। इस समय तो शोकमुक्त होकर भी मैं आपका प्रत्युपकार कर पाने में असमर्थ हूँ, अतः यदि इस नीच और मूर्ख (पाशपाणि)

तत्रभवतां भवतां हतकस्य दुर्मेधसो विलसितेन किमपि व्यसनमुपजायेत तदा मां पदातिरेणुं स्मरेयुः। (इत्यभिधाय प्रणम्य त्वरिततरं निष्क्रान्तः।)

मैत्रेयः— कथमयं पाशपाणिप्रतिभयेनौषधेर्वलयं विस्मृत्य गतवान् ?

(नेपथ्ये साक्षेपम्)

कः कालेन कटाक्षितः? स्फुटरुषा दृष्टः फणीन्द्रेण कः?

स्फूर्जद्वह्निकणः करिष्यति शिरः कस्याशनिर्भस्मसात्?।

झम्पां कल्पविशृङ्खले जलनिधौ को दातुमुत्कण्ठितः?

क्रीडावेश्मनि नः क एष मनुजः स्वैरं परिभ्राम्यति?।।१२।।

(उभौ सत्रासमाकाशमालोकयतः।)

(ततः प्रविशति गगनादवतरणं नाटयन् पाशपाणिः

कुन्दप्रभप्रभृतिकश्च परिवारः।)

पाशपाणिः— अरे मर्त्यौ! मरणोन्मुखौ कुतस्त्यौ युवाम्? किमर्थं च देवतायतनस्य जगतीं पुरन्दरेणापि नमस्करणीयां वसुधासम्पर्कपांशुराभ्यां (पादाभ्यां) कश्मलयतः?

के दुश्क्र के कारण आप पर कोई सङ्कट आ जाय तो तत्काल मेरा स्मरण कर लीजिएगा। (यह कहता हुआ प्रणाम कर शीघ्र चला जाता है।)

मैत्रेय— क्या यह पाशपाणि के भय से औषधिवलय को भूलकर चला गया?

(नेपथ्य में क्रोधपूर्वक)

किस पर काल की कुदृष्टि पड़ गयी है? कौन क्रुद्ध विषैले साँप की आँखों के सामने पड़ गया है? दहकती चिनगारियों वाला वज्र किसके शिर को भस्मसात् करेगा? कौन है जो प्रलयङ्कारी लहरों वाले समुद्र में छलाँग लगाने को उत्कण्ठित है? यह कौन मनुष्य हमारे क्रीडाभवन (द्वीप) में स्वेच्छया विहार कर रहा है?।।१२।।

(दोनों डर कर आकाश की तरफ देखते हैं।)

(तत्पश्चात् आकाश से उतरने का अभिनय करते हुए पाशपाणि तथा उसके कुन्दप्रभ आदि अनुचरगण प्रवेश करते हैं।)

पाशपाणि— अरे मनुष्यो ! मरणोन्मुख तुम दोनों कहाँ से आये हो? और क्यों इन्द्र के द्वारा भी वन्दनीय मन्दिर के प्राङ्गण को भूमि के सम्पर्क से धूल-धूसरित पैरों से मलिन कर रहे हो?

(उभौ प्रतिभयेन प्रकम्पेते।)

मित्रानन्दः— परमेश्वर! आवामविज्ञातद्वीपस्वरूपौ भग्नयानपात्रौ वणिजौ देवतायतनरामणीयकमवलोकयितुं जगतीमधिरूढौ ।

कुन्दप्रभः— परमेश्वर! अबुद्धिपूर्वकोऽयमनयोर्मर्त्ययोरपराधः ।

पाशपाणिः— (सहकारमवलोक्य कुन्दप्रभं प्रति) परदारविप्लवकारी दुरात्मा खेचरापसदः कथं क्वचिदपि गतवान्? अरे मर्त्यौ! जानीतं तस्य दुरात्मनः प्रवृत्तिम्?

उभौ— (सभयम्) किमपि न जानीवः ।

पाशपाणिः— (विमृश्य) यथेयं वज्रकीलसङ्कुला विलोक्यते भूमिस्तथा व्यक्तमनयोर्मर्त्ययोः शल्यसमुद्धारप्रयोगः। (पुनः साटोपं वज्रकीलानादाय मित्रानन्दं केशैर्गृह्णाति।)

(मैत्रेयः प्रतिभयेन मूर्च्छति।)

मित्रानन्दः— (धैर्यमवलम्ब्याऽऽत्मगतम्)

(दोनों भय से काँपते हैं।)

मित्रानन्द— हे परमेश्वर ! इस द्वीप के स्वरूप से अनभिज्ञ, नष्ट हुई नौका वाले हम दोनों व्यापारी इस मन्दिर की सुन्दरता के अवलोकन हेतु इस क्षेत्र में आ गये।

कुन्दप्रभ—परमेश्वर! इन दोनों मनुष्यों से यह अपराध अज्ञानवश हुआ है।

पाशपाणि— (आप्रवृक्ष को देखकर कुन्दप्रभ से) परस्त्री को सताने वाला दुष्ट और नीच आकाशचारी क्या कहीं भाग गया? अरे मनुष्यो! क्या उस दुष्ट का समाचार जानते हो?

दोनो— (भयपूर्वक) हम कुछ भी नहीं जानते।

पाशपाणि— (सोचकर) जिस प्रकार यह भूमि वज्रकील से व्याप्त दिखाई दे रही है, उससे स्पष्ट है कि इन दोनों मनुष्यों ने शल्यक्रिया करके उस दुष्ट को मुक्त कराया है। (पुनः क्रोधपूर्वक वज्रकीलों को लेकर मित्रानन्द का केश पकड़ लेता है।)

(मैत्रेय भय से मूर्च्छित हो जाता है।)

मित्रानन्द— (मन में धैर्य धारण कर सोचता है)

परोपकारः क्रियते स्वस्य कल्याणहेतवे।

ततोऽपि यद्यकल्याणं कल्याणात् तत् पदं परम्॥१३॥

तदतः परं भगवतो नाभेयस्य पादाः शरणम् ।

पाशपाणिः— अरे मर्त्यापसद! निजस्य दुर्विलसितस्य फलमनुभव।
(इत्यभिधाय सहकाराभ्यर्णमुपनयति।)

(नेपथ्ये)

प्रसीद पयसांपते! श्लथय कौमुदीभर्तारि

त्रिलोकभयकार्मणीं हृदय-नेत्र-वाग्विक्रियाम्।

अमी ननु तपोधना जनविहारबन्धे भव-

त्प्रभावमथितापदः प्रतिवसन्ति घोरे वने॥१४॥

पाशपाणिः— कथमयं कुलपतेरनुजो गजपादः?

(प्रविश्य)

गजपादः— यादसांनाथ! कोऽयं निजे जामातरि क्रोधोद्धोघविप्लवः?

यद्यपि परोपकार अपने कल्याण के लिए ही किया जाता है, तथापि यदि उससे अकल्याण ही हो जाय तो भी वह कल्याण से श्रेयस्कर ही है॥१३॥

अब तो भगवान् ऋषभदेव के चरणकमल ही शरण हैं।

पाशपाणि—अरे नीच मनुष्य! अपने दुष्कृत्य का फल भोग। (यह कह कर आम्रवृक्ष के समीप ले जाता है।)

(नेपथ्य में)

हे जलपति पाशपाणि! प्रसन्न होवें और कौमुदी के पति पर प्रदर्शित तीनों लोकों को भयभीत करने वाली हृदय, नेत्र और वाणी की विक्रिया (प्रचण्ड क्रोध) को शान्त करें। आपके सत्प्रभाव से नष्ट हुए विघ्न वाले ये तपस्विगण मानवविहार से शून्य इस घोर वन में (निश्चिन्ततापूर्वक) रह रहे हैं॥१४॥

पाशपाणि— क्या यह कुलपति का अनुज गजपाद (बोल रहा) है?

(प्रवेश करके)

गजपाद— पाशपाणि! अपने जामाता पर यह विनाशकारी क्रोध का प्रदर्शन किस हेतु?

पाशपाणिः— (सलज्जं मित्रानन्दं विमुच्य) मुने! कथमयं कुलपतेर्जामाता?

गजपादः— दत्ताऽस्मै कुलपतिना युष्मत्पुत्री कौमुदी। विवाहमङ्गलमप्य-
द्यप्रातीनं तदपि युष्माभिरनुष्ठेयम् ।

कुन्दप्रभः— जलधिपरमेश्वर! अपरोऽपि मनुष्यो न पात्रं भवत्क्रोधप्रबोधस्य,
किं पुनरयं कुलपतेर्जामाता ?, तदयं विशेषतो यादसांनाथस्य प्रसादातिरेकं
कमप्यर्हति ।

पाशपाणिः— एतस्मै प्रयच्छ तर्हि तां कल्पलतां कण्ठिकां येनायं
कौमुदीनेत्रयोर्महोत्सवमुपनयति ।

(कुन्दप्रभः कण्ठिकामुपनयति।)

पाशपाणिः— गजपाद! जामातरमादाय प्रयाहि पर्णशालायाम्। वयमपि
करणीयान्तरमनुतिष्ठामः।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

।। द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः।।

पाशपाणि— (लज्जापूर्वक मित्रानन्द को छोड़कर) मुनिवर! क्या यह
कुलपति का जामाता है?

गजपाद— हमारे कुलपति ने अपनी पुत्री इसे प्रदान कर दी। शुभ विवाह
भी आज ही होना है और वह भी आपको ही सम्पन्न कराना है।

कुन्दप्रभ— समुद्रपति! अन्य मनुष्य भी आपके क्रोध के पात्र नहीं हैं, तो
यह कुलपति का जामाता क्यों? यह तो आपका विशेष कृपापात्र है।

पाशपाणि— तब इसको वह कल्पलता की माला दे दो जिससे यह कौमुदी
के नेत्रों को आनन्दित करेगा (अतिसुन्दर दिखाई देगा)।

(कुन्दप्रभ माला ले आता है।)

पाशपाणि— गजपाद! जामाता को लेकर पर्णशाला में जाओ। हम भी अन्य
कार्यों को सम्पन्न करते हैं।।

(सभी निकल जाते हैं।)

।। द्वितीय अङ्क समाप्त।।

॥ अथ तृतीयोऽङ्कः ॥

(ततः प्रविशति मित्रानन्दो मैत्रेयश्च।)

मित्रानन्दः— (स्मृत्वा) मैत्रेय!

सत्यां यौवनभाजि तापसपतेः पुत्र्यां पुलोमात्मजा
दर्पं विश्वपुरन्धिरूपजयिनि व्यर्थं वहत्यात्मनि।
दर्पो वाऽस्तु दृशा निमेषकलुषप्रत्यासनिष्कृया
जातं तर्हि मृगेक्षणासु नियतं पाञ्चालिकाश्चारवः॥१॥

(पुनः सानन्दम्)

अमृतजलधेः पुण्यैस्तैस्तैर्निमज्जितमूर्मिभिः
मृदुभिरभितो देवस्येन्दोर्मरीचिभिरञ्चितम्।
निजवपुरिदं मन्ये तस्याः कुरङ्गकचक्षुषो
विरतिविमुखैः स्निग्धैर्दिग्धं कटाक्षनिरीक्षितैः॥२॥

तृतीय अङ्क

(तत्पश्चात् मित्रानन्द और मैत्रेय प्रवेश करते हैं।)

मित्रानन्द— (स्मरण करके) मैत्रेय!

कुलपति की नवयौवना पुत्री (कौमुदी) के होते हुए पुलोम की पुत्री (इन्द्राणी) सम्पूर्ण विश्व की रमणियों के सौन्दर्य को जीत लेने वाले अपने सौन्दर्य पर व्यर्थ ही अभिमान कर रही है और यदि उस इन्द्राणी को अपनी उन आँखों पर गर्व है जो निमेषरूपी कीचड़ का सम्पर्क न होने से अत्यन्त स्वच्छ हैं, तो इस मृगनयनी की आँखों में भी तो सुसज्जित पक्ष्मावली और मनोहर पुतलियाँ हैं ही ॥१॥

(पुनः आनन्दपूर्वक)

उस मृगनयनी के आसक्तियुक्त स्निग्ध कटाक्ष से लिप्त मेरा शरीर मानो अमृतजलधि (क्षीरसागर) की पवित्र—शीतल लहरों से नहाया हुआ और चन्द्रदेव की शीतल किरणों से सर्वतः सुशोभित हो गया है॥२॥

(विमृश्य) यतः प्रभृति भगवतः पाशपाणेस्तां कल्पलतां कण्ठिकामधिगतवानस्मि ततः प्रभृत्येव कौमुदीसम्पर्कपर्वणि कथङ्कारमतितरामुत्कण्ठते चेतः? तदवगच्छ किमत्र निदानम्?

मैत्रेयः— स्त्रीपुंसयोर्मन्मथोन्मादैककार्मणं कण्ठिकायाः प्रभावातिशय एवात्र निदानम्। तदेहि पर्यालोचयितुं तां कौमुदीमुपवनाभ्यन्तरे क्वचिदपि मृगयामहे।

(नेपथ्ये)

खणदिद्वजणामित्तं बंधुअणं परिचिअं हिअकरं च ।

मिल्लंतीणं महिलाण मुणइ जइ माणसं बंधो ॥३॥

(क्षणदृष्टजननिमित्तं बन्धुजनं परिचितं हितकरं च।

मुञ्चन्तीनां महिलानां जानाति यदि मानसं ब्रह्मा॥)

मित्रानन्दः— (आकर्ष्य) कथमयं लतागृहाभ्यन्तरे कौमुदीध्वनिः? (विलोक्य) मैत्रेय! कौमुदी कुन्दलता चात्रैव तिष्ठतः। तत् तावत् तिरोहिता एव क्षणं शृणुमो वयमनयोः सङ्ग्रथाम्।

(सोचकर) जब से मैंने भगवान् पाशपाणि की उस कल्पलता नाम की माला को धारण किया है, तभी से कौमुदी से मिलन किस प्रकार हो— यह सोचकर चित्त उत्कण्ठित हो रहा है। तो सोचो कि इसका क्या कारण है?

मैत्रेय— स्त्री-पुरुष में कामोन्माद की एकमात्र उत्पादिका कण्ठिका का प्रभावातिशय ही इसका कारण है। तो आओ उस कौमुदी को देखने के लिए उपवन के अन्दर कहीं खोजते हैं।

(नेपथ्य में)

क्षणमात्र देखे गये प्रेमीजनों के लिए अपने चिरपरिचित और हितकर बन्धुजनों का भी परित्याग कर देने वाली महिलाओं के मन को यदि कोई समझ सकता है, तो वह ब्रह्मा ही है (अन्य कोई नहीं)॥३॥

मित्रानन्द— (सुनकर) क्या लतागृह के भीतर यह कौमुदी की ध्वनि है? (देखकर) मैत्रेय! कौमुदी और कुन्दलता यहीं बैठी हैं। अतः हम दोनों छिपकर ही क्षणभर इनका वार्तालाप सुनते हैं।

(ततः प्रविशति कौमुदी कुन्दलता च।)

कौमुदी— (सकैतवम्) अहवा निसगगचंगंगसन्निवेशाहिं विचित्तभूसणाहिं नगरविलासिणीहिं विलुत्तहिअयस्स तस्स को नाम अम्हारिसीसु दरिद्रकन्नगासु अणुराओ? ता निष्फलो च्चेअ मे एस बन्धुअणपरिच्चाए पारंभो।

(अथवा निसर्गचङ्गाङ्गसन्निवेशाभिर्विचित्रभूषणाभिर्नगरविलासिनी-भिर्विलुप्तहृदयस्य तस्य को नामास्मादृशीषु दरिद्रकन्यकासु अनुरागः? तन्निष्फल एव ममैष बन्धुजनपरित्यागे प्रारम्भः।)

कुन्दलता— सहि! कीस अत्ताणयं विसायपिसाएण संतावेसि?

(सखि ! कस्मादात्मानं विषादपिशाचेन सन्तापयसि ?)

अंगाण सन्निवेशो हलिअसुआणं पि तत्तिओ च्चेअ ।

वेसेणं चिय लायण्णविम्हओ धणवइसुआणं ॥४॥

(अङ्गानां सन्निवेशः हालिकसुतानामपि तावानेव।

वेशेनैव लावण्यविस्मयः धनपतिसुतानाम्॥।)

मैत्रेयः— पश्य कौतुकम्,

(तत्पश्चात् कौमुदी और कुन्दलता प्रवेश करती हैं।)

कौमुदी— (चतुराई से) प्रकृति से ही सुन्दर अङ्गसन्निवेश वाली और आकर्षक आभूषणों को धारण करने वाली नगरवधुओं द्वारा मुग्ध हृदय वाले उस (मित्रानन्द) की हमारे जैसी दरिद्र कन्याओं में अनुराग की क्या सम्भावना? अतः मेरा यह बन्धुजनों के परित्याग का प्रयास निष्फल ही है।

कुन्दलता— सखि! किस कारण स्वयं को विषादरूपी पिशाच से सन्तप्त कर रही हो?

अङ्गसन्निवेश तो कृषककन्याओं का भी उन नगरवधुओं के समान ही होता है। धनपति-कन्याओं का लावण्यविस्मय तो उनकी वेशभूषा से ही होता है (शारीरिक सौन्दर्य के कारण नहीं)॥४॥

मैत्रेय— देखो कैसा अद्भुत सौन्दर्य है!

प्रकृतिचपलं चक्षुर्वाचः स्थिरा हरिणीदृशः,
 सरलिमपदं नासान्यासो, भ्रुवौ कुटिलस्थिती।
 नवधवलिमा गण्डाभोगोऽधरः किसलारुणः,
 किमपि गुपिला नाभिर्वक्षः प्रकाशपयोधरम् ॥५॥

कुन्दलता— अवि य—

काणं पि/अंगलट्टी भूसिज्जइ भूसणेहिं तरुणीणं।
 भूसिज्जइ उण काणं पि भूसणं अंगलट्टीए ॥६॥

अपि च —

(कासामपि अङ्गयष्टिः भूष्यते भूषणैः तरुणीनाम् ।
 भूष्यते पुनः कासामपि भूषणमङ्गयष्टिना ॥)

मित्रानन्दः— (उपसृत्य) प्रिय! लावण्यपुण्यपुण्येष्वपि किमात्मनोऽङ्गेषु
 वृथा वैराग्यमुद्बहसि?

गात्रं सन्नतगात्रि! नेत्रसुखदं, निःश्वासपूरांहति-

र्नासाऽऽह्लादकरी, रदच्छदसुधा जिह्वाऽतिसौहित्यकृत्।

इस कौमुदी की आँखों में स्वाभाविक चञ्चलता है, वाणी हरिणी के समान गम्भीर है, नासिका का विन्यास बिल्कुल सीधा है, भौंहें कुटिल हैं, गण्डस्थल नवधवलिमायुक्त है, ओष्ठ नवपल्लव के समान लालिमायुक्त है, नाभि किञ्चित् गहरी और वक्षःस्थल उन्नत स्तनयुगल वाला है ॥५॥

कुन्दलता— और भी—

किन्हीं तरुणियों की अङ्गयष्टि (शरीर) तो आभूषणों से सुशोभित होती है और किन्हीं तरुणियों की अङ्गयष्टि से ही आभूषणों की शोभावृद्धि होती है ॥६॥

मित्रानन्द—(समीप आकर) प्रिये! लावण्यरूपी पुण्य से पवित्र (शोभित) अङ्गों (वाले शरीर) से वैराग्य का कष्ट क्यों सहन कर रही हो?

सन्नतङ्गि! तुम्हारा शरीर दृष्टि-सुखद, अर्थात् सुन्दर है, निःश्वासवायु से पूर्ण अतएव फड़कती हुई नासिका आह्लादकारिणी है, अधर अमृतरस टपकाने वाला है और जिह्वा (वाणी) अत्यन्त मधुर है। हे किन्नरों के समान सुरीले कण्ठ वाली! तुम्हारा नाद (स्वर) कर्णसुखद है और उन्नत पयोधरों से सुशोभित वक्षःस्थल

नादः किन्नरकण्ठि! कर्णसुखदो, वक्षोजलक्ष्मीरियं
वक्षः प्रीणयते, मृगाक्षि! वद ते किं नेन्द्रियाणां मुदे? ॥७॥

कौमुदी— (कण्ठिकां विलोक्य सात्त्विकभावान् नाटयति। पुनः स्वगतम्)
इत्तिअकालं तादस्स अणुरोहेण मए अप्पा विडंबिदो। इआणिं पुण एदं चेअ
नयणमणमहूसवं सत्थवाहं अणुसरिस्सं।

(इयत्कालं तातस्यानुरोधेन मयाऽऽत्मा विडम्बितः। इदानीं पुनरेतमेव
नयन-मनोमहोत्सवं सार्थवाहमनुसरिष्यामि ।)

कुन्दलता— सत्थवाह! तेण मणिणा किं पि तुम्हाणं उवकिदं?

(सार्थवाह ! तेन मणिना किमपि युष्माकमुपकृतम् ?)

मैत्रेयः— कौमुदीहृदयकार्मणं किमपि वस्तु तदानीमेवोपनयता तेन
रत्नेन महदुपकृतम्।

मित्रानन्दः— कुन्दलतिके! अस्मन्मनःसङ्ग्रहणसत्यङ्कारस्त्वया समुपनीत-
स्तदानीमसौ मणिविशेषः।

मैत्रेयः— कुन्दलतिके! अयमपि तस्य त्वदुपनीतस्य मणोः सत्प्रसादो

आह्लादित कर रहा है। इसलिए हे मृगाक्षि! तुम बतलाओ कि तुम्हारा क्या है जो
इन्द्रियों को आनन्दित नहीं करता? ॥७॥

कौमुदी—(माला को देखकर स्वेदरोमाञ्चादि सात्त्विक भावों का अभिनय
करती है। पुनः मन ही मन) इतने समय तक पिता का कहना मानकर मैंने स्वयं
को ही धोखा दिया है, किन्तु अब तो मैं दृष्टि और मन को आनन्दित करने वाले
सार्थवाह (मित्रानन्द) का ही अनुसरण करूँगी।

कुन्दलता—सार्थवाह! क्या उस मणि ने आपका कुछ उपकार किया?

मैत्रेय—तुम्हारे द्वारा लायी गयी उस मणि ने उसी समय कौमुदी को हमारे
हृदय में बसा देने वाला महान् उपकार किया।

मित्रानन्द—कुन्दलतिके! तुम्हारे द्वारा उस समय लाया गया यह मणिविशेष
हमारी कामना को पूर्ण करने वाला है।

मैत्रेय—यह भी तुम्हारे द्वारा लायी गयी उस मणि की ही कृपा है कि मेरी

यदयं महौषधिवलयसुभगम्भविष्णुवामितरो मे बाहुः।

मित्रानन्दः— (सोत्कण्ठं कौमुदीवदनमवलोक्य) मैत्रेय!

रात्रिन्दिवं विजयिनो हरिणेक्षणानां,
वक्त्रस्य मैत्र्यमनुरुध्य विलाञ्छनस्य।
नीलोत्पलानि यदि हासमुपाश्रयेयु-
जयित किं वद तदा जडजप्रवादः?।।८।।

कौमुदी— (अपवार्य) सहि! अज्ज केणावि कारणेण सत्थवाहकुमारो अमयघडिओ व्व सोहग्गमइओ व्व मुत्तिमओ व्व भयवं पंचबाणो मे लोअणाणं पडिहासदि। ता किं एसो अपुरवो को वि?

(सखि! अद्य केनापि कारणेन सार्थवाहकुमारः अमृतघटित इव सौभाग्यमय इव मूर्तिमय इव भगवान् पञ्चबाणः मम लोचनयोः प्रतिभासते। तत्किमेषोऽपूर्वः कोऽपि।)

कुन्दलता—

एसो सो च्चिअ दइएसु घडइ सोहग्गचंगिमगुणाइं।
चंदो च्चिअ जणइ वाणीसु कठिणबंधेसु सलिलाइं(?)।।९।।

दाहिनी कलाई महौषधि के वलय से शोभित हो रही है।

मित्रानन्द—(उत्कण्ठापूर्वक कौमुदी के मुख को देखकर) मैत्रेय!

मृगनयनी अङ्गनाओं के अहर्निश खिले हुए निष्कलङ्क (सुन्दर) मुख के साथ मैत्री का ध्यान रखकर यदि नीलकमल विकसित हो रहे हैं, तो फिर कहो कि उन्हें जड़ कहने का अथवा जड़ = जल से उत्पन्न होने का प्रवाद क्यों?।।८।।

कौमुदी—(मुँह दूसरी तरफ घुमाकर) सखि! आज न जाने किस कारण से सार्थवाहकुमार मुझे अमृतघटित, सौभाग्ययुक्त और मूर्तिमान् भगवान् कामदेव ही प्रतीत हो रहे हैं। तो क्या यह कोई अद्भुत (गुणसम्पन्न) व्यक्ति है?

कुन्दलता—यही है जो (कठोर हृदय वाली) रमणियों में भी सौभाग्य और सुन्दर गुणों का आधान करता, अर्थात् प्रेमाङ्कुर उत्पन्न करता है। इन्द्र ही कठिन सङ्घटना वाली (अविभक्त) वाणी में सरलता का आधान कर सकता है (तैत्तिरीयसंहिता में

(एष स खलु दयितेषु घटयति सौभाग्यचङ्गिमगुणान् । चन्द्रः एव जनयति वाणीषु कठिनबन्धेषु सलिलानि (?)।।)

मित्रानन्दः— प्रिये!

वक्त्रं शीतरुचिर्वचांसि च सुधा, दृष्टिश्च कादम्बरी,
बिम्बोष्ठः पुनरेष कौस्तुभमणिमूर्तिश्च लक्ष्मीस्तव।
श्रद्धालुर्युगपद् विलोकितुमयं स्वापत्यजातं चिरा-
देकस्थं विरचय्य कुन्दरदने! त्वामर्णवः सूतवान्।।१०।।

अपि च—

त्वं कौमुदी सुदति! गात्रमिदं च पुष्य-
चापाभितापपरिवापनिपीतसौस्थ्यम्।

कहा गया है कि अविभक्त होने के कारण अत्यन्त दुर्बोध वाणी को देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर इन्द्र और वायु ने पदादिस्वरूप में विभक्त कर सरल-सुबोध बनाया)।।९।।

मित्रानन्द— प्रिये!

तुम्हारा मुख चन्द्रस्वरूप, वाणी अमृतस्वरूपा, आँखें मदिरारूपिणी, बिम्ब (फलसदृश रक्तिम) ओष्ठ कौस्तुभमणिस्वरूप और तुम्हारी मूर्ति (शरीर) साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा है। हे मोती के समान चमकती दन्तपंक्ति वाली कौमुदि ! (ऐसा प्रतीत होता है कि) अपने सन्ततिसमूह को चिरकाल से ही एकस्थ देखने के अभिलाषी समुद्रदेव ने उक्त सभी का तुम्हारे शरीर में एक साथ समावेश करके तुमको उत्पन्न किया है।।१०।।

और भी—

हे आकर्षक दन्तपङ्क्ति वाली कौमुदि! तुम वस्तुतः कौमुदी (चन्द्रिका) ही हो, फिर भी मेरा शरीर कामाग्नि के परिताप के सम्पर्क से पूर्णतः अस्वस्थ हो गया

१. इस पद्य का पाठ खलित है। शुद्ध पाठ ऐसा प्रतीत होता है—

एष स खलु दयितासु घटयति सौभाग्यचङ्गिमगुणान् ।

इन्द्र एव जनयति वाणीषु कठिनबन्धेषु सरलत्वम् ॥

— अनुवाद इसी पाठ के आधार पर किया गया है।

अङ्गेन ते सुखयतस्तदिदं विधातुः,

सर्गक्रमो भगवतो जगतां प्रतीपः ॥११॥

कौमुदी— (स्वगतम्) जं भोदि तं भोदु। अहं एदेण सह गमिस्सं। (प्रकाशम्) वणनिवासपसाएण मुद्धा खु अहं न विचित्तभणिदीओ जाणामि। एदं उण किं पि संखेवेण मंतेमि— अवरसत्थवाहपडिवत्तिविवरीदाए पडिवत्तीए तुमं पिक्खिस्सं। अओ वरं जं ते पडिहाइ तं करिज्जासु।

(यद् भवति तद् भवतु। अहमेतेन सह गमिष्यामि। वननिवासप्रसादेन मुग्धा खलु अहं न विचित्रभणितीः जानामि। एतत्पुनः किमपि सङ्क्षेपेण मन्त्रयामि—अपरसार्थवाहप्रतिपत्ति- विपरीतया प्रतिपत्त्या त्वां प्रेक्षिष्ये। अतः परं यत् ते प्रतिभाति तत् क्रियताम् ।)

मित्रानन्दः— प्रिये कुछ मलाग्रदति! अपरसार्थवाहानां प्रतिपत्तिं बोधयित्वा किमप्यपरमादिश।

कौमुदी— एदं खु अम्हाणं कवडतावसपेटयं।

(एतत् खलु अस्माकं कपटतापसपेटकम् ।)

मैत्रेयः— ततस्ततः?

है। तुम्हारे सुन्दर शरीर द्वारा आनन्दित करने वाले ऐश्वर्यसम्पन्न विधाता का यह जगत्सृष्टिक्रम परस्पर-विरोधी प्रतीत होता है ॥११॥

कौमुदी—(मन ही मन) जो होता है वह हो, मैं तो इसके साथ जाऊँगी। वन में निवास के कारण भोली-भाली मैं वाक्पटु नहीं हूँ। अतः इससे संक्षेप में कुछ मन्त्रणा करती हूँ— (सार्थवाह!) आपके साथ अन्य सार्थवाहों जैसा दुर्व्यवहार (छल) नहीं करूँगी। इसके आगे आप जो उचित समझें, वह करें।

मित्रानन्द— हे कली के अग्रभाग के समान नुकीली दन्तपंक्ति वाली (शिखरिदशना) प्रिये कौमुदि! दूसरे सार्थवाहों की उपलब्धि के विषय में कुछ और भी बतलाओ।

कौमुदी—यह तो हमारे कपटी संन्यासियों का मायाजाल है।

मैत्रेय—फिर उसके बाद?

कौमुदी— तदो जो को वि पभूददविणो सत्थवाहो भोदि तस्स अहं परिणेतुं दिज्जामि।

(ततो यः कोऽपि प्रभूतद्रविणः सार्थवाहो भवति तस्मै अहं परिणेतुं दीये।)

मित्रानन्दः— (सौत्सुक्यम्) ततस्ततः ?

कौमुदी— तदो मए सह कीलितुं पण्णसालब्धन्तरे उवविसंतु च्चिअ पल्लंकतिरोहिदकूविआए निवडदि।

(ततो मया सह क्रीडितुं पर्णशालाभ्यन्तरे उपविशन्नेव पल्यङ्कतिरोहित-कूपिकायां निपतति।)

कुन्दलता— (विहस्य) एसा सा अवरसत्थवाहाणं पडिवत्ती।

(एषा साऽपरसार्थवाहानां प्रतिपत्तिः ।)

कौमुदी— अहं उण पुव्वसंचिअं पि दविणं संगहिअ पण्णसालब्धन्तरदुवारेण तुम्हेहिं सह समागमिस्सं।

(अहं पुनः पूर्वसञ्चितमपि द्रविणं संगृह्य पर्णशालाभ्यन्तरद्वारेण युष्माभिः सह समागमिष्यामि।)

मित्रानन्दः— (सरभसम्) ततः परं क्व गन्तव्यम्?

कौमुदी—तब जो कोई भी प्रभूत धनवान् व्यापारी होता है, उसे मैं विवाह करने हेतु प्रदान कर दी जाती हूँ।

मित्रानन्द—(उत्सुकतापूर्वक) फिर उसके बाद?

कौमुदी—तदनन्तर मेरे साथ केलि करने हेतु पर्णशाला में बैठते ही पलङ्ग से ढँके हुए कूएँ में गिर जाता है।

कुन्दलता—(हँस कर) यही है दूसरे सार्थवाहों की उपलब्धि।

कौमुदी—मैं पूर्वसञ्चित धन को भी साथ लेकर पर्णशाला के भीतरी द्वार से आप लोगों के साथ आ जाऊँगी।

मित्रानन्द—(शीघ्रतापूर्वक) उसके बाद कहाँ जाना है?

कौमुदी— सिंहलदीवे गंतव्वं।

(सिंहलद्वीपे गन्तव्यम् ।)

मित्रानन्दः— मित्रमप्यावयोस्तत्रैव सङ्घटिष्यते।

कुन्दलता— (मित्रानन्दं प्रति)

तह कह वि जणो वेसाहिं अत्थलोहेण अत्थि वेलविओ।

जह पिम्मभिंभलासु वि न तासु वीसासमोअरइ।।१२।।

(तथा कथमपि जनो वेश्याभिरर्थलोभेनास्ति विडम्बितः।

यथा प्रेमविह्वलास्वपि न तासु विश्वासमवतरति ।।)

तदो मा खु तुम्हे अवरसत्थवाहपडिवत्तिसवणतरलिदह्दिया निसग्ग-
णिग्गएसु वि कोमुईवयणेसु वीसंभं न करिस्सध।

(ततो मा खलु यूयम् अपरसार्थवाहप्रतिपत्तिश्रवणतरलितहृदया
निसर्गनिर्गतिष्वपि कौमुदीवचनेषु विश्रम्भं न करिष्यथ।)

मैत्रेयः— कुन्दलतिके! किमेवं सार्थवाहस्य चातुरीवैमुख्यमुद्भावयसि?

स्नुहीगवाऽर्कदुग्धानां दृश्यं यदपि नान्तरम्।

तथाप्यास्वादपार्थक्यं जिह्वाऽऽख्याति पटीयसी।।१३।।

कौमुदी— सिंहलद्वीप में जाना है।

मित्रानन्द— हमारा मित्र भी वहीं मिल जायेगा।

कुन्दलता— (मित्रानन्द से)

कुछ लोग वेश्याओं द्वारा धनलोलुपतावश इस प्रकार ठगे गये हैं कि कुछ
वेश्याओं के प्रेमविह्वला होने पर भी उनके प्रति उनका विश्वास नहीं होता।।१२।।

अतः आप लोग अन्य सार्थवाहों की दुर्दशा के श्रवण से द्रवित-हृदय होकर
कौमुदी की स्वाभाविकरूप से कही गई बातों पर अविश्वास न करें।

मैत्रेय— कुन्दलतिके! क्यों ऐसा कहकर सार्थवाह की कौशलहीनता का
प्रतिपादन कर रही हो?

यद्यपि स्नुही (सेंहुड़), गाय और मन्दार के दूधों के रङ्ग में स्पष्ट अन्तर नहीं
होता, तथापि स्वादपटु जिह्वा उनके स्वाद के अन्तर को बता देती है।।१३।।

कुन्दलता— सत्यवाह! तुम्हेहिं अहं सुमरिदव्वा। अहं खु रयणकूडपव्वया-
हिंतो कोमुईनेहेण इध समागदा वट्टामि।

(सार्थवाह! युष्माभिरहं स्मर्तव्या। अहं खलु रत्नकूटपर्वतात् कौमुदी-
स्नेहेनात्र समागता वर्ते)।

मैत्रेयः— (विहस्य) भद्रे! अहमपि त्वया कदाचिदुपलक्षणीयः।

कौमुदी— (मित्रानन्दं प्रति) अत्थि तादस्स अणुभूदपभावो विसावहारमंतो।

(अस्ति तातस्यानुभूतप्रभावो विषापहारमन्त्रः)।

मित्रानन्दः— ततः किम्?

कौमुदी— सो पाणिमोअणापव्वणि अत्थिदव्वो ।

(स पाणिमोचनापर्वणि अर्थयितव्यः।)

मैत्रेयः— आर्ये! सरलाऽसि। योऽस्मान् जिघांसति स किं मन्त्रमुपनयति?

कौमुदी— पेरन्तमारणनिच्छओ सव्वं पि तादो अणुट्टिस्सदि।

(पर्यन्तमारणनिश्चयः सर्वमपि तातोऽनुष्ठास्यति)।

कुन्दलता—सार्थवाह! आप लोग मुझे अवश्य याद रखियेगा। मैं तो कौमुदी से स्नेह के कारण रत्नकूट पर्वत से यहाँ तक आ गयी हूँ।

मैत्रेय—(हँस कर) भद्रे! तुम कभी मुझे भी देख लिया करो।

कौमुदी—(मित्रानन्द से) पिताजी विष दूर करने वाला प्रभावशाली मन्त्र जानते हैं।

मित्रानन्द—उससे क्या?

कौमुदी—उसे आप विदाई के अवसर पर माँग लीजिएगा।

मैत्रेय—आर्ये! तुम भोली हो। जो हमको मारना चाहता है, वह मन्त्र की शिक्षा भला क्या देगा?

कौमुदी—वध का निश्चय करने से पहले तक पिताजी सब कुछ करेंगे।

(नेपथ्ये)

हंहो बटवः! प्रगुणितः सर्वोऽपि विवाहमङ्गलविधिः। समर्थितकौतुककृत्यं
च विवाहवेदीमधिरूढं वधूवरम्?

कौमुदी— कथमेस तादो जंपेदि?

(कथमेष तातः जल्पति?)

कुन्दलता— अज्जे! वच्च तुमं कोउअमंगलमणुभवितुं।(पुनर्मित्रानन्दं
प्रति) तुम्हे वि गच्छध।

(आर्ये! व्रज त्वं कौतुकमङ्गलमनुभवितुम्। यूयमपि गच्छत।)

(कौमुदी-मित्रानन्द-मैत्रेयाः निष्क्रान्ताः।)

(ततः प्रविशति कुलपतिर्गजपादश्च।)

कुलपतिः— (सनिर्वेदम्)

प्रपात्य दन्तानुपनीय जाड्यं,

निहत्य सन्धिस्थलसौष्ठवं च।

जरा पुनः शैशवमाततान,

तथाप्यपायस्पृहयालुचेताः॥१४॥

(नेपथ्य में)

अरे बालको! विवाहसम्बन्धी सभी माङ्गलिक अनुष्ठानों के सम्पादन की तैयारी हो गयी? और वरवधू कौतुकक्रीड़ा सम्पन्न करके विवाह-वेदी पर बैठ गये?

कौमुदी— क्या ये पिताजी बोल रहे हैं? .

कुन्दलता— आर्ये! तुम कौतुकविधि (हल्दी-चन्दन-लेपनादि कार्य) सम्पन्न करवाने हेतु जावो। (पुनः मित्रानन्द से) आप भी जायें।

(कौमुदी, मित्रानन्द और मैत्रेय निकल जाते हैं।)

(तत्पश्चात् कुलपति और गजपाद प्रवेश करते हैं।)

कुलपति— (वैराग्यपूर्वक)

वृद्धावस्था ने दाँतों को गिराकर, जड़ता लाकर और सन्धिस्थलों के सौष्ठव को नष्ट कर मानो शरीर में पुनः शिशुत्व का सञ्चार कर दिया है, फिर भी मनुष्य दुष्कर्मों में ही प्रवृत्त रहता है॥१४॥

(नेपथ्ये)

इदानीं सर्वस्यापि कर्मणः पर्यन्तः सञ्जातः।

गजपादः— (सभयमात्मगतम्) **केयमुपश्रुतिः कुलपतेरनिष्टं सूचयति?**

(उपसृत्य कुन्दलता प्रणमति।)

कुलपतिः— **वत्से! गत्वा ब्रूहि आर्यां गन्धमूषिकाम्। यथा—विवाहवेदिका-
मागत्य वधूवरोचितानि कर्माणि कारय।**

(कुन्दलतिका निष्क्रान्ता।)

(प्रविश्य)

मर्कटवर्णः— **भगवन्! इदानीं सर्वस्यापि कर्मणः पर्यन्तः सञ्जातः।
तदागच्छत यूयं येन पाणिग्रहणमाधीयते।** (इति पुरो निधाय विज्ञपयति।)

(सर्वे परिक्रामन्ति।)

मर्कटवर्णः— **भगवन्! इदं वधूवरम्, अयं पुरोधाः, इयं भगवती
गन्धमूषिका कुन्दलता च।**

(नेपथ्य में)

अब समस्त तैयारियाँ पूरी हो गयीं।

गजपाद—(भयपूर्वक मन में) यह कौन सी ध्वनि है जो कुलपति के अनिष्ट को सूचित कर रही है?

(समीप जाकर कुन्दलता प्रणाम करती है।)

कुलपति—पुत्रि! जाकर गन्धमूषिका से कहो कि विवाहमण्डप में आकर वरवधू के अभीष्ट कार्यों को सम्पादित करे।

(कुन्दलतिका निकल जाती है।)

(प्रवेश करके)

मर्कटवर्ण—भगवन्! सभी तैयारियाँ पूर्ण हो गयीं, अतः अब आप आर्ये जिनसे पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न हो जाए। (यह कह कर कुलपति को आगे करके मार्ग दिखाता है।)

(सभी परिक्रमा करते हैं।)

मर्कटवर्ण—भगवन्! ये वर-वधू, यह पुरोहित और ये देवी गन्धमूषिका एवं कुन्दलता हैं।

(ततः प्रविशन्ति यथानिर्दिष्टाः सर्वे।)

कुलपतिः— (गन्धमूषिकां प्रति) **आर्ये! सवरां विवाहवेदीमधिरूढां कौमुदीं वत्सां विलोक्य प्राप्तमस्माभिर्जन्मनस्तपःकर्मणश्च फलम्।**

गन्धमूषिका— (सास्त्रम्) **मदीयेन तपसा सतीत्वेन च चिरमविधवा भवतु वत्सा।**

गजपादः— **वत्से! प्रतिगृहाण शिरसा पितृष्वसुराशिषम्।**

(कौमुदी शिरो नमयति।)

पुरोधाः— (कुलपतिं प्रति) **अर्घदानपूर्वकं प्रयच्छ पुत्रीं जामात्रे।**

कुलपतिः— **कोऽत्र भोः? पाद्यं पाद्यम्, अर्घोऽर्घः।**

(प्रविश्य तुन्दिलः सर्वमुपनयति।)

कुलपतिः— (सास्त्रं पादौ प्रक्षाल्यार्घमुपनयति। पुनः सगद्गदम्) **वत्स मित्रानन्द! प्रतिगृहाणास्मत्कुटुम्बदृष्टिचकोरीकौमुदीं पुत्रीं कौमुदीम्।**

(तत्पश्चात् यथानिर्दिष्ट सभी प्रवेश करते हैं।)

कुलपति—(गन्धमूषिका से) आर्ये! वर के साथ विवाहवेदी पर आरूढ़ पुत्री कौमुदी को देखकर हमारे जन्म और तपःकर्म सफल हो गये।

गन्धमूषिका—(आँसू बहाती हुई) मेरी तपस्या एवं सतीत्व के प्रभाव से तुमको चिरकाल तक पति का साथ प्राप्त हो अर्थात् तुम सौभाग्यवती रहो।

गजपाद—पुत्रि! शिर झुकाकर बुआ का आशीर्वाद ग्रहण करो।

(कौमुदी शिर झुकाती है।)

पुरोहित—(कुलपति से) अर्घ प्रदान करके पुत्री को जामाता को प्रदान करें।

कुलपति—अरे! यहाँ कौन है? पादोदक लाओ, पादोदक, अर्घ लाओ, अर्घ।

(तुन्दिल प्रवेश करके सब सामग्री लाता है।)

कुलपति—(आँसू बहाते हुए चरण धोकर अर्घ प्रदान करता है। पुनः गद्गद स्वर में) पुत्र मित्रानन्द! हमारे कुटुम्बजनों की दृष्टिरूपिणी चकोरी के लिए चन्द्रिका के समान (अतिप्रिया) पुत्री कौमुदी का ग्रहण करो।

(प्रविश्य)

बटुः— (पुरोधसं प्रति) लग्नसमय इदानीम्, ततः समाप्यतां कौतुकविधिः, प्रतिरुध्यतां कोलाहलः, अवधीयतां झल्लरीझात्कारे।

(पुरोधाः सरभसमुत्थाय हस्तसंज्ञया कोलाहलं प्रतिरुणद्धि।)

(नेपथ्ये झल्लरीझात्कारः।)

पुरोधाः— पुण्याहम् पुण्याहम् (इत्युच्चारयन् वधूवरस्य पाणी योजयति।)

(नेपथ्ये तापस्यो मङ्गलानि गायन्ति।)

(सर्वे सानन्दं वधूवरस्य शिरसि दूर्वाऽक्षतादीनि प्रक्षिपन्ति।)

पुरोधाः— (वधूवरं प्रति) प्रदक्षिणीकुरुतां भगवन्तं परिणयनसाक्षिणमा-
शुशुक्षणिम्।

(उभौ तथा कुरुतः।)

कुन्दलतिका— (मित्रानन्दं प्रति)

(प्रवेश कर)

बटु—(पुरोहित से) लग्न-समय हो गया है, अतः कौतुकविधि समाप्त करें, कोलाहल शान्त करवायें और झल्लरी की झङ्कार पर ध्यान दें।

(पुरोहित शीघ्रता से उठकर हाथ के इशारे से कोलाहल रोकता है।)

(नेपथ्य में झल्लरी की झङ्कार गूँजती है।)

पुरोहित—मैं पवित्र हो गया, पवित्र हो गया (यह कहता हुआ वर और वधू का हाथ मिलाता है।)

(नेपथ्य में तापसियाँ मङ्गलगीत गाती हैं।)

(सभी आनन्द से वर-वधू के शिर पर दूर्वाक्षत आदि फेंकते हैं।)

पुरोहित—(वधू एवं वर से) आप दोनों अपने विवाह के साक्षी अग्निदेव की प्रदक्षिणा करें।

(दोनों वैसा करते हैं।)

कुन्दलता—(मित्रानन्द से)

दइएहिं चेअ परम्मुहेहिं मयणग्गिभिंभलमणाओ।

कारिज्जंते कुलबालिआउ गहिलाइँ कज्जाइँ।।१५।।

(दयितैः एव पराङ्मुखैर्मदनाग्निविह्वलमनसः।

कार्यन्ते कुलबालिकाः ग्रथिलानि कार्याणि।।)

गन्धमूषिका— ततस्तथाकथञ्चिदस्या अभिमुखो भूयाः यथेयं कौलीनं
किमपि नाऽऽचरति।

(मित्रानन्दः सलज्जमधोमुखो भवति।)

कुलपतिः—

जामातः! प्रतिपादिता शुभशतप्रागल्भ्यलभ्या स्वयं,

तुभ्यं स्वर्गनितम्बिनीप्रतिनिधिः पुत्री मया कौमुदी।

पित्रोर्नेत्रमहोत्सवे करतलव्यामोचनापर्वणि,

स्वैरं वस्तु यदिष्टमस्ति भवतस्तत्किञ्चिदुच्चैर्वृणु।।१६।।

मित्रानन्दः— (अञ्जलिं बद्ध्वा) विषापहारमन्त्रोपदेशेन प्रसीद।

कामाग्नि से विह्वल चित्त वाली कुलबालिकाओं से जब प्रियतम विमुख हो जाते हैं, तभी वे अनुचित कार्य करने लग जाती हैं।।१५।।

गन्धमूषिका—अतः किसी प्रकार इसके अभिमुख हो जाओ, जिससे यह कोई लोकविरुद्ध आचरण न करे।

(मित्रानन्द लज्जा से मुख झुका लेता है।)

कुलपति—

हे जामाता! सैकड़ों पुण्यों के प्रभाव से प्राप्त एवं स्वर्ग की अप्सराओं की प्रतिनिधिस्वरूपा (अतीव सुन्दरी) पुत्री कौमुदी मैंने स्वयं आपको प्रदान कर दी। माता-पिता के नेत्रों के लिए महोत्सव के समान अत्यानन्ददायक इस पाणिग्रहण-संस्कार के अवसर पर यदि आपकी कोई मनोवाञ्छित वस्तु हो, तो स्पष्ट कहिए।।१६।।

मित्रानन्द—(हाथ जोड़कर) विषापहरण मन्त्र का उपदेश देने की कृपा करें।

कुलपतिः— (सावहेलम्)

प्रियां प्राणेभ्योऽपि त्वयि विसृजतो वत्स! तनया-

मदेयं किं नाम स्वमपि विजिहासोः कुलपतेः?।

किमेतैस्तैः पल्लीजनसमुचितैरक्षरलवै-

रसाध्यं विश्वानामपि किमपि वस्तु स्मर ततः॥१७॥

गजपादः—

अल्पत्वं च महत्त्वं च वस्तुनोऽर्थित्वमीक्षते।

क्रव्ये तरक्षुः श्रद्धालुर्न कव्ये त्रिदशांपतिः॥१८॥

गन्धमूषिका— भगवन्! यदभिरुचितं जामात्रे तदस्तु।

पुरोधाः— मुनीन्द्र! नाहिसि पवित्रेऽस्मिन् पाणिमोचनापर्वणि जामातुर्वैमनस्य-
माधातुम्।

कुलपति—(उपेक्षाभाव से)

हे पुत्र! प्राणों से भी अधिक प्रिय पुत्री को तुम्हारे लिए त्याग देने वाले एवं स्वयं को भी अर्पण कर देने में समर्थ कुलपति के लिए अदेय क्या है? अर्थात् कुछ भी नहीं, किन्तु ग्रामीण (तुच्छ) जनों के योग्य इन दो-चार अक्षर (के मन्त्र) से क्या (लाभ)? अतः तुम देवताओं के लिए भी असाध्य किसी वस्तु का स्मरण (याचना) करो॥१७॥

गजपाद— किसी भी वस्तु की लघुता या महत्ता उसकी आवश्यकता (इच्छा) पर निर्भर है। सिंह क्रव्य (कच्चे मांस) को बहुत चाहता है (अतः उसके लिए कच्चे मांस की महत्ता है), किन्तु देवराज इन्द्र कव्य (पितरों को समर्पित होने वाले भक्ष्य) के इच्छुक नहीं है (अतः पितरों के लिए वह कव्य महत्त्वपूर्ण होते हुए भी इन्द्र के लिए तुच्छ ही है)॥१८॥

गन्धमूषिका— भगवन्! जामाता को जो प्रिय है, वही हो।

पुरोहित— हे मुनिवर! इस पवित्र विवाहोत्सव में जामाता को दुःखी करना उचित नहीं।

कुलपतिः— (विमृश्य सविषादम्) मर्कटवर्ण! पवित्रय पुष्पोपहारेण ध्यानवेदीम्।

(मर्कटवर्णस्तथा करोति।)

(कुलपतिः रसनाबन्धमाधाय ध्यानं नाटयति।)

गजपादः— (कर्णं दत्त्वा)

मञ्जीराणि यथा रणन्ति, बहलः कोलाहलः खेचरी-

व्रातस्यैष यथा, यथा च वियति ज्योतिः समुज्जृम्भते।

दिव्यः कोऽपि निरर्गलः परिमलः काष्ठाः स्तृणीते यथा,

व्यक्तं हन्त ! तथोपसर्पति महीं श्रीजाङ्गुलीदेवता।।१९।।

कुलपतिः— (सप्रश्रयम्) स्वस्ति देवतायै।

देवता— (सविनयम्)

श्रीमन्मुनीश्वर! शिवप्रतिभूः समाधे-

श्चापत्यविप्लवमपास्थत कच्चिदुच्चैः?।

कुलपति—(सोचकर खेदपूर्वक) मर्कटवर्ण! ध्यानवेदी को पुष्पोपहार से पवित्र करो।

(मर्कटवर्ण वैसा ही करता है।)

(कुलपति मेखला कसकर ध्यान करने का अभिनय करते हैं।)

गजपाद—(कान लगाकर)

जिस प्रकार चारों तरफ मञ्जीरध्वनि गूँज रही है, पक्षिसमूह अत्यधिक कलरव कर रहा है, आकाश में सर्वत्र प्रकाश फैल रहा है और कोई दिव्य एवं अबाध सुगन्धि दिशाओं में व्याप्त हो रही है, उससे स्पष्ट है कि जाङ्गुली देवता (विष देवता) पृथ्वी पर अवतरित हो रही हैं।।१९।।

कुलपति—(आदरपूर्वक) देवता का अभिवादन हो।

देवता—(विनयपूर्वक)

हे (पृथ्वी पर) शिव के प्रतिनिधिस्वरूप मुनिवर! यदि आपकी समाधि में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित हो गया हो तो स्पष्ट स्वरों में कहें। क्या आपके

सर्वेऽपि किं व्रतभृतः सुखमासते ते?

किञ्चाद्य मां किमसि संस्मृतवानकस्मात्? ॥२०॥

कुलपतिः— (सादरम्)

हालाहलहरीं विद्यां वन्द्यां देवैः सदानवैः।

एतस्मै देवि! जामात्रे प्रसीद प्रतिपादय ॥२१॥

(देवता मित्रानन्दस्य शिरसि दक्षिणभुजं निधाय कर्णे—एवमेव।)

मित्रानन्दः— महाप्रसादः (इत्यभिधाय प्रणमति।)

देवता— मुनीन्द्र! ब्रजामो वयम्।

कुलपतिः— निष्प्रत्यूहास्त्रिदशसम्पदो भूयासुः।

(देवता तिरोधत्ते।)

(नेपथ्ये)

आश्रम के सभी तपस्विजन सुखपूर्वक रह रहे हैं? और आज आपने अकस्मात् किस कारण मेरा स्मरण किया है? ॥२०॥

कुलपति—(आदरपूर्वक)

हे देवि! जामाता को देवों और दानवों द्वारा वन्दनीया विषहारिणी विद्या का उपदेश देने की कृपा करें ॥२१॥

(देवता मित्रानन्द के सिर पर दाहिना हाथ रखकर कान में मन्त्रोपदेश देती हैं।)

मित्रानन्द— यह तो महान् प्रसाद है (यह कहकर देवता को प्रणाम करता है)।

देवता—मुनिवर! अब मैं प्रस्थान करती हूँ।

कुलपति—देवताओं का निर्विघ्न अभ्युदय हो।

(देवता अन्तर्हिते हो जाती हैं।)

(नेपथ्य में)

अस्ताद्रिमाश्रयन्तं प्रदोषसंहतसमस्तवसुसारम्।

बोढारं कुलवनितेव मित्रमनुसरति दिनलक्ष्मीः॥२२॥

गजपादः— (साशङ्कमात्मगतम्) कथमयं बटुः सन्ध्यासमयव्यावर्णनाव्याजेन प्रकृष्टदोषघोरघोणापहतद्रविणसारेण सार्थवाहकुमारेण सह वत्साया गमनं सूचयति?

गन्धमूषिका— (पुरोधसं प्रति) रजनिरिदानीम्, पर्णशालाभ्यन्तरमुपैतु वत्सा, पश्यतु अपरसार्थवाहप्रतिपत्त्या जामातरम्।

कुलपतिः— वयमपि तर्हि प्रादोषिकीं सन्ध्यामनुष्ठातुं प्रतिष्ठामहे।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

॥तृतीयोऽङ्कः समाप्तः॥

दिनलक्ष्मी प्रदोष से प्रतिबन्धित किरणसमूह वाले एवं अस्ताचल का आश्रयण करते (डूबते) हुए सूर्य का कुलवधू की भाँति अनुसरण कर रही है॥२२॥

गजपाद— (शङ्कित होकर मन में) क्या यह बालक (ब्रह्मचारी) सन्ध्याकाल के वर्णन के बहाने दुष्ट घोरघोण द्वारा अपहत सम्पत्ति वाले सार्थवाहकुमार के साथ पुत्री कौमुदी के प्रस्थान की सूचना दे रहा है?

गन्धमूषिका—(पुरोहित से) अब रात हो गयी है, आप पुत्री व जामाता को पर्णशाला के अन्दर ले जाइए और जामाता को अन्य सार्थवाहों जैसी दृष्टि से देखिए, अर्थात् जामाता के साथ भी वैसा ही व्यवहार कीजिए जो अन्य सार्थवाहों के साथ किया जाता है।

कुलपति—हम भी अब प्रदोषकालीन सन्ध्याव्रत का अनुष्ठान करने हेतु जा रहे हैं।

(सभी मञ्च से निकल जाते हैं।)

॥तृतीय अङ्क समाप्त॥

॥अथ चतुर्थोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति मित्रानन्दो मूर्धकृतकरण्डा कौमुदी च।)

मित्रानन्दः— (समन्ततोऽवलोक्य)

प्राचीनमञ्जति वियत् पृथुशोककोक-

कान्ताकपोलपुलकौपयिकं दिनेशः।

श्रान्ता इवास्ततटकुट्टिममाश्रयन्ति,

राजीवजीवितहतो हरिणाङ्गपादाः॥१॥

कौमुदी— अज्जउत्त! कित्तिअं अज्ज वि गंतव्वं?

(आर्यपुत्र! कियदद्यापि गन्तव्यम्?)

मित्रानन्दः— प्रिये! महत्यपि प्राप्तपारे मार्गोदन्वति मा स्म विषादनिषादं स्पृशः। प्राप्ता एव सिंहलद्वीपराजधानीपरिसरभुवम्। यदि च रजनीचरण-चङ्क्रमणेनातिचिरं परिश्रान्ताऽसि तदानीमवतार्य शिरसः करण्डमनेकस्तबक-कदम्बकखर्वशाखस्य क्रमुकखण्डस्यास्य निरपायासुच्छायासु विनोदय क्षणं प्ररूढगाढस्वेदं मार्गखेदम्।

चतुर्थ अङ्क

(तत्पश्चात् मित्रानन्द और सिर पर टोकरी रखी हुई कौमुदी प्रवेश करते हैं।)

मित्रानन्द—(चारों तरफ देखकर)

अत्यधिक शोकाकुला चक्रवाकी (अथवा अत्यधिक शोक से गुलाबी गालों वाली तरुणी) के कपोलों को रोमाञ्चित करने वाले सूर्यदेव पूर्वदिशा को सुशोभित कर रहे हैं और कमल के जीवन का हरण करने वाले श्रान्त हुए से चन्द्रदेव अस्ताचलरूपी कुटिया का आश्रयण कर रहे (अस्त हो रहे) हैं॥१॥

कौमुदी—आर्यपुत्र! अब और कितनी दूर जाना है?

मित्रानन्द—प्रिये! विशाल महासागरीय मार्ग को पार कर अब विशेष दुःखी मत हो। हम सिंहलद्वीप की राजधानी की सीमा में प्रवेश करने ही वाले हैं। यदि तुम रात में पैदल चलने से अत्यधिक थक गयी हो, तो सिर से टोकरी उतार कर अनेक स्तबक (गुच्छ) समूह वाले सुपारी के वृक्षों की प्रगाढ़ छाया में क्षणभर विश्राम कर यात्रा की पसीना बहा देने वाली क्लान्ति दूर कर लो।

(कौमुदी तथा करोति।)

मित्रानन्दः— प्रिये! नानादेशोद्भवैर्भग्नयानपात्रैर्वणिग्भिर्न्यासीकृतस्य विचित्रस्य कनकरत्नाभरणस्य समुद्रहनेन सुचिरमायासितानि बालमृणालकोमलानि तवाङ्गानि । तदहं संवाहयामि ।

कौमुदी— (सलज्जम्) अज्जउत्त ! अलाहि एदिणा विणयपळ्ळंसेण। न एस कुलवहूआणं पसंसणिञ्जो मग्गो। तुमं पि पायविहारकिलेसेण परिसंतोऽसि, ता अहं ते अंगसंवाहणं करिस्सं ।

(आर्यपुत्र! अलमेतेन विनयप्रभंशेन। न एष कुलवधूनां प्रशंसनीयो मार्गः। त्वमपि पादविहारक्लेशेन परिश्रान्तोऽसि, तदहं तेऽङ्गसंवाहनं करिष्यामि।)

मित्रानन्दः— (साश्चर्यमात्मगतम्)

न मे गोत्रं वेद प्रकृतिमपि (नैवाप्यभिजनं),
स्वभावस्थं किञ्चोपकृतमपि नास्यां किमपि मे।
तथाप्येषा बन्धूनमुचदसिताक्षी मम कृते,
पुरन्ध्रीणां प्रेमग्रहिलमविचारं खलु मनः॥२॥

(कौमुदी वैसा ही करती है।)

मित्रानन्द— प्रिये! विभिन्न देशों में उत्पन्न हुए और नष्ट हुई नौका वाले व्यापारियों द्वारा धरोहर के रूप में रखे गये विचित्र स्वर्ण एवं रत्न के आभूषणों को लम्बे समय तक शिर पर वहन करने के कारण तुम्हारे बालमृणाल के समान कोमल अङ्ग थक गये हैं, अतः मैं इनकी मालिश कर देता हूँ।

कौमुदी—(लज्जापूर्वक) आर्यपुत्र! इस प्रकार शिष्टता का उल्लङ्घन उचित नहीं। ऐसा करना कुलवधुओं के लिए निन्दनीय है। आप भी पैदल चलने से थक गये हैं, अतः मैं आपके अङ्गों की मालिश करूँगी।

मित्रानन्द—(आश्चर्यपूर्वक मन ही मन)

न मेरा गोत्र (वंश) जाना, न स्वभाव जाना, न ही मेरे पूर्वजों और कुटुम्बजनों के विषय में कुछ जाना और इस पर मेरा कोई स्वाभाविक उपकार भी नहीं है, फिर भी इस कृष्णाक्षी (कौमुदी) ने मेरे लिए अपने बन्धुजनों का परित्याग कर दिया। महिलाओं का प्रेमासक्त मन वस्तुतः अविचारणीय (समझ से परे) है॥२॥

(प्रकाशम्)

प्रिये कौमुदि! दवीयसो देशान्तरादुपगतवतः सर्वथाऽप्यविज्ञातकुल-
शील-सम्पदः परोक्षप्रेमग्रन्थेर्मम वणिजो निमित्तं चिरप्ररूढसौहार्दमुद्रोपद्रुतानां
बन्धूनामुपहासजनकं स्वदेशपरिहार-पादविहार-शीतवातातपप्रसहनप्रायं
क्लेशावेशमतुच्छमुपगच्छन्ती निमीलितनेत्रपत्रा शैलेन्द्रमधिरोहसि,
अविद्यमानयानपात्रा महार्णवमवगाहसे, अनासादितजाङ्गुलीप्रसादा
पन्नगाधिनाथमुत्कोपयसि ।

कौमुदी— अज्जउत्त ! कीस इत्तियं पि सयलमहेलाजणसमाणं मम
चरिदं निरूविअ विम्हयमुवगदोऽसि?

(आर्यपुत्र! कस्मादियदपि सकलमहिलाजनसमानं मम चरितं निरूप्य
विस्मयमुपगतोऽसि?)

खणामित्तिदिट्ठुपिअयणपिम्मभरुब्भिंभलाओ महिलाओ।

चिरपरिचिए वि मित्तंति बंधवे एस किर पगिदी।।३।।

(क्षणमात्रदृष्टुप्रियजनप्रेमभरोद्विह्वला महिलाः।

चिरपरिचितानपि मुञ्चन्ति बान्धवानेषा किल प्रकृतिः।।)

मित्रानन्दः— (स्वगतम्)

(प्रकट रूप से)

प्रिये कौमुदि! दूर देश से आये हुए सर्वथा अज्ञात कुल, शील और सम्पत्ति
वाले तथा परोक्ष प्रेमग्रन्थि वाले मुझ व्यापारी के लिए तुम चिरप्ररूढ स्नेहभाव से
परिपूर्ण बन्धुजनों के लिए उपहासास्पद (निन्दनीय) स्वदेश-त्याग, पैदल चलना,
शीत-वायु-गर्मी आदि को सहन करना जैसे कष्टों को तुच्छ समझती हुई अधमुँदी
आँखों से पहाड़ पर चढ़ रही हो, विना नौका के ही महासमुद्र में प्रविष्ट हो रही
हो और जाङ्गुली देवता का आशीर्वाद न प्राप्त कर सर्पराज को कुपित कर रही हो।

कौमुदी—आर्यपुत्र! आप क्यों मेरे आचरण को अन्य समस्त नारियों के
समान देखकर भी विस्मित हो रहे हैं?

महिलाओं का तो यह स्वभाव ही है कि वे क्षणमात्र भी देखे गये प्रेमीजनों
के प्रति अतिप्रेमभाव से विह्वल चित्त वाली होकर अपने चिरपरिचित बन्धुजनों का
भी परित्याग कर देती हैं।।३।।

मित्रानन्द—(मन ही मन)

वीरेषु गणनां पूर्वं परमर्हन्ति योषितः।

यास्तृणायाभिमन्यन्ते प्राणान् प्रेमान्धचेतसः।।४।।

कौमुदी— किञ्च—

देशं वयन्ति विसमं सहन्ति णिव्वं भमन्ति दुहिआओ।

तह वि महिलाण पिम्मं दइयम्मि न सयणवग्गम्मि।।५।।

ता अवरं मे भक्तिं निरूवेदु अञ्जउत्तो।

(देशं व्रजन्ति विषमं सहन्ते कष्टं भ्राम्यन्ति दुःखिताः।

तथापि महिलानां प्रेम दयिते न स्वजनवर्गे।।

तदपरां मे भक्तिं निरूपयत्वार्थपुत्रः।)

मित्रानन्दः— (सविनयम्) प्रिये कौमुदि!

पितृभ्यामाबाल्यादजनि यदनन्तं किमपि ते

प्रियं वा श्रेयो वा तदुपनयने कोऽस्मि कृपणः?।

इदं सत्यासत्यं पुनरभिदधे प्रीतिमुखरः

परं कालादस्माद् भृतकनिरपेक्षस्तव जनः।।६।।

स्त्रियाँ, जो प्रेमान्धचित्त होकर अपने प्राणों को तृण के समान तुच्छ समझने लगती हैं, वस्तुतः वीरों में सर्वप्रथम गणना के योग्य हैं।।४।।

कौमुदी—इतना ही नहीं—

वे अपना देश (घर-परिवार) त्याग देती हैं, विषम कष्टों को सहन करती हैं और दुःखी होकर यत्र-तत्र भटकती रहती हैं, तथापि उन महिलाओं का प्रेम अपने पति के प्रति ही होता है, स्वजनों के प्रति नहीं।।५।।

अतः आप मेरी किसी अन्य सेवा को देखें। ।

मित्रानन्द—(विनयपूर्वक) प्रिये कौमुदि!

जो अनन्त प्रेम अथवा मङ्गल बाल्यावस्था से ही माता-पिता द्वारा मुझमें उत्पादित है उसे तुम्हारी सेवा में अर्पित करने में मैं कृपण कैसे हो सकता हूँ? तुम्हारे प्रति मेरा जो प्रेमभाव है उसी से मुखरित (वाचाल) होकर मैंने कुछ मत्त्य-असत्य कहा है, किन्तु इतना निश्चित है कि आज से यह व्यक्ति (मित्रानन्द) तुम्हारी सेवा का कोई पारिश्रमिक नहीं लेगा।।६।।

(कौमुदी सलज्जमधोमुखी भवति।)

मित्रानन्दः— (विचिन्त्य सखेदम्)

सुखाकरोति संयोगस्तथा न तव कौमुदि!

मैत्रेयस्य परित्यागो यथा दुःखाकरोति माम्।।७।।

कौमुदी— अज्जउत्त! अलाहि विसाएण । जघामंतिदं करिस्सदि मित्तेओ। संघडिस्सदि सिंहलदीवचिद्वाणं अम्हाणं।

(आर्यपुत्र! अलं विषादेन। यथामन्त्रितं करिष्यति मैत्रेयः। सङ्घटिष्यते सिंहलद्वीपस्थितानामस्माकम् ।)

मित्रानन्दः— प्रिये! यद्यपेतश्रमाऽसि तदा नगराभ्यन्तरे गमनाय प्रक्रमस्व।

(कौमुदी करण्डकमादाय उत्थानं नाटयति।)

(उभौ नगराभिमुखमुपसर्पतः।)

मित्रानन्दः— (सानन्दम्) प्रिये! पश्य पश्य,

**विश्राम्यत्यथिकाः क्वचित्, क्वचिदपि क्रीडाचलोपत्यका-
क्रीडत्यौरपुरन्ध्रयो, गिरिसरिज्जङ्घारताराः क्वचित् ।**

(कौमुदी लज्जा से मुख नीचे झुका लेती है।)

मित्रानन्द—(सोचकर खिन्नतापूर्वक)

कौमुदि! मुझको तुम्हारा संयोग (मिलन) उतना सुखी नहीं कर रहा है, जितना कि (अपने प्रिय मित्र) मैत्रेय का वियोग दुःखी कर रहा है।।७।।

कौमुदी—आर्यपुत्र! आप दुःखी न हों। मैत्रेय (हमारे बीच हुई) मन्त्रणा के अनुसार ही कार्य करेगा। वह हमसे सिंहलद्वीप में अवश्य मिलेगा।

मित्रानन्द—प्रिये! तुम्हारी थकान मिट चुकी हो तो नगर में प्रवेश करने की तैयारी करो।

(कौमुदी टोकरी लेकर उठने का अभिनय करती है।)

(दोनों नगर की तरफ बढ़ते हैं।)

मित्रानन्द—(आनन्दपूर्वक) प्रिये! देखो देखो,

कहीं पर विश्राम करते हुए पथिकजन (दिखलाई पड़ रहे हैं), कहीं क्रीडा-पर्वतों (आमोद हेतु निर्मित बनावटी पर्वतों) की उपत्यकाओं (तलहटी) में नगरवधुएँ क्रीडा करती हुई (दिखलाई पड़ रही हैं), कहीं पहाड़ी नदियों की

एते ते रमयन्ति कोकिलकुलव्याहारवाचालितो-
द्यानक्षोणिरुहः पुरीपरिसराः श्रोत्राणि नेत्राणि च ॥८॥

(पुरोऽवलोक्य)

धावं धावमयं पुरः पुरजनः किं कान्दिशीको भ्रम-
त्येषोऽपि श्रुतिदुर्भगः प्रतिदिशं हक्कानिनादः कथम्?।
रुध्यन्तेऽध्वनि किं पदातिपटलैरागन्तवो जन्तवः?,
कस्मात् कावचिका निकुञ्जकुहराण्यावृण्वते वाजिभिः? ॥९॥
भवतु तावत्, एतं सम्मुखीनमापतन्तं प्रवयसं द्विजन्मानमुपसृत्य पृच्छामि।

(ततः प्रविशति द्विजः।)

(मित्रानन्दः प्रणमति।)

द्विजः— स्वस्ति यजमानाय।

मित्रानन्दः— (सविनयम्) आर्य! इदानीमेव देशान्तरतः समुपागतोऽहम्,
अतो न विदुरः कस्याप्यत्रत्यवृत्तान्तस्य । तत् कथय केयं पुरी?, कोऽस्यां

कलकलध्वनि (सुनायी पड़ रही है) और कहीं उपवन में वृक्ष कोयलों की कूक से
शब्दायमान हो रहे हैं— इस प्रकार यह नगर-परिसर आँखों एवं कानों को आनन्दित
कर रहा है ॥८॥

(सामने देखकर)

सामने यह भयभीत नगरवासी दौड़ते-दौड़ते क्यों भाग रहा है? सभी
दिशाओं में यह श्रुतिकटु हाहाकार ध्वनि क्यों हो रही है? मार्ग पर आने-जाने वाले
लोग सैनिकों द्वारा क्यों कुचले जा रहे हैं? और कवचधारी (सैनिकगण) किस कारण
घोड़ों द्वारा लतामण्डपों को उजाड़ रहे हैं ? ॥९॥

अच्छा तो सामने गिरे हुए इस वृद्ध ब्राह्मण के समीप जाकर पूछता हूँ।

(तत्पश्चात् ब्राह्मण प्रवेश करता है।)

(मित्रानन्द उसे प्रणाम करता है।)

द्विज— यजमान का कल्याण हो।

मित्रानन्द— (विनयपूर्वक) आर्य! मैं अभी-अभी परदेश से आया हूँ, अतः
यहाँ का कुछ भी वृत्तान्त मुझे ज्ञात नहीं। अतः मुझे बताइये कि यह कौन सी नगरी है?

स्वामी?, किमर्थं च प्रतिरथ्यमाबद्धकवचकञ्चुकैः कैश्चिदाकृष्टकरालकरवालैः
कैश्चिदारोपितचापैः कैश्चित् परिघपाणिभिः पत्तिभिः प्रतिरुध्यते स्वेच्छाप्रचारी
प्रतिभयचकितेक्षणः प्राणिगणः?

द्विजः— महाभाग!

इयं सा सिंहलद्वीपभूतधात्रीललाटिका।

श्रीनटीरङ्गशालेव रङ्गशालाभिधा पुरी।। १०।।

मित्रानन्दः— ततस्ततः?

द्विजः—

द्विषां यशःशीतमयूखराहुर्महीपतिर्विक्रमबाहुरेताम्।

प्रतापपीतद्युतिपीतविश्ववसुन्धरादौस्थ्यकथः प्रशास्ति।। ११।।

कौमुदी— तदो तदो?

(ततस्ततः?)

इसका राजा कौन है? तथा किस कारण स्वेच्छाचारी (किन्तु) भय से चकित
दृष्टि वाले प्राणिगण रथारूढ़ कवचकञ्चुक धारण किये हुए, भयङ्कर तलवार ताने
हुए, धनुष पर तीर चढ़ाए हुए तथा विशाल भुजाओं वाले सैनिकों द्वारा कुचले
जा रहे हैं?

द्विज— महाभाग !

यह सिंहलद्वीप नामक प्रदेश के मस्तक की शोभा (मुकुटस्वरूपा) नटी की
सुन्दर रङ्गशाला के समान 'रङ्गशाला' नाम की नगरी है।। १०।।

मित्रानन्द— फिर उसके बाद?

द्विज— इस रङ्गशाला नगरी (नामक राजधानी वाले सिंहलद्वीप) पर अपने
शत्रुओं के यशःस्वरूप चन्द्रमा के लिए राहुतुल्य और अपने प्रतापानल द्वारा सम्पूर्ण
भूमण्डल की अस्वस्थता की चर्चा (दुःखद स्थिति) को ध्वस्त कर देने वाले महाराज
विक्रमबाहु शासन कर रहे हैं।। ११।।

कौमुदी— फिर उसके बाद?

द्विजः— अद्य पुनश्चिरप्ररूढचौर्योपद्रुतपौरजनोत्तेजितेन राज्ञा निष्ठुरं निर्भर्त्सितः कालपाशनामा पुरीरक्षकस्तस्करप्रचारं कुतोऽपि विज्ञाय सर्वतो गवेषयितुमारब्धवान् । (इत्यभिधाय द्विजो निष्क्रान्तः ।)

मित्रानन्दः— (वामाक्षिस्फुरणमभिनीय सभयम्) साम्प्रतमपायपिशुनं नः किमप्यशकुनम् । तत् तावद् बहिरेव क्वचिदप्यास्महे यावदयं तस्करोपप्लवः क्वचिदपि विश्राम्यति । तदेहि कृतपुरीपरिसरनिवेशं जीर्णपाषाणसञ्चयं कात्यायनीनिलयमनुसरामः ।

(उभौ परिक्रामतः ।)

मित्रानन्दः— प्रिये! तदिदं पश्य,

केतुस्तम्भविलम्बिमुण्डमभितः सान्द्रान्त्रमालाञ्चित-
द्वारं शोणितपङ्किलाङ्गणमदन्मार्जारिभीष्मान्तरम् ।

द्विज— आज पुनः बहुत समय से (राज्य में) बढ़ी हुई चोरी से नगर-वासियों के अत्यन्त पीड़ित होने के कारण उत्तेजित राजा द्वारा कठोरतापूर्वक फटकारे गये कालपाश नामक नगररक्षक ने कहीं से चोरों के घूमने का समाचार प्राप्त कर सब तरफ उन्हें खोजना प्रारम्भ कर दिया है।

(यह कहकर द्विज निकल जाता है।)

मित्रानन्द— (बायीं आँख के फड़कने का अभिनय कर भयपूर्वक) यह अपशकुन इस समय हमारे किसी अनिष्ट की सूचना दे रहा है। अतः चोरों का उपद्रव कुछ शान्त होने तक हम कहीं बाहर ही ठहरते हैं। तो आओ हम नगर-सीमा पर बने टूटे-फूटे प्रस्तरखण्डों वाले (खण्डहरस्वरूप) कात्यायनी-मन्दिर में चलें।

(दोनों घूमते हैं।)

मित्रानन्द— प्रिये! देखो इसको,

भगवती कात्यायनी का यह मन्दिर ऐसा है जिसके ध्वज-स्तम्भ के चारों तरफ (बलिपशु के) मुण्ड लटक रहे हैं, द्वार (बलि दिये गये पशुओं की खून से सनी हुई अतएव) चिपचिपी अँतड़ियों की माला से सुशोभित है और आन्तरिक भाग खून के कीचड़ से परिपूर्ण आङ्गन में मस्ती से घूमने वाली बिल्लियों के कारण अत्यन्त

गोपुच्छोत्थितदीपमश्मकुहरक्रोडप्रलुप्तोत्वण-

व्यालं दर्दुरदाहधूमविधुरं कात्यायनीमन्दिरम् ॥१२॥

(कौमुदी विलोक्य वेपते।)

मित्रानन्दः— प्रिये! अन्धकारप्राग्भारदुर्लक्ष्यविषमा चण्डिकायतनप्रदेश-
पदवी, ततो मत्पृष्ठलग्ना प्रविश ।

(उभौ मध्यप्रवेशं नाटयतः।)

मित्रानन्दः— (कतिचित् पदानि गत्वा विलोक्य च) कथमयमध्यन्तरे
कर-कलितासिधेनुः प्रतिभयतरलेक्षणः कोऽपि पुरुषः?

(कौमुदी पलायितुमिच्छति।)

मित्रानन्दः—(उच्चैःस्वरम्)भो महापुरुष! मा भैषीः। इदानीमेव देशान्तरतः
समायातो वणिगहम्, न पुनस्तस्करो वा घातको वा, तदास्व यथासुखम्।
(पुनर्विलोक्य) कथमयं पाषाणसन्धिविवरेण निःसृत्य बहिर्गतवान्?। भवतु,
तर्हि गर्भगृहावस्थितां भट्टारिकां विलोकयामः। (विलोक्य) प्रिये! पश्य पश्य,

भयङ्कर है। इस मन्दिर के दीपस्तम्भों पर गोपुच्छाकार लौ वाले दीपक जल रहे हैं,
पत्थरों (से बनी दीवारों) के छिद्रों में भयङ्कर (विषैले) साँप छिपे हुए हैं और नगाड़ों
को तपाने हेतु जलायी गयी आग के धूँ से यह मलिन (धूमिल) हो गया है ॥१२॥

(कौमुदी देखकर काँपती है।)

मित्रानन्द—प्रिये! इस कात्यायनी-मन्दिर का प्रवेशमार्ग अन्धकाराधिक्य के
चलते कठिनता से दिखाई पड़ने के कारण विषम है, अतः मेरी पीठ से सटकर
(पीछे-पीछे) प्रवेश करो।

(दोनों मध्यभाग में प्रवेश का अभिनय करते हैं।)

मित्रानन्द—(कुछ कदम चलकर और देखकर) क्या यह अन्दर हाथ में
छुरी लिए भय से चञ्चल दृष्टि वाला कोई व्यक्ति (चोर) है?

(कौमुदी भागना चाहती है।)

मित्रानन्द—(उँचे स्वर में) हे महापुरुष! डरो नहीं, मैं तो इसी समय विदेश
से आया हुआ व्यापारी हूँ, न कि चोर अथवा हत्यारा, अतः निश्चिन्त रहो। (पुनः
देखकर) क्या यह प्रस्तरों के जोड़ के छिद्र से निकलकर बाहर चला गया? अच्छा,
तो अब हम गर्भगृह में स्थित भगवती को देखते हैं। (देखकर) प्रिये! देखो देखो,

(पुनर्विलोक्य) कथमयं पाषाणसन्धिविवरेण निःसृत्य बहिर्गतवान्?। भवतु, तर्हि गर्भगुहावस्थितां भट्टारिकां विलोकयामः। (विलोक्य) प्रिये! पश्य पश्य,

नेत्र-श्रोत्र-वरौष्ठ-बाहु-चरण-घ्राणादिभिः प्राणिनां,

मन्त्रैः क्लृप्तबलिर्वसारसकृतस्नानाऽन्नमालार्चिता।

कण्ठस्थोरगलिह्यमानबहलप्लीहाङ्गरागा गल-

द्रक्ताऽऽर्द्रार्द्रनरेन्द्रकृत्तिरसनोत्तंसा मृडानी पुरः॥१३॥

(कौमुदी उत्तरीयाञ्चलेन नासां पिधाय सजुगुप्सं निध्यायति।)

मित्रानन्दः— प्रिये! क्वचिदपि प्रदेशे विमुञ्च द्रविणकरण्डकम् ।

कौमुदी— (करण्डकं विमुच्य) अज्जउत्त ! इआणिं केणावि कारणेण मह सरीरम्मि महंतो उव्वेगो ।

(आर्यपुत्र! इदानीं केनापि कारणेन मम शरीरे महानुद्वेगः।)

मित्रानन्दः— प्रिये! मार्गपरिलङ्घनेनापि तावदतितरां परिश्रान्ताऽसि,

भगवती कात्यायनी सामने दिखाई पड़ रही हैं। इन्हें पशुओं के नेत्र, श्रोत्र, प्रशस्त ओष्ठ, भुजा, घ्राण आदि अङ्ग मन्त्रोच्चारपूर्वक बलिरूप में समर्पित हैं, ये चर्बी के रस से गीली अँतड़ियों की माला से सुशोभित हैं, इनके शरीर पर अत्यधिक तिल्लियों (प्लीहा) का अङ्गराग (उबटन), जिन्हें गले में लिपटे हुए साँप चाट रहे हैं, लगा हुआ है और ये टपकते हुए रक्त से अत्यन्त गीले गजचर्म की करधनीरूपी आभूषण से सुशोभित हैं।।१३।

(कौमुदी साड़ी के आँचल से नाक बन्द करके घृणापूर्वक देखती है।)

मित्रानन्द—प्रिये! धन की टोकरी को किसी स्थान पर रख दो।

कौमुदी—(टोकरी रखकर) आर्यपुत्र! इस समय किसी कारणवश मेरा शरीर अत्यधिक काँप रहा है।

मित्रानन्द—प्रिये! लम्बी यात्रा करने के कारण भी अत्यधिक थकी हुई हो और अब पुनः कात्यायनी-मन्दिर में भय भी उत्पन्न हो गया, इसीलिए तुम्हारे शरीर में अत्यधिक कम्पन है। अतः किसी अनिष्ट की आशङ्का मत करो।

साम्प्रतं पुनः कात्यायनीप्रतिभयमप्यभूत्, ततस्ते वपुषि समुद्वेगः, तन्मा स्म किमपि विरूपमाशङ्किष्ठाः ।

(नेपथ्ये)

एसा चोलपदपद्मई कच्चायणीभवणं पविट्टा। अओ वलं लायपुत्ते पमाणं ।

(एषा चौरपदपद्मतिः कात्यायनीभवणं प्रविष्टा। अतः परं राजपुत्रः प्रमाणम् ।)

मित्रानन्दः— (आकर्ण्य सभयम्) यथाऽयमानुपदिकस्य व्याहारः तथा जाने योऽयं करकलितासिधेनुर्निःसृत्य गतः व्यक्तमसौ चौरः। तदिदानीं तस्करस्थानोपलब्धैरस्माभिः किमनुष्ठेयम्?

(कौमुदी कम्पते।)

(नेपथ्ये)

इहैव पदपद्मतिर्विशति पार्वतीमन्दिरे,
तदत्र बहिरास्यतां निभृतवृत्तिभिः पत्तिभिः।

(नेपथ्य में)

यह चोर का पदचिह्न कात्यायनी-मन्दिर में प्रविष्ट हुआ है और इसके बाद तो राजकुमार ही प्रमाण हैं।

मित्रानन्द—(सुनकर भयपूर्वक) जैसा कि (पदचिह्न की पहचान करने वाले) इस आनुपदिक का कथन है, उससे मुझे लगता है कि हाथ में छुरी लिया हुआ जो व्यक्ति निकलकर भाग गया, वह निश्चय ही चोर था। तो इस समय चोर के स्थान पर उपस्थित हमको क्या करना चाहिए?

(कौमुदी काँपती है।)

(नेपथ्य में)

पदचिह्न यहीं से मन्दिर में प्रविष्ट हो रहा है, अतः सैनिकगण छुपकर चुपचाप यहाँ बाहर ही रुके रहें। यही है जीवित पकड़ा गया, दूसरों के घरों एवं महलों को लूटने वाला और धन हड़पने वाला चोर। अतः आप लोग इसको कसकर पकड़ लें।।१४।।

(कौमुदी मूर्च्छामभिनयति।)

(नेपथ्ये)

भो भो: पदातयः! कृतावधानैर्मध्ये प्रवेष्टव्यम्, अपि नाम दस्युः
प्रहारमादधीत ।

मित्रानन्दः— (विलोक्य) सपरिकरः प्राप्तः पुरीरक्षकः।

(ततः प्रविशति कालपाशः दीर्घदंष्ट्र-वराहतुण्डप्रभृतिकश्च परिवारः।)

कालपाशः— दीर्घदंष्ट्र ! मध्यमवलोकय ।

दीर्घदंष्ट्रः— (विलोक्य) राजपुत्र! अस्ति किमपि मानुषमभ्यन्तरे।

कालपाशः— (सक्रोधमुच्चैःस्वरम्)

मुषित्वा पौराणां नवकनक-माणिक्यघटितां-

श्चिरं काञ्ची-चूडामणि-मुकुट-ताडङ्ग-कटकान्।

क्व रे यासि क्षुद्र!, हुततरमगाराद् भव बहिः,

स्वयं क्रुद्धस्तुभ्यं पितृपतिरिदानीं न भवसि।।१५।।

(कौमुदी मूर्च्छा का अभिनय करती है।)

(नेपथ्य में)

अरे अरे सैनिको! सावधानीपूर्वक अन्दर प्रवेश करो, हो सकता है कि यह
लुटेरा तुम पर प्रहार कर दे।

मित्रानन्द—(देखकर) नगररक्षक अपने अनुचरों के साथ पहुँच गया है।

(तत्पश्चात् दीर्घदंष्ट्र, वराहतुण्ड प्रभृति अनुचरों के साथ कालपाश प्रवेश करता है।)

कालपाश— दीर्घदंष्ट्र! भीतर देखो।

दीर्घदंष्ट्र—(देखकर) राजपुत्र! भीतर कोई मानुषी आकृति है।

कालपाश—(क्रोधपूर्वक ऊँची आवाज में)

रे क्षुद्र! नगरवासियों के स्वर्ण, माणिक्य आदि से निर्मित नये-नये करधनी,
चूडामणि, मुकुट, कुण्डल, कङ्गन आदि आभूषणों को चुराकर जल्दी-जल्दी कहाँ
भाग रहे हो? शीघ्र मन्दिर से बाहर निकलो। स्वयं यमराजरूपी कालपाश के क्रुद्ध
होने पर तुम बच नहीं सकते।।१५।।

मित्रानन्दः— प्रिये! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, प्राप्ता राजपदातयः।

(उभौ बहिर्भवतः।)

(कौमुदी परिधानपटेन करण्डकं पिदधाति।)

कालपाशः— (साक्षेपम्) अरे! कस्त्वमसि?

मित्रानन्दः— (सकम्पम्) राजपुत्र! पथिकोऽहम्।

कालपाशः— इयं वनिता का?

मित्रानन्दः— मम सधर्मिणीयम्।

कालपाशः— बाले! करण्डिकायां किमस्ति?

कौमुदी— (सकम्पम्) संबलयं किं पि अत्थि।

(शम्बलकं किमप्यस्ति।)

वराहतुण्डः— (करण्डिकामुत्पाद्य विमुच्य च कालपाशं प्रति) प्रभूतद्रविणसार-
भरेण न शक्यते समुत्पाटयितुम्।

मित्रानन्द— प्रिये! उठो उठो, राजसैनिक आ गये हैं।

(दोनों बाहर निकलते हैं।)

(कौमुदी साड़ी के आँचल से टोकरी को छुपा लेती है।)

कालपाश—(क्रोधपूर्वक) अरे! तुम कौन हो?

मित्रानन्द—(काँपते हुए) राजपुत्र! मैं पथिक हूँ।

कालपाश—यह स्त्री कौन है?

मित्रानन्द—यह मेरी पत्नी है।

कालपाश—बालिके! इस टोकरी में क्या है?

कौमुदी—(काँपती हुई) कुछ पाथेय (मार्गव्यय) है।

वराहतुण्ड—(टोकरी को उठाकर और छोड़कर कालपाश से) अत्यधिक
कीमती धन (आभूषणादि) के भार से यह टोकरी सरलता से नहीं उठ रही है।

(शम्बलकं किमप्यस्ति।)

वराहतुण्डः— (करण्डिकामुत्पाट्य विमुच्य च कालपाशं प्रति) प्रभूतद्रविणसार-
भरेण न शक्यते समुत्पाटयितुम्।

कालपाशः— (सोपहासम्) बाले! शम्बलस्य किमियान् भारः?
मध्यस्थिता चौर्यं कारयसि?

कौमुदी— ताद! अहं चोरिअं सिविणे वि न पिच्छामि ।

(तात ! अहं चौर्यं स्वप्नेऽपि न पश्यामि।)

कालपाशः— प्रत्यक्षमपि पश्यन्ती स्वप्ने न किं करिष्यसि? (पुनः साव-
हित्यम्) दीर्घदंष्ट्र ! विधेहि किमप्यस्य समयोचितमातिथ्यम् ।

(दीर्घदंष्ट्रो यष्टिना प्रणिहन्तुमारभते।)

(कौमुदी सपूत्कारमन्तरा निपतति।)

कालपाशः— वनितायां प्रहारः प्रयत्नतो रक्षणीयः।

कालपाश—(उपहासपूर्वक) बालिके! पाथेय का क्या इतना अधिक भार होता है? मध्यस्थ होकर चोरी करवाती हो?

कौमुदी—तात! मैं तो सपने में भी चोरी नहीं करती हूँ।

कालपाश— प्रत्यक्ष ही (चोरनी) दीख रही हो तो स्वप्न में कैसे नहीं करोगी?
(पुनः क्रूरतापूर्वक) दीर्घदंष्ट्र! इसका कुछ समयोचित सत्कार करो।

(दीर्घदंष्ट्र छड़ी से मारना प्रारम्भ कर देता है।)

(कौमुदी चीखती हुई बीच में गिर पड़ती है।)

कालपाश—स्त्रियों पर होने वाले प्रहार को यत्नपूर्वक रोकना चाहिए (अर्थात् स्त्रियों पर प्रहार नहीं करना चाहिए)।

मित्रानन्द—राजपुत्र! नष्ट हुई नौका वाला मैं व्यापारी कुछ अवशिष्ट धन को लेकर अपने नगर की तरफ जा रहा हूँ तो वृथा ही तस्कर होने का कलङ्क (आरोप) लगाकर मुझे अपशब्द क्यों कह रहे हो? चोरी का कोई चिह्न (यदि हो, तो उसको) बतलाकर अथवा किसी साक्षी को प्रस्तुत कर तुम चाहो तो पकड़ लो, मार डालो अथवा कैद कर लो।

कालपाशः— आभरणकरण्डकादप्यपरं किं नाम चौर्यचिह्नम्?

मित्रानन्दः— राजपुत्र ! ममैव द्रविणमत्र करण्डके।

कालपाशः— सर्वमपि राज्ञः पुरतो वक्तव्यम् ।

मित्रानन्दः— (सदुःखमात्मगतम्)

यत् पोतस्य सुवर्ण-मौक्तिकनिधेर्भङ्गो वियोगो निजै-

र्यन्मातापितृभिर्विदेशवसतिर्येयं न तद् बाधते।

मिथ्या यः पुनरिन्दुशुभ्रयशसो गोत्रस्य लक्ष्मैकभू-

रैकागारिकविप्लवः प्रतिमुहुर्दुःखाकरोत्येष माम्।। १६।।

कौमुदी— (सदैन्यं पादौ संस्पृश्य) ताद ! मिल्हेहि मे निरवराहं भत्तारं।
देहि पद्भिक्खं।

(तात! मुञ्च मे निरपराधं भर्तारम् । देहि पतिभिक्षाम्।)

कालपाशः— (साक्षेपम्) आः पापे ! तस्करपति! दूरस्थिता ब्रूहि।
माऽस्मानुपस्पृश।

कालपाश—आभूषण की टोकरी से बढ़कर चोरी का दूसरा प्रमाण क्या हो सकता है?

मित्रानन्द—राजपुत्र! इस टोकरी में मेरा ही धन है।

कालपाश—सब बातें राजा के सम्मुख बतलाना।

मित्रानन्द—(दुःखपूर्वक मन ही मन)

स्वर्ण और मोतियों से भरे जहाज का समुद्र में डूब जाना और विदेश में रहते हुए अपने माता-पिता (आदि बन्धुजनों) से वियोग मुझे व्यथित नहीं कर रहा है, किन्तु अपने चन्द्रमासदृश धवल यश वाले गोत्र (वंश) के लिए कलङ्कमात्रस्वरूप चोर होने का मिथ्या आरोप मुझे अत्यधिक व्यथित कर रहा है।। १६।।

कौमुदी—(दीनतापूर्वक चरण छूकर) तात! मेरे निरपराध पति को छोड़ दीजिए। मुझे पतिभिक्षा दे दीजिए।

कालपाश—(क्रोधपूर्वक) अरे पापिनी! तस्करों की साम्राज्ञी! दूर रहकर बात कर। मुझे मत छू।

(कौमुदी सबाष्पमधोमुखी भवति।)

कालपाशः— (विमृश्य) कोऽत्र भोः?

(प्रविश्य)

वज्राङ्कुरः— एसो म्हि, आणवेदु लायउत्तो ।

(एषोऽस्मि, आज्ञापयतु राजपुत्रः।)

कालपाशः— अरे वज्राङ्कुर ! वादय वध्यपटहम्, उपनय सरासभं
श्रपाकम् ।

जं आणवेदि शामी। (इत्यभिधाय वज्राङ्कुरो निष्क्रान्तः।)

(यदाज्ञापयति स्वामी।)

(नेपथ्ये दुःश्रवो वध्यपटहध्वनिः।)

कालपाशः— वराहतुण्ड! प्रलम्बय तस्करस्य केशान्। सन्दानय भुजौ।

(वराहतुण्डस्तथाकरोति।)

(कौमुदी तारस्वरं प्रलपति।)

(कौमुदी रोती हुई मुख नीचे झुका लेती है।)

कालपाश—(सोचकर) अरे! यहाँ कौन है?

(प्रवेश कर)

वज्राङ्कुर—मैं उपस्थित हूँ। आप आज्ञा दें राजपुत्र?

कालपाश—अरे वज्राङ्कुर! वध्यपटह बजाओ और चाण्डाल को गर्दभसहित
बुलाओ।

वज्राङ्कुर— स्वामी की जैसी आज्ञा। (यह कहकर वज्राङ्कुर निकल जाता है।)

(नेपथ्य में वध्यपटह की तीक्ष्ण ध्वनि होती है।)

कालपाश— वराहतुण्ड! चोर का केश बाँधकर लटका दो और दोनों
भुजाओं को बाँध दो।

(वराहतुण्ड वैसा ही करता है।)

(कौमुदी ऊँचे स्वर में विलाप करती है।)

मित्रानन्दः— प्रिये !

मा विषीद कृतं बाष्पैः फलं मर्षय कर्मणाम्।
सत्यं विषाद-शोकाभ्यां न दैवं परिवर्तते।।१७।।

(प्रविश्य सरासभः)

श्वपाकः— एशे म्हि, आणवेदु शामी।

(एषोऽस्मि, आज्ञापयतु स्वामी।)

कालपाशः— अरे खड्गिल ! प्रसाधय रक्तचन्दनेन तस्करस्य शरीरम्।
निक्षिप शरावमालां कण्ठे।

मित्रानन्दः— राजपुत्र ! किमस्य श्वपाकस्य संस्पृशनेन मामपवित्रयसि?

कालपाशः— हला दुष्टे ! तर्हि त्वमेव समाचर श्वपाककरणीयं निजे
भर्तरि।

(कौमुदी रक्तचन्दनेनोपलिप्य शरावमालां कण्ठे निक्षिपति।)

मित्रानन्द— प्रिये!

दुःखी मत हो, आँसू बहाना व्यर्थ है, अपने कर्मों का फल भोगो। क्योंकि सत्य यही है कि विषाद अथवा शोक करने से भाग्य नहीं बदल जाया करता है।।१७।।

(गर्दभ के साथ प्रवेश कर)

श्वपाक— मैं (आ गया) हूँ, स्वामी आदेश दें।

कालपाश—अरे खड्गिल! चोर के शरीर को लालचन्दन से सजाओ। कण्ठ में शराव (मिट्टी के छोटे पात्र) की माला डालो।

मित्रानन्द— राजपुत्र! क्यों इस चाण्डाल के स्पर्श से मुझको अपवित्र कर रहे हो?

कालपाश—अरी दुष्टे! कौमुदी! तो तुम्हीं अपने पति के प्रति चाण्डाल द्वारा करणीय कार्य को सम्पन्न करो।

(कौमुदी रक्तचन्दन का लेप लगाकर कण्ठ में शरावमाला डाल देती है।)

कालपाशः— दीर्घदंष्ट्र! रासभमधिरोपय तस्करम्, इमां च योषितं
मूर्धकृतकरण्डिकां रासभस्याग्रे कुरु।

(दीर्घदंष्ट्रः सर्वमाचरति।)

मित्रानन्दः— (स्वगतम्)

अस्मिन् कर्मणि भिन्नशर्मणि न मे चित्तस्य वाचां भ्रुवो-

दृष्टेः पाणिपुटस्य (चाप्यणु)रपि व्यापारभारोदयः।

भूयांस्येवमपि (श्रुति)ज्वरकराण्यायान्त्यभद्राणि चे-

न्नाभेयस्य तदा पदानि शरणं देवस्य दुःखच्छिदः॥१८॥

(नेपथ्ये)

विधिना विधीयमानं कमलानां बन्धनं त्वदोषाणाम्।

द्रष्टुमनलम्भविष्णुर्भानुद्वीपान्तरं श्रयति॥१९॥

कालपाश—दीर्घदंष्ट्र! चोर को गधे पर बैठाओ और सिर पर टोकरी रखी
हुई इस स्त्री को गधे के आगे कर दो।

(दीर्घदंष्ट्र सब कार्य सम्पन्न करता है।)

मित्रानन्द—(मन ही मन)

इस अशुभ कर्म को करने के लिए मेरे मन, वचन, भौंह, आँखों एवं हाथों
में थोड़ी भी प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं हो रही है। ऐसे कर्मों के सम्पादन से तो अनेकानेक
अमङ्गल होते हैं, जिनके श्रवणमात्र से लोगों को सन्ताप होता है (अनुभव करने
वालों का तो कहना ही क्या?)। ऐसी स्थिति में दुःख का विनाश करने वाले भगवान्
ऋषभदेव के चरण-कमल ही शरण हो सकते हैं॥१८॥

(नेपथ्य में)

दिन में कमलों के विधि द्वारा विधीयमान सङ्कोच (पक्ष में— निर्दुष्ट मित्रानन्द
के बन्धन) को देख पाने में असमर्थ सूर्य दूसरे द्वीप का आश्रयण कर रहा (अस्त
हो रहा) है॥१९॥

कालपाशः— वराहतुण्ड ! प्रातरयं राजकुलाय दर्शनीयः। साम्प्रतं पुनर्भ्रमयत्वेनं सर्वासु नगररथ्यासु । वयमपि तस्करान्वेषणखेदं विनोदयितुं ब्रजामः।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

।।चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः।।

कालपाश—वराहतुण्ड! इसको कल प्रातःकाल राजदरबार में प्रस्तुत करना है। इस समय इसको नगर के सभी मार्गों पर घुमाओ। मैं भी चोर के अन्वेषण से उत्पन्न थकान को मिटाने जा रहा हूँ।

(इसके बाद सभी निकल जाते हैं।)

।।चतुर्थ अङ्क समाप्त।।

॥अथ पञ्चमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति अमात्यः कामरतिः।)

कामरतिः— कोऽत्र भोः अस्मत्परिजनेषु?

(प्रविश्य)

विनयन्धरः— एषोऽस्मि।

कामरतिः—

लक्ष्मीपयोधरोत्सङ्गसुभगङ्कारणांसभूः।

कुमारो रङ्गशालाया मध्यमद्य प्रवेक्ष्यति।।१।।

ततः समादिश सङ्गीतकाय गन्धर्वलोकान्। अलङ्कारय विचित्रमणि-
मौक्तिकप्रालम्बैश्चीनांशुकावचूलैश्च पुरगोपुरतोरणानि। विधापय मन्दिरद्वारा-
लिन्दकेषु मसृणघुसृणगोमुखानि। निर्मापय प्रतिवेश्म बहलपरिमलाकृष्ट-
मधुकरीमधुरङ्गारमुखराणि मृगमदद्रवच्छटाच्छोटनानि।

पञ्चम अङ्क

(तत्पश्चात् अमात्य कामरति प्रवेश करता है।)

कामरति—अरे! यहाँ हमारे सेवकों में से कोई है?

(प्रवेश कर)

विनयन्धर—मैं हूँ।

कामरति—लक्ष्मी के पयोधररूपी गोद को सुशोभित करने वाले (भगवान् विष्णु) के अंश से उत्पन्न राजकुमार लक्ष्मीपति आज रङ्गशालापुरी में प्रवेश करने वाले हैं।।१।।

अतः गन्धर्वों को सङ्गीतसभा के आयोजन का आदेश दो, नगर के द्वार के तोरणों को विचित्र मणि एवं मोती से जड़ित रेशमी वस्त्रखण्डों से सजाओ, मन्दिर के द्वार के चबूतरों पर चिकने केसर का लेप लगाओ (रङ्गोली सजाओ) और प्रत्येक भवन पर तीव्र सुगन्धि से आकृष्ट भ्रमरसमूह की मधुर झङ्कार से मुखरित और कस्तूरीद्रव की छटा बिखेरने वाले सुन्दर चित्र बनवाओ।

विनयन्धरः — सर्वमच्चिरादाचरामि। (इत्यभिधाय निष्क्रान्तः।)

कामरतिः— (पुनर्विमृश्य) कोऽत्र भोः?

(प्रविश्य)

शिखण्डः— आदिशतु मन्त्री।

कामरतिः— अद्य किल नगरोद्धानमधिवसतः कुमारस्य

लक्ष्मीपतेरभिमुखं मुषितान्यभूप-

लक्ष्मीस्वयङ्ग्रहमहग्रहिलैकबाहुः।

मार्गं कियन्तमपि सैन्यवृतो यियासुः

श्रीसिंहलावनिवधूपरमेश्वरोऽयम्॥२॥

ततो गत्वा ब्रूहि गजसैन्याधिपतिं पुण्डरीकम्—यथा करटिघटां प्रगुणय,
विशेषतश्च जयमङ्गलाभिधानं गजराजम्, हरिषेणं च वाजिसैन्याधिपतिं
वाजिसेनासन्नहनाय समादिश।

(शिखण्डः प्रणम्य निष्क्रान्तः।)

विनयन्धर—सभी कार्य शीघ्र सम्पन्न करता हूँ। (यह कहकर वह चला जाता है।)

कामरति—(पुनः सोचकर) अरे! यहाँ कौन है?

(प्रवेश कर)

शिखण्ड—मन्त्रिवर! आदेश दें।

कामरति—आज नगर के उद्धान में स्थित राजकुमार लक्ष्मीपति के सम्मुख
अन्य शत्रु राजाओं से अपहृत लक्ष्मी को स्वयं ग्रहण करने में समर्थ भुजा वाले
और मार्ग में कुछ दूर तक विना सैनिकों के ही चलने की इच्छा वाले सिंहलद्वीप
की पृथ्वीरूपिणी वधू के पति महाराज विक्रमबाहु आने वाले हैं॥२॥

तो जाकर गजसेनाधिपति पुण्डरीक से कहो कि गजसमूह को और विशेषतः
जयमङ्गल नामक गजराज को सुसज्जित करे और अश्वसेनाध्यक्ष हरिषेण को अश्वसेना
को तैयार करने का आदेश दो।

(शिखण्ड प्रणाम करके निकल जाता है।)

१. हर्षेण च वाजिनं सैन्यां क०।

(नेपथ्ये)

इत इतः सिंहलेश्वरः।**कामरतिः— कथमयमास्थानमुपसर्पति देवः?**

(प्रविश्य राजा सिंहासनमलङ्करोति।)

(अमात्यः प्रणमति।)

राजा—अमात्य ! प्रवर्तितः प्रविशतो वत्सस्य नगर (प्रवेश) महोत्सवः?**कामरतिः— अथ किम्?**

(प्रविश्य)

प्रतीहारः— देव! रत्नाकरनगराधिवासिना विजयवर्मणा मण्डलेश्वरेण प्रेषितः पुरुषो द्वारि वर्तते।**राजा— (साशङ्कम्) शीघ्रं प्रवेशय।**

(प्रविश्य पुरुषः प्रणमति।)

(नेपथ्य में)

इधर से सिंहलनरेश! इधर से।

कामरति—क्या महाराज महल की तरफ आ रहे हैं?

(राजा प्रवेश करके सिंहासनारूढ़ होते हैं।)

(अमात्य प्रणाम करता है।)

राजा—अमात्य! क्या पुत्र के नगरागमन का महोत्सव प्रारम्भ हो गया?**कामरति—**और क्या?

(प्रवेश कर)

प्रतीहार—देव! रत्नाकरनगर के निवासी मण्डलेश्वर विजयवर्मा द्वारा भेजा गया पुरुष (दूत) द्वार पर खड़ा है।**राजा—**(आशङ्कापूर्वक) शीघ्र अन्दर ले आओ।

(पुरुष प्रवेश करके प्रणाम करता है।)

राजा— (साक्षेपम्) अरे करभक ! प्रस्थितो विजयवर्मा समूलकाशं कषितुं दुरात्मानं चक्रसेनम्?

पुरुषः— देव! प्रस्थानमेव विज्ञपयितुं सिंहलद्वीपपरमेश्वरपादानां विजयवर्मणा मण्डलेश्वरेण प्रेषितोऽस्मि।

राजा— 'दुरुच्छेदः खलु दुरात्मा चक्रसेनः, ततस्त्वया समग्रसामग्रीकेण योद्धव्यम्' इति गत्वा समादिश विजयवर्माणम्।

(पुरुषः प्रणम्य निष्क्रान्तः।)

राजा— (विमृश्य) अमात्य !

आकर्ण्योऽऽगमनं वयं स्वनगराद् वत्सस्य लक्ष्मीपतेः,

सर्वाङ्गीणसुधानिवेकसुभगामास्वादयामो दशाम्।

कामं वाममिदं स्फुरत्यविरतं नेत्रं च गात्रं च नः,

कोऽयं नाम परस्परप्रतिहतः सर्गक्रमो वेधसः?।।३।।

राजा—(क्रोधपूर्वक) अरे करभक! विजयवर्मा ने दुष्ट चक्रसेन को समूल नष्ट करने हेतु प्रस्थान किया?

पुरुष—देव! प्रस्थान की सूचना देने हेतु ही मण्डलेश्वर विजयवर्मा ने मुझे आपके पास भेजा है।

राजा—जाकर विजयवर्मा को आदेश दो कि दुष्ट चक्रसेन का विनाश अत्यन्त कठिन है, अतः उसे पूरी तैयारी से युद्ध करना चाहिए।

(पुरुष प्रणाम करके निकल जाता है।)

राजा—(सोचकर) अमात्य!

पुत्र लक्ष्मीपति के अपने नगर से आगमन का समाचार सुनकर मैं सम्पूर्ण शरीर पर अमृतरस के लेपन जैसी सुखद अवस्था का अनुभव कर रहा हूँ, यद्यपि मेरी बायीं आँख और शरीर का बायाँ भाग भी निरन्तर फड़क रहे हैं। न जाने यह विधाता का कैसा परस्पर विरोधी विधान है।।३।।

१. °मनं निजस्य नग° ख । कौ०५।

कामरतिः— प्रभञ्जनप्रकोपप्रभवानामङ्गस्फुरणानां शुभाऽशुभोदकेषु
को नाम विश्रम्भः?

(नेपथ्ये वध्यपटहध्वनिः ।)

राजा— अमात्य ! महोत्सवदिने किमिदम्?

(प्रविश्य)

प्रतीहारः— वर्धसे देव! वर्धसे, प्राप्तः कालपाशेन नगरलुण्टाकस्तस्करः ।

राजा— क्वासौ, क्वासौ?

(ततः प्रविशति कालपाशेन केशैर्गृहीतो मित्रानन्दः मूर्धकृतकरण्डिका
कौमुदी च ।)

राजा— (साश्चर्यम्) अमुना नेत्रसुधाञ्जनैकसुहृदाऽप्याकारेण चौर्यकरणम्?
अहो! विचित्रः कर्मणां विपाकः ।

कामरतिः— (कौमुदीमवलोक्य साभिलाषमात्मगतम्)

कामरति— अत्यधिक क्रोध के प्रभाववश फड़कने वाले अङ्गों के शुभाशुभसूचक होने में विश्वास कैसा? अर्थात् क्रोधावेश के कारण फड़कने वाले अङ्ग शुभाशुभसूचक नहीं हो सकते।

(नेपथ्य में वध्यपटह की आवाज सुनायी देती है।)

राजा— अमात्य! महोत्सव के दिन यह क्या?

(प्रवेश कर)

प्रतीहार—जय हो देव! आपकी जय हो, नगर को लूटने वाला चोर कालपाश द्वारा पकड़ा गया।

राजा— कहाँ है वह? कहाँ है?

(तत्पश्चात् कालपाश द्वारा केश से पकड़ा हुआ मित्रानन्द और शिर पर टोकरी रखी हुई कौमुदी प्रवेश करते हैं।)

राजा—(आश्चर्यपूर्वक) आँखों के लिए अमृताञ्जन के समान इस मनोहर आकृति वाले व्यक्ति द्वारा भी चौरकर्म? अहो! कर्मों की गति बड़ी विचित्र है।

कामरति—(कौमुदी को देखकर आसक्तिपूर्वक मन में)

कामं कामं कुसुमधनुषोऽप्यावहन्ती सशोके,
लोकेऽप्यस्मिन् यदि मृगदृशामीदृशी रूपलक्ष्मीः।
क्लेशाकीर्णं तपसि विपुलस्वर्गभोगोत्सुकानां,
मन्दीभूता खलु तदधुना प्राणभाजां प्रवृत्तिः॥४॥

राजा— (साक्षेपम्)

रे रे तस्कर ! कस्तवात्र जनकः? कः सोदरः? कः सुतः?,
कस्मात्? किमु मित्रमस्ति? सदनं ते कुत्र? के बान्धवाः?
कस्येयं कुसुमेषुकेलिसरसी सर्वाङ्गरम्या प्रिया?,
केनाथ व्यसनेन विह्वलमना मुष्णासि नः पत्तनम्?॥५॥

मित्रानन्दः— (सभयम्) देव! समुद्रोपजीवी मित्रानन्दनामा वणिगहम्
उद्धरितशेषं कियदपि द्रविणमादाय स्वनगरं प्रति प्रचलितः। अत्र च मे देव
एव त्राता पिता बान्धवो वा। इयं च मे सधर्मचारिणी। नगरमहं मुष्णामि न
वा? इत्यत्र देवः प्रमाणम्।

यतः इस दुःखमय संसार में भी मृगनयनियों की इस प्रकार की सौन्दर्यलक्ष्मी
है, जो कामदेव को भी अत्यधिक कामासक्त कर सकती है, इसी कारण आजकल
विपुल स्वर्गोपभोग के उत्सुक प्राणियों की कष्टमय तपस्या में प्रवृत्ति (रुचि) मन्द
पड़ गयी है॥४॥

राजा—(क्रोधपूर्वक)

रे रे चोर! तुम्हारे माता-पिता कौन हैं? कौन भाई है? कौन पुत्र है? कौन
रक्षक है? कौन मित्र है? तुम्हारा घर कहाँ है? और बन्धुजन कौन हैं? कामकेलि
की सरोवररूपिणी यह सर्वाङ्गसुन्दरी प्रिया किसकी है? और किस दुःख से विह्वल
होकर तुम हमारे नगर को लूट रहे हो?॥५॥

मित्रानन्द—(भयपूर्वक) महाराज! समुद्र के माध्यम से अपनी जीविका चलाने
वाला मैं मित्रानन्द नामक व्यापारी, नष्ट होने से बचे हुए कुछ धन को लेकर अपने घर
वापस लौट रहा हूँ। यहाँ तो आप ही मेरे पिता, रक्षक अथवा बन्धु हैं। यह मेरी
धर्मपत्नी है और मैं नगर को लूट रहा हूँ या नहीं, इस विषय में तो आप ही प्रमाण

१. अथ क। २. दैवं ख।

राजा— अरे कालपाश! करण्डकाभ्यन्तरमवलोकय।

कालपाशः— (विलोक्य) देव ! एतानि सप्त कुण्डलानि, त्रयोदश मञ्जीराणि, एते चैकविंशतिरङ्गदाः, सप्तदश चूडामणयः, अपरस्य पुनर्वज्र-प्रायस्य रत्नसमूहस्य न शक्यते सङ्गृह्यमानमाधातुम्।

राजा— भद्र! त्वदीयमेतदाभरणम्?

कौमुदी— (सलज्जम्) अद्य इं ?

(अथ किम् ?)

राजा— अमात्य !

दम्पत्योरियमाकृतिरयं च वाचां दृशां च विनिवेशः।

पिशुनयति साधुभावं चौर्यं तु करण्डको वदति।।६।।

कामरतिः— देव! मा शङ्किष्ठाः। तस्कर एवायम्। कथमपरथा विषमसङ्ख्योऽयं नेपथ्यप्रकारः?

राजा— (कौमुदीं विलोक्य)

राजा—अरे कालपाश! देखो टोकरी में क्या है?

कालपाश—(देखकर) महाराज! ये सात कुण्डल, तेरह पायल, इक्कीस बाजूबन्द और सत्रह चूडामणि हैं। अन्य वज्रसदृश कठोर रत्नों की तो संख्या बता पाना सम्भव नहीं है।

राजा—भद्रे! ये आभूषण तुम्हारे ही हैं?

कौमुदी—(लज्जापूर्वक) और क्या?

राजा— अमात्य!

दम्पति की यह आकृति, वाणी एवं विचारों का विनिवेश इनकी सज्जनता को प्रकट कर रहे हैं, किन्तु यह टोकरी तो इनके चौर्य को प्रमाणित कर रही है।।६।।

कामरति—महाराज! शङ्का न करें। यह चोर ही है, अन्यथा इसकी ऐसी विचित्र वेशभूषा क्यों है?

राजा—(कौमुदी को देखकर)

१. एतस्य ख। २. दिशती ख।

अस्याः सरोरुहदृशः सततोदयं च,
 निर्लाञ्छनं च विरचय्य मुखं विधातुः।
 खण्डोदयं च जनविश्रुतलाञ्छनं च,
 चन्द्रं पुनर्घटयतो विदितो विचारः॥७॥

कामरतिः— (साभिलाषम्) देव!

अज्ञातलक्ष्मणि सदोदयवृत्तभाजि,
 पूर्वं सरोरुहदृशां घटिते मुखेन्दौ।
 सारूप्यदूषणभयाद् विधिनाऽयमिन्दुः,
 पक्षक्षयी च घटितः स्फुटलाञ्छनश्च॥८॥

(पुनः स्वगतम्) विफल एव ममावतारो यद्यनया सह न क्रीडामि।

राजा— अरे कालपाश! कुत्र प्रदेशे कथं चायं प्राप्तः?

कालपाशः— आनुपदिकेनार्पितश्चण्डिकायतने प्रतिगृहीतः।

इस कमलनयनी के सतत दीप्ततर होते हुए और निष्कलङ्क मुख की रचना कर विधाता का खण्ड रूप में उदित होने वाले, लोकविश्रुत कलङ्कयुक्त चन्द्रमा को पुनः रचने का विचार विदित होता है अर्थात् ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता ने अखण्ड एवं निष्कलङ्क चन्द्रमा की सृष्टि के विचार से ही मानो इस कौमुदी के सतत दीप्तिमान् और निष्कलङ्क मुख की रचना की हो॥७॥

कामरति—(आसक्तिपूर्वक) महाराज!

पहले इस कमलनयनी के निष्कलङ्क और सतत दीप्तिमान् मुखचन्द्र की रचना हो जाने पर विधाता ने मानो सारूप्यदूषण के भय से इस चन्द्रमा को पक्षक्षयी और स्फुट कलङ्कयुक्त बनाया॥८॥

(पुनः मन में) यदि इस कौमुदी के साथ रमण नहीं करता हूँ तो मेरा जन्म-ग्रहण निष्फल ही है।

राजा—अरे कालपाश! यह चोर कहाँ और कैसे पकड़ा गया?

कालपाश—आनुपदिक ने चण्डिका-मन्दिर में पकड़ कर मुझे सौंप दिया।

राजा— (विमृश्य) तं त्वरिततरमानुपदिकमाकारय।

(प्रविश्य)

आनुपदिकः— ए॒सं म्हि।

(एषोऽस्मि।)

राजा— अरे! अयं तस्करः त्वया पदानुसारेण समुपनीतः?

आनुपदिकः— (मित्रानन्दपदान्यवलोक्य) भद्रा! अन्नालिशा शा पदपद्धई
जा कच्चायणीभवणं पविष्टा।

(भर्तः ! अन्यादृशी सा पदपद्धतिः या कात्यायनीभवनं प्रविष्टा।)

राजा— अमात्य ! किमिदम्?

कामरतिः— देव! अयमपि चौरः, यस्य च पदपद्धतिः कात्यायनीभवनं
प्रविष्टा सोऽपि चौरः। महदिदं देवस्य नगरम्, सम्भवन्ति भूयांसो दस्यवः।

राजा— (कौमुदीं प्रति)

राजा—(सोचकर) उस आनुपदिक को शीघ्र बुलाओ।

(प्रवेश कर)

आनुपदिक—मैं उपस्थित हूँ।

राजा—अरे! क्या इस चोर को तुमने पदचिह्न के आधार पर पकड़ा है?

आनुपदिक—(मित्रानन्द के पैरों को देखकर) महाराज! वह पदचिह्न अन्य
प्रकार का था, जो चण्डिका-मन्दिर में प्रविष्ट हुआ था।

राजा—अमात्य! यह क्या है?

कामरति—महाराज! यह भी चोर है और जिसका पदचिह्न चण्डिका मन्दिर
में प्रविष्ट हुआ था, वह भी चोर ही था। महाराज का यह नगर बहुत विशाल है
और इसमें बहुत से चोर हो सकते हैं।

राजा—(कौमुदी से)

१. एसो म्हि ख।

वक्त्रं पात्रं लवणमधुनः पद्महृद्यौ च पाणी,
 वाणी स्वादुश्चकितहरिणीहारिणी नेत्रपत्रे।
 लज्जासज्जा स्थितिरविकृतिर्भूरिसत्त्वं महत्त्वं,
 तत् त्वं तत्त्वं कथय ननु नः काऽसि? कस्यासि पत्नी? ॥९॥

कौमुदी— (सलज्जम्) देव ! वणिअस्स दुहिआ, एदस्स बहुआ।

(देव ! वणिजो दुहिता, एतस्य वधूः।)

कामरतिः— देव! नेयमस्य पत्नी, किमुतानेन कुतोऽप्यपहत्य मन्त्रेण वा तन्त्रेण वा व्यामोहिता, तदियं मुहुर्मुहुरेतदनुकूलं व्याहरति।

राजा— (विमृश्य) अरे कालपाश? पौरानाह्वय।

(प्रविश्य कृतोष्णीषाः सप्ताष्टा वणिजः प्रणमन्ति।)

राजा— उपलक्ष्योपलक्ष्य प्रतिगृहणीत यूयं स्वं स्वमाभरणं त्रविणं च।

राजा—(कौमुदी से)

तुम्हारा मुख लावण्यरूपी मधु का पात्र है, भुजाएँ कमल के समान मनोहर (सुकोमल), वाणी मधुर और आँखें चकित हरिणी के समान मनोहारिणी हैं। लज्जा ही तुम्हारा आभूषण है, मन सर्वथा विकारशून्य है और आत्मबल ही महत्त्व है। तो तुम हमको सच-सच बतलाओ कि तुम कौन हो और किसकी पत्नी हो? ॥९॥

कौमुदी—(लज्जापूर्वक) महाराज! मैं एक व्यापारी की पुत्री और इस (मित्रानन्द) की पत्नी हूँ।

कामरति—महाराज! यह इसकी पत्नी नहीं है, अपितु इसने कहीं से अपहरण कर इसको मन्त्र या तन्त्र से अपने वश में कर लिया है, इसीलिये यह इसके अनुकूल बोल रही है।

राजा—(सोचकर) अरे कालपाश! नागरिकों को बुलाओ।

(सात-आठ पगड़ीधारी व्यापारी प्रवेश करके प्रणाम करते हैं।)

वणिजः— (विलोक्य) भट्टा! न इत्थ अम्हाणं आभरणं वा दविणं वा किं पि अत्थि।

(भर्तः ! नात्रास्माकमाभरणं वा द्रविणं वा किमप्यस्ति।)

राजा— अमात्य! न तावदमुनाऽस्मत्पौराणां किमप्यपहतम्, देशान्तर-तस्करनिग्रहे तु के वयम्?

कामरतिः— (स्वगतम्) न^१ नामास्मिस्तस्करे जीवति ममेयं कथञ्चिदपि वनिता सम्पद्यते, तदयं यथाकथञ्चिदपि व्यापादयितव्यः। भवतु। (प्रकाशम्) देव! निश्चयेन तावदयं चौरः। साम्प्रतमेव चायमायातस्ततः पौराणां किमपि नापकृतवान्। अतः परं पुनः सर्वमपि शनैः शौनरपकुर्यात्। चौरश्च राज्ञां स्वदेशजो वा परदेशजो वा वध्य एव। (पुनरपवार्यं) इदं धनम् इयं स्त्री च देवपादानामभ्यर्णं विश्राम्यतु। चौरस्य पुनः प्रतिविधानं कालपाशः कुरुताम्।

राजा— (कालपाशं प्रति) यदभिद्यते मन्त्री तदनुष्ठेयम्।

(कामरतिः कालपाशस्य कर्णे— एवमेव।)

राजा—तुम सब अपने-अपने आभूषणों एवं धन को पहचान कर ले लो।

व्यापारीगण—(देखकर) स्वामी! इनमें कोई भी आभूषण या धन हमारा नहीं है।

राजा—अमात्य! इसने तो हमारे नगरवासियों का कुछ भी नहीं चुराया, तो फिर दूसरे देश के चोर को पकड़ने वाले हम कौन होते हैं?

कामरति—(मन ही मन) इस चोर के जीवित रहते यह तरुणी मुझको किसी भी प्रकार नहीं मिल सकती, अतः इसको जिस किसी प्रकार मरवाना चाहिए। अच्छा। (प्रकट रूप से) महाराज! यह अवश्य ही चोर है और अभी-अभी आया है, इसीलिए नगरवासियों का कुछ भी अपकार नहीं कर पाया है। अब पुनः धीरे-धीरे सब का अपकार करेगा और फिर चोर स्वदेश का हो या परदेश का, वह तो वध्य होता ही है। (हाथ की ओट लेकर) यह धन और यह स्त्री महाराज के पास विश्राम करे और चोर के दण्डादि की व्यवस्था कालपाश करे।

राजा—(कालपाश से) मन्त्री जो कहते हैं, वही किया जाय।

१. निग्रहेषु ख।

२. न चास्मि° ख।

(कालपाशः साक्षेपं मित्रानन्दं केशैर्गृह्णाति।)

(नेपथ्ये करुणध्वनिः।)

राजा— (सभयमाकर्ण्य) अमात्य ! किमिदम्?

(प्रविश्य)

चेटी— (सोरस्ताडम्) भट्टा ! मुसिद म्हि मुसिद म्हि।

(भर्तः ! मुषिताऽस्मि मुषिताऽस्मि।)

राजा— चतुरिके ! विश्रब्धमभिधीयताम्।

चेटी— भट्टा ! देवी पत्तलेहा विण्णवेदि ।

(भर्तः ! देवी पत्रलेखा विज्ञपयति ।)

राजा— त्वरिततरं विज्ञपय-किमादिशति देवी?

चेटी— कुमारो लच्छीवई उज्जाणे कुसुमावचायं कुव्वाणो भुअंगमेण दट्ठो विवन्नो अ, एदं देवी विन्नवेदि।

(कुमारो लक्ष्मीपतिरुद्याने कुसुमावचायं कुर्वाणो भुजङ्गमेन दष्टो विपन्नश्च, एतद् देवी विज्ञपयति।)

(कामरति कालपाश के कान में— ऐसा ही करो।)

(कालपाश क्रोधपूर्वक मित्रानन्द का केश पकड़ लेता है।)

(नेपथ्य में करुणध्वनि सुनायी पड़ती है।)

राजा—(सुनकर भयपूर्वक) अमात्य! यह कैसी आवाज है?

(प्रवेश कर)

चेटी—(छाती पीटती हुई) स्वामी! लुट गयी, लुट गयी।

राजा—चतुरिके! शान्त होकर कहो— क्या बात है?

चेटी—स्वामी! महारानी पत्रलेखा कह रही हैं?

राजा—शीघ्र बतलाओ— क्या कह रही हैं महारानी?

राजा— हा वत्स शशाङ्ककुलप्रदीप! कामिमां दुःस्थामवस्थामाप्तोऽसि?

(ततः प्रविशति शिबिकाधिरूढः प्रणष्टसर्वक्रियः कुमारो लक्ष्मीपतिः
प्रलपन्ती पत्रलेखा च।)

कामरतिः— भो भोः शिबिकावाहिनः ! सिंहासनस्य पादपीठे विमुञ्चत
कुमारम्।

(शिबिकावाहिनस्तथा कुर्वन्ति।)

पत्रलेखा— अज्जउत्त! पिच्छ पिच्छ, वच्छस्स कीदिसं जादं?

(आर्यपुत्र ! पश्य पश्य, वत्सस्य कीदृशं जातम् ?)

(राजा विलोक्य सहसा मूर्च्छति।)

कामरतिः— भो भोः पुरुषाः! त्वरध्वं त्वरध्वम्, उपनयध्वम् उपनयध्वं
चन्दनशिशिराम्भः कदलीपत्रव्यजनानि च।

(प्रविश्य पुरुषाश्चन्दनाद्यैरभिषिच्य राजानं बीजयन्ति।)

राजा— (चेतनामास्थाय कुमारस्योपरि निपत्य च साक्रन्दम्)

राजा—हाय पुत्र चन्द्रवंश के दीपक! यह किस दुरवस्था (सङ्कट) में पड़
गये हो?

(तत्पश्चात् पालकी पर आरूढ़ निश्चेष्ट राजकुमार लक्ष्मीपति और विलाप
करती हुई पत्रलेखा प्रवेश करती हैं।)

कामरति—अरे अरे पालकी उठाने वालो! सिंहासन के पादपीठ (पैर रखने
के स्थान) पर कुमार को रखो।

(पालकीवाहक वैसा ही करते हैं।)

पत्रलेखा—आर्यपुत्र! देखिये देखिये, पुत्र की क्या दशा हो गयी है?

(राजा देखकर अकस्मात् मूर्च्छित हो जाते हैं।)

कामरति—अरे अरे सेवको! जल्दी करो, जल्दी करो, चन्दनमिश्रित शीतल
जल और केले के पत्ते के पङ्के ले आओ।

(सेवकगण प्रवेश कर चन्दनादि के शीतल जल से सिक्त कर राजा को पंखा
करते (हवा लगाते) हैं।)

राजा—(सचेतन होकर और कुमार के ऊपर गिरकर रोते हुए)

वत्स ! प्रसीद, कुलमण्डन! देहि वाचं,
हातुं कथं प्रवयसं पितरं क्रमस्ते?
अस्तोकशोकजननी प्रतिरुध्य निद्रा-

मुद्रां निजान् परिरभस्व चिराय बन्धून् ॥१०॥

(सर्वे तारस्वरं प्रलपन्ति।)

मित्रानन्दः— कालपाश ! किमपि विज्ञपयितुकामोऽस्मि।

कालपाशः— अमात्य ! तस्करोऽयं राजानं विज्ञपयितुमिच्छति।

कामरतिः— (साक्षेपम्) इदानीं विज्ञापनायाः कः समयः?

राजा— अमात्य ! किमभिधत्ते चौरः?

कालपाशः— देव ! तस्करोऽयं राजानं विज्ञपयितुमिच्छति।

राजा— व्यापाद्यमानो लभते विज्ञापनामेकाम्, तदयं विज्ञपयतु वराकः।

मित्रानन्दः— अस्ति देव ! नः कुलक्रमागतो विषापहारमन्त्रः।

हे पुत्र! प्रसन्न हो जाओ, हे कुल के रत्न! कुछ बोलो, क्यों वृद्ध माता-पिता को छोड़कर जाने के लिए व्यग्र हो रहे हो? अत्यधिक शोकप्रद इस मूर्च्छावस्था को त्याग कर चिरकाल तक अपने बन्धुजनों का आलिङ्गन करो॥१०॥

(सभी जोर-जोर से रोते हैं।)

मित्रानन्द—कालपाश! मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

कालपाश—अमात्य! यह चोर राजा से कुछ कहना चाहता है।

कामरति—(क्रोधपूर्वक) यह भी कुछ कहने का समय है?

राजा—अमात्य! चोर क्या कह रहा है?

कालपाश—देव! यह चोर आप से कुछ कहना चाहता है।

राजा—मरने वाले को एक बात कहने का अवसर अवश्य मिलना चाहिए, अतः यह बेचारा जो कहना चाहता है, वह कहे।

मित्रानन्द—हे देव! हमारे पास कुल-क्रम से प्राप्त विष को दूर करने का मन्त्र है।

कामरतिः— अरे ! म्रियमाणः कुशकाशानवलम्बसे?

राजा— महाभाग! भूयोऽप्येतान्येवाक्षराणि श्रावय।

मित्रानन्दः— अस्ति नः कुलक्रमागतः शतशो दृष्टप्रत्ययो विषापहारमन्त्रः।

राजा— (प्रणम्य) परमेश्वर ! तर्हि प्रसीद। प्रयच्छास्मत्कुलाय प्राणभिक्षाम्।

अरे कालपाश ! द्रुततरमपनय बन्धनानि।

(कालपाशस्तथा करोति।)

(मित्रानन्द आसनविशेषमाधाय ध्यानं नाटयति।)

(आकाशे)

ब्रूहि भोः ! ब्रूहि, किमर्थं मां स्मृतवानसि?

सर्वे— (ऊर्ध्वमवलोक्य सविस्मयम्) कथमियं भगवती विषदेवता जाङ्गली स्वयं व्याहरति?

कामरति—अरे! मरते समय तिनके का सहारा ले रहे हो?

राजा—हे महाभाग! यह बात एक बार फिर सुनाइये।

मित्रानन्द—हमारे पास कुल-क्रम से प्राप्त सैकड़ों बार प्रयुक्त प्रभावशाली विश्वसनीय विषनाशक मन्त्र है।

राजा—(प्रणाम करके) हे परमेश्वर! तो आप हम पर कृपा करके हमारे वंश की रक्षा के लिए हमारे पुत्र को प्राणदान दीजिए। अरे कालपाश! बन्धनों को शीघ्र खोलो।

(कालपाश वैसा ही करता है।)

(मित्रानन्द विशेष मुद्रा में बैठकर ध्यान करने का अभिनय करता है।)

(आकाश में)

अरे! बोलो बोलो, तुमने किसलिए मेरा स्मरण किया?

सभी—(ऊपर देखकर आश्चर्यपूर्वक) क्या ये स्वयं विषदेवता जाङ्गली बोल रही है?

मित्रानन्दः—(प्रणम्य) भगवति ! यदि मया प्रसादिताऽसि तदा युवराज-
मुत्थापय।

(आकाशे)

उत्तिष्ठ भोः! उत्तिष्ठ।

कुमारः— (ससम्भ्रममुत्थाय) कथमयमियान् जनसम्मर्दः? अम्ब! किमद्य
तातदर्शनमहोत्सवे शोकदुर्दिनान्धकारितवदनाऽसि? प्रयतस्व, ब्रजामस्तातपादान्
प्रणन्तुम्।

राजा— (सानन्दं सबाष्पम्)

एह्येहि वत्स ! शीतांशुवंशमुक्तावचूल! माम्।

दोर्भ्यां मृणालमित्राभ्यामालिङ्ग पितरं निजम्।।११।।

कुमारः— कथं नेदीयांस एव तातपादाः? (उत्थाय प्रणमति।)

(राजा आलिङ्ग्य शिरसि चुम्बति।)

मित्रानन्द—(प्रणाम करके) देवि! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो कुमार
को होश में लाइए।

(आकाश में)

उठो हे (कुमार)! उठो।

कुमार— (घबराहटसहित उठकर) यहाँ इतने लोगों की भीड़ किसलिए?
हे माता! आज पितृदर्शन के महान् अवसर पर तुम्हारा मुखमण्डल मेघाच्छन्न दुर्दिन
के समान शोक से मलिन क्यों है? धीरज रखो, अब हम पिताजी को प्रणाम करने
जा रहे हैं।

राजा—(आनन्दाश्रु बहाते हुए)

आओ आओ पुत्र! चन्द्रवंश के लहराते हुए ध्वजवस्त्र! अपनी कमलनालसदृश
कोमल भुजाओं से अपने पिता का आलिङ्गन करो।।११।।

कुमार—क्या पिताजी समीपस्थ ही हैं? (उठकर प्रणाम करता है।)

(राजा आलिङ्गन करके उसके मस्तक को चूमते हैं।)

कुमारः—(मित्रानन्दमवलोक्य) तात! वध्यनेपथ्यधारी राजसदसि कोऽयम्?

राजा— महदस्य चरितमनाख्येयमिदानीं पवित्रे भवत्सम्पर्कपर्वणि।

(पुनः सविनयं मित्रानन्दं प्रति)

त्वमेवास्य स्वामी, त्वमसि जनकस्त्वं च जननी,

गुरुस्त्वं, बन्धुस्त्वं, त्वमसि परमं मित्रमपि च।

त्वया येनाऽऽकृष्टस्त्रिभुवनजनग्रासरभस-

प्रवेत्सिज्जिह्वाग्रात् प्रसभमयमास्यात् पितृपतेः॥१२॥

(मित्रानन्दः सलज्जमधोमुखो भवति।)

राजा— (अमात्यं प्रति)

प्राणानेष सुताय नः प्रवितरन् निःशेषमस्मत्कुलं,

प्राणैः प्रीणितमावहत् प्रविलसत्कारुण्यपुण्याकृतिः।

कुमार—(मित्रानन्द को देखकर) पिताजी! राजभवन में वध्यवस्त्रधारी यह कौन है?

राजा—इसकी कथा बहुत विस्तृत है और तुमसे मिलन के इस पवित्र अवसर पर सुनायी नहीं जा सकती।

(पुनः विनयपूर्वक मित्रानन्द से)

तुम ही इसके स्वामी हो, तुम ही पिता और तुम ही माता हो। इसके गुरु भी तुम हो, बन्धु भी तुम हो और परम मित्र भी तुम ही हो। क्योंकि, तुमने ही इसको यमराज के त्रिलोक के प्राणियों का भक्षण करने को आतुर लपलपाती हुई जिह्वा वाले मुख से बलपूर्वक बाहर खींच लिया है॥१२॥

(मित्रानन्द लज्जा से मुख नीचे झुका लेता है।)

राजा—(अमात्य से)

हमारे पुत्र को प्राणदान देने वाला और हमारे समस्त कुल को हृदय से आनन्दित करने वाला यह मित्रानन्द करुणा और पुण्य से विभूषित आकृति वाला है। तो क्या इस विशाल ब्रह्माण्ड में ऐसी कोई वस्तु है, जिसे प्रतिदान में

तत् किं वस्तु तदस्ति किञ्चन गुरौ ब्रह्माण्डभाण्डोदरे,
येनाऽऽनृण्यममृष्य विश्वजनतारत्नस्य यामो वयम्? ॥१३॥

तत् तावदेतौ जम्पती स्ववेश्मनि नीत्वा प्रसादय अस्मन्निर्विशेषेण
गौरवविशेषेण यावन्निजनगरं प्रति प्रस्थाप्येते।

कामरतिः— (स्वगतम्) प्रियं नः।

राजा— वयं च कुमारेण सह सुख-दुःखवार्ता विधातुं मध्यं
प्रविशामः ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

॥पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः॥

देकर हम सम्पूर्ण जनसमूह के रत्नभूत इस मित्रानन्द के ऋण से मुक्त हो
सकें? ॥१३॥

अतः तब तक इस दम्पती को अपने भवन में ले जाकर इनका पूर्ण राजकीय
सम्मान करो, जब तक कि ये अपने नगर को नहीं लौट जाते।

कामरति—(मन ही मन) हमारे लिए तो अच्छा ही है।

राजा—और हम कुमार के साथ सुख-दुःख की बात करने महल के अन्दर
जा रहे हैं ॥

(सभी निकल जाते हैं।)

॥पञ्चम अङ्क समाप्त॥

॥ अथ षष्ठोऽङ्कः ॥

(ततः प्रविशति मङ्गलकः)

मङ्गलकः— (साश्चर्यम्)

समुद्रे पतितस्यापि क्षिप्तस्यापि नभस्तलात्।

पुनः सम्पद्यते लक्ष्मीर्यदि प्राणैर्न मुच्यते ॥१॥

कथमपरथा तथाविधे त्रिलोकीप्रतिभयैकसदसि महति सम्परायमहार्णवे विपक्षक्षितिपालकरालकरवालप्रहारैर्विजयवर्मणः प्रत्यङ्गं व्रणेन वैशसम्?, कथं चाकाण्डसङ्कटितपान्थप्रवर्तितौषधद्रवोपलेपेन तदात्व एव व्रणश्रेणीसंरोहणम्? सर्वथाऽप्यपारव्यसनकान्तारपतितेनापि प्रेक्षापूर्वकारिणा प्राणिना न विषादवैद्युर्यमाधेयम्। भवतु, यथादिष्टमादधामि। (पुरोऽवलोक्य) कथमयमितः परापतति मदनकः?

(प्रविश्य)

मदनकः— आर्य ! क्व प्रस्थितोऽसि?

॥ षष्ठ अङ्क ॥

(तत्पश्चात् मङ्गलक प्रवेश करता है।)

मङ्गलक—(आश्चर्यपूर्वक)

समुद्र में डूबे हुए अथवा आकाश से नीचे फेंके गये व्यक्ति की भी सम्पत्ति पुनः प्राप्त हो जाया करती है, यदि उस व्यक्ति की मृत्यु नहीं होती ॥१॥

अन्यथा कैसे उस प्रकार के अत्यन्त भयानक युद्धरूप महासमुद्र में विपक्षी राजा के तलवार के भीषण प्रहारों से विजयवर्मा का अङ्ग क्षत हो गया और कैसे अकस्मात् ही उपस्थित पथिक द्वारा लगाये गये औषधद्रव के लेप से तत्क्षण ही समस्त घाव भर भी गया? अतः घोर सङ्कटरूप जङ्गल में फँस जाने पर भी बुद्धिमान् व्यक्ति को विषाद से व्याकुल नहीं होना चाहिए। अच्छा जैसा आदेश है, वैसा ही करता हूँ। (सामने देखकर) क्या यह मदनक इधर ही आ रहा है?

(प्रवेश कर)

मदनक—आर्य! आप कहा जा रहे हैं?

१. *प्रतिवर्तितौषधराजवलयेन ख।

मङ्गलकः— अद्य किल रत्नाकराभ्यन्तरे विपक्षसौप्तिकोपनिपातकिंवदन्ती।
ततः सैनिकावधानदानाय विजयवर्मणा मण्डलेश्वरेण प्रेषितोऽस्मि ।

मदनकः— आर्य ! आमूलतः सम्परायसंरम्भं श्रोतुमिच्छामि ।

मङ्गलकः— देवस्य विक्रमबाहोरादेशेन चक्रसेनमुत्पाटयितुं विजयवर्मा
प्रस्थित इति तवापि प्रतीतमेव। अनन्तरं च—

क्षुण्णासु कोटिषु मदान्धदृशां भटानां,
नष्टे द्विपेन्द्रतुरगोद्भुरपत्तिसैन्ये।
अन्योन्यमुद्यतकृपाणकडम्बकुन्तौ,
योद्धुं स्वयं परिवृढौ रभसात् प्रवृत्तौ।।२।।

मदनकः— (ससम्भ्रमम्) ततस्ततः?

मङ्गलकः— अनन्तरं च चक्रसेनः प्राणापहारिभिर्निशातहेतिभिर्विजयवर्मणं
सर्वाङ्गीणमभिहतवान्।

मदनकः— (सभयम्) ततस्ततः?

मङ्गलक—आज रत्नाकर नगर में शत्रु-सैनिकों के आक्रमण की अफवाह
है, अतः मण्डलेश्वर विजयवर्मा ने मुझे सैनिकों को सावधान करने हेतु भेजा है।

मदनक—आर्य! युद्ध की सम्पूर्ण कथा सुनना चाहता हूँ।

मङ्गलक—महाराज विक्रमबाहु के आदेश से चक्रसेन को उखाड़ फेंकने
(मारने) हेतु विजयवर्मा ने प्रस्थान किया था, यह तो तुमको भी ज्ञात ही है। और
उसके पश्चात् —

मदमत हाथियों से मतवाले असंख्य सैनिकों तथा गजराज, अश्व एवं उद्भट
पदसैनिकों के मारे जाने पर एक दूसरे पर तलवार और भाला ताने हुए दोनों सेनापति
(विजयवर्मा एवं चक्रसेन) स्वयं ही प्रचण्ड वेगपूर्वक परस्पर युद्ध करने लगे।।२।।

मदनक—(धबड़ाहटपूर्वक) उसके पश्चात् ?

मङ्गलक—तब चक्रसेन ने प्राणघातक तीक्ष्ण शस्त्रों के प्रहार से विजयवर्मा
को पूर्णरूपेण घायल कर दिया।

मदनक —(भयपूर्वक) फिर उसके पश्चात् ?

मङ्गलकः— ततः प्रहतसर्वाङ्गीणमर्माणं कण्ठगतप्राणं विजयवर्माणं विलोक्य विषादी निषादी शनैः शनैः गजराजं प्रतिनिवर्त्य स्वं शिबिरमायातवान्।

मदनकः— अहं ! विक्रमबाहोः प्रतापक्षयः। (पुनर्विमृश्य) आर्य ! कोऽयं। द्विजातिमैत्रेयः?, कथं च विजयवर्मणे सङ्घटितवान्?

मङ्गलकः— अयं च किल वैदेशिकः सैनिकैर्भ्रमद्भिर्विपक्षप्रणिधिरिति मन्वानैः सङ्ग्रह्य विजयवर्मणे समुपनीतः। विजयवर्मणा च प्रहारप्रसूतप्रभूतवेदनामूर्च्छालेन तदात्व एव व्यापादयितुमादिष्टः।

मदनकः— ततस्ततः?

मङ्गलकः— ततो 'मास्म मां व्यापादयः, तवाहं महान्तमुपकारमाधास्यामि' इत्यभिधाय मैत्रेयः केनाप्यौषधद्रवेषोपलिप्य विजयवर्माणं प्ररूढसर्वाङ्गीण-व्रणामकरोत्।

मदनकः— (सकौतुकम्)

मङ्गलक—तत्पश्चात् पूर्ण घायल विजयवर्मा को मरणासन्न समझकर अत्यन्त क्लान्त चक्रसेन विश्राम करने हेतु शनैः-शनैः गजराज को लौटाकर अपने शिविर में वापस चला गया।

मदनक— आह! विक्रमबाहु के प्रताप (शौर्य) का क्षय (दुःखद है)। (पुनः विचार कर) आर्य! यह ब्राह्मण मैत्रेय कौन है? तथा विजयवर्मा से कैसे मिला?

मङ्गलक— यह वस्तुतः परदेशी है, जिसको भ्रमण करते हुए सैनिकों ने शत्रु का गुप्तचर समझकर पकड़ लिया और विजयवर्मा के पास ले आये और शस्त्रप्रहार की तीव्र वेदना से मूर्च्छितप्राय विजयवर्मा ने तत्क्षण ही इसको मारने का आदेश दे दिया।

मदनक— तब उसके पश्चात् ?

मङ्गलक— उसके पश्चात् 'मुझे मत मारो, मैं तुम्हारा महान् उपकार करूँगा' यह कहकर मैत्रेय ने किसी औषधद्रव का लेप लगाकर विजयवर्मा के समस्त घावों को ठीक कर दिया।

मदनक— (कुतूहलपूर्वक)

क्व नाम प्राणसंहारी सर्वाङ्गीणव्रणोदयः?।

क्व च मैत्रेयसम्पर्कः पर्ववल्लीप्ररोहभूः?।।३।।

मङ्गलकः— किमिदं कौतूहलम्?

अभिमुखवर्तिनि वेधसि पुण्यगुणावर्जितानि सर्वाणि।

द्वीपान्तरस्थितान्यपि पुरः प्रधावन्ति वस्तूनि।।४।।

तत् कथय क्व प्रस्थितोऽसि?

मदनकः— देवेन भगवतो लोहितपाणेः पुरुषोपहारं कर्तुकामेन वैदेशिकस्य कस्यापि गवेषणाय प्रेषितोऽस्मि ।

मङ्गलकः— इदानीं किं करोति देवः?

मदनकः— एष यक्षोपवने मैत्रेयेण सह किमपि जल्पन्नस्ति, तत्र ब्रजत्वम्। अहमपि यथादिष्टमादधामि।

कहाँ एक ओर विजयवर्मा के सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग में इन प्राणान्तकारी व्रणों का उदय और कहाँ (दूसरी ओर) पूर्णिमा में उत्पन्न (अत एव अमृतमयी) लता के उत्पत्तिस्थान जैसा यह मैत्रेय का मिलन! ।।३।।।

मङ्गलक— इसमें कौतूहल कैसा?

भाग्य के अनुकूल होने पर तो पुण्य-गुण से अर्जित द्वीपान्तर में भी स्थित सभी वस्तुएँ तत्क्षण सम्मुख उपस्थित हो जाती हैं।।४।।

तो बताओ कहाँ जा रहे हो?

मदनक— भगवान् लोहितपाणि को पुरुषबलि प्रदान करने के इच्छुक मण्डलेश्वर ने मुझे किसी परदेशी के अन्वेषण के लिए भेजा है।

मङ्गलक— इस समय क्या कर रहे हैं मण्डलेश्वर ?

मदनक— यक्षोद्यान में मैत्रेय के साथ कुछ वार्तालाप कर रहे हैं, तुम वहीं जाओ। मैं भी आदेशानुसार कार्य करता हूँ।

१. किमिदं कौ क।

२. यक्षायतने ख।

३. ततो ख।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ विष्कम्भकः ॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः समैत्रेयो विजयवर्मा सुनन्दप्रभृतिकश्च परिवारः।)

विजयवर्मा— कोऽत्र भोः ?

(प्रविश्य)

माधव्यः— एषोऽस्मि।

विजयवर्मा— माधव्य ! नव्यां कामप्यद्य भगवतो यक्षाधिराजस्य पूजां विरचय। स्वयं च वयमद्य बलिं विद्यास्याम इत्युपहारपशुः पवित्रयित्वा प्रगुणीकार्यः।

माधव्यः— यदादिशति रत्नाकराधिपतिः। (इत्यभिधाय निष्क्रान्तः।)

विजयवर्मा— (सविनयं मैत्रेयं प्रति)

प्राणेभ्यो नापरं वस्तु प्रेमपात्रं वपुष्मताम्।

ते च मे युष्मदायत्ताः किं ब्रुवेऽहमतः परम्? ॥५॥

(दोनों निकल जाते हैं।)

॥विष्कम्भक समाप्त॥

(तदनन्तर यथानिर्दिष्ट मैत्रेयसहित विजयवर्मा और सुनन्दप्रभृति अनुचरगण प्रवेश करते हैं।)

विजयवर्मा— अरे यहाँ कौन है ?

(प्रवेश कर)

माधव्य— मैं हूँ।

विजयवर्मा— माधव्य! आज भगवान् यक्षाधिराज कुबेर की विशेषपूजा की व्यवस्था करो और आज मैं स्वयं बलि प्रदान करूँगा, इसलिए बलिपशु को स्नानादि करवाकर तैयार करो।

माधव्य— रत्नाकराधिपति की जो आज्ञा (यह कहकर वह निकल जाता है।)

विजयवर्मा— (विनयपूर्वक मैत्रेय से)

प्राणियों के लिए अपने प्राणों से प्रिय कोई अन्य वस्तु नहीं होती और वह भी मैंने आपको समर्पित कर दी। अब इसके आगे मैं क्या कहूँ? ॥५॥

मैत्रेयः— किमेवमादिशन्ति मण्डलेश्वरपादाः ?

धात्रीधरैकधुरबाहुषु किं नृपेषु,
पुष्पाति भद्रमुदरम्भरिरध्वनीनः ?
युष्मादृशान् घटयितुं विधिरुन्मदिष्णुः,
श्रेयांसि तत्र पुनरौपथिकं स्थितोऽहम् ॥६॥

सुनन्दः— (साश्चर्यम्) देव ! सेयं महत्त्वस्य गाम्भीर्यस्य च परा
काचिदुपनिषत्।

विजयवर्मा— माहात्म्यदर्पसर्पभसंस्पृशन्तो यत्किञ्चिदपि समादिशत
यूयम्। अहं पुनस्तत्र भवतो भवतो विना प्राणितमात्मनो विधेरप्यविधेयमाकलयामि।

मैत्रेयः— रत्नाकराधीश्वर !

सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा रोहन्ती दैवमीक्षते।
एवमप्यर्थिताऽन्येषु पुंसां क्लैब्ध्याय केवलम् ॥७॥

मैत्रेय— ऐसा क्यों कह रहे हैं मण्डलेश्वर महोदय?

जिनकी भुजा इस पृथ्वी को धारण करने में एकमात्र धुरी का कार्य करती है, ऐसे राजाओं का अपनी उदरपूर्तिमात्र में संलग्न एक पथिक भला क्या कल्याण कर सकता है? आप जैसे महानुभावों का कल्याण करने के लिए स्वयं विधाता ही प्रसन्नतापूर्वक तत्पर हैं, मैं तो उसका निमित्तमात्र हूँ ॥६॥

सुनन्द—(आश्चर्यपूर्वक) मण्डलेश्वर! यह तो बड़ी उत्कृष्ट और गम्भीरतापूर्ण ज्ञान की बात है।

विजयवर्मा—श्रेष्ठता के अहङ्कार से रहित आप की जो इच्छा हो वह आदेश दीजिए। मैं विधाता के भी असाध्य उस कार्य को अपने प्राणों की चिन्ता किये विना पूर्ण करूँगा।

मैत्रेय— रत्नाकरनरेश!

सम्पत्ति अथवा विपत्ति का उदय तो मनुष्य के भाग्य के अधीन है, किन्तु ऐसा होने पर भी इनके लिए दूसरे के समक्ष हाथ फैलाना मनुष्य की अशक्ति (दीनता) को ही प्रकट करता है ॥७॥

सुनन्दः— देव ! विरमतु कथेयम्। अनया खलु द्विजराजपादाः महतीं त्रयामुद्वहन्ति।

विजयवर्मा—

निष्काङ्क्षमुपकारोऽपि विश्वोत्तीर्णा सतां क्रिया।

अप्रकाशस्तु यस्तस्य तत्र ब्रह्माऽपि मन्थरः॥८॥

सुनन्दः— देव!

पञ्चषाः सन्ति ते केचिदुपकर्तुं स्फुरन्ति ये।

ये स्मरन्त्युपकारस्य तैस्तु बन्ध्या वसुन्धरा॥९॥

विजयवर्मा— किमेवमार्यानिष्युपकार्यानिनार्यैः संक्लेशितः सन्तर्जयसि?

प्रत्युपकारमाधातुमनुरूपं निरोजसः।

उपकारं स्मरन्तोऽपि विस्मरन्ति महौजसः॥१०॥

सुनन्द—मण्डलेश्वर! यह कथा यहीं समाप्त हो, क्योंकि इससे ब्राह्मणश्रेष्ठ मैत्रेय बहुत लज्जा (सङ्कोच) का अनुभव कर रहे हैं।

विजयवर्मा—फल की इच्छा के बिना किसी का उपकार करना सज्जनों का एक अलौकिक कार्य है और ऐसे उपकार को (दूसरों के समक्ष) प्रकाशित न करने का जो कार्य है उस पर तो ब्रह्मा भी स्तब्ध हो जाते हैं॥८॥

सुनन्द— देव!

इस लोक में ऐसे पाँच-छः लोग ही हैं, जो किसी का उपकार करने हेतु प्रवृत्त होते हैं और जो अपने ऊपर किये गये उपकार का स्मरण रखते हैं, ऐसे कृतज्ञों से तो यह पृथ्वी प्रायः शून्य ही है॥९॥

विजयवर्मा—क्यों इस प्रकार कतिपय दुर्जनों से पीड़ित होकर तुम उपकार्य श्रेष्ठजनों का भी तिरस्कार कर रहे हो?

हीन कोटि के लोग अनुरूप प्रत्युपकार की भावना से दूसरों का उपकार किया करते हैं, परन्तु महापुरुष दूसरों के प्रति किये गये उपकार का स्मरण करते हुए भी उसको भूल जाते हैं— प्रत्युपकार की अपेक्षा नहीं रखते॥१०॥

(पुनर्मैत्रेयं प्रति सविनयम्)

एते ते मदवारिशीकरभरस्यूताम्बराः सिन्धुरा-
स्तेऽप्येते प्रलयप्रभञ्जनजवप्रत्यर्थिनो वाजिनः।

श्रीरेषा शरदिन्दुदर्पजयिनी सोऽहं कृतज्ञस्ततो,
येनार्थस्तममीषु यूयमचिराद् गृहणीत किं शङ्कया? ॥११॥

मैत्रेयः— द्विजातिरहमनहो गजवाजिप्रभृतीनां सम्पत्तीनाम्, तदिदानीमिद-
मेवाभ्यर्थये।

विजयवर्मा— (ससम्भ्रमम्) किं तत् ?

मैत्रेयः— परममित्रं मित्रानन्दनामानं वणिजं सिंहलाभ्यन्तरे क्वचिदपि
गवेषयित्वा मम सङ्कटयत।

विजयवर्मा— एतावतोऽप्यर्थस्य का नाम प्रार्थना? कोऽत्र भोः ?

(प्रविश्य)

पुरुषः— एषोऽस्मि।

(पुनः विनयपूर्वक मैत्रेय से)

ये मदजल के कणों से आकाश को व्याप्त (सिक्त) कर देने वाले हाथी हैं, ये प्रलयङ्करी आँधी के वेग से प्रतिस्पर्धा करने वाले घोड़े हैं, शरत्कालीन चन्द्रमा के सौन्दर्याभिमान को जीतने वाली यह लक्ष्मी (वैभव) है और आपका कृतज्ञ मैं हूँ। तो इनमें से जो वस्तु आपकी अभीष्ट हो, उसको आप निःसङ्कोच शीघ्र ग्रहण कर लें। ॥११॥

मैत्रेय—मुझ ब्राह्मण को इन हाथी-घोड़े जैसी सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं, इस समय तो मैं बस यही प्रार्थना करता हूँ कि —

विजयवर्मा—(शीघ्रतापूर्वक) वह क्या?

मैत्रेय—मेरे परममित्र मित्रानन्द नामक वणिक् को सिंहलद्वीप के अन्दर कहीं से भी खोजकर मुझसे मिलवा दीजिए।

विजयवर्मा—यह भी कोई प्रार्थना है! अरे! यहाँ कौन है?

(प्रवेश कर)

पुरुष—मैं हूँ।

विजयवर्मा— अरे तरल ! समादिश मन्त्रिणं यथा मित्रानन्दनामानं वणिजं
क्वचिदपि सिंहलाभ्यन्तरे गवेषयित्वा विज्ञपय।

(पुरुषो निष्क्रान्तः।)

विजयवर्मा— (विमृश्य) कोऽत्र भोः?

(प्रविश्य)

कञ्चुकी— एसो ग्हि।

(एषोऽस्मि)

विजयवर्मा—कञ्चुकिन्! वत्सां सुमित्रां कन्यकान्तःपुरादाकारय।

(कञ्चुकी निष्क्रान्तः।)

(प्रविश्य सुमित्रा सविनयं प्रणमति।)

विजयवर्मा— आर्य मैत्रेय ! इयमस्माभिर्विजययात्रागतैः प्रतिपन्थिनगराद्
बन्दीकृत्य समात्- भ्रातृका वणिक्पुत्री समानीता। लज्जा- विनयादिभिश्च कुल-
पुत्रिकोचितैर्गुणैरावर्जितैर्दृष्टा च स्वपुत्रीनिर्विशेषेण गौरवविशेषेण। तदनुगृहणीत

विजयवर्मा—अरे तरल! मन्त्री को आदेश दो कि मित्रानन्द नामक वणिक्
को सिंहलद्वीप में कहीं से भी खोजकर मुझे सूचित करे।

(पुरुष निकल जाता है।)

विजयवर्मा—(सोचकर) अरे! यहाँ कौन है ?

(प्रवेश कर)

कञ्चुकी— मैं हूँ।

विजयवर्मा—कञ्चुकिन्! पुत्री सुमित्रा को कन्यान्तःपुर से बुलाओ।

(कञ्चुकी निकल जाता है।)

(प्रवेश करके सुमित्रा विनयपूर्वक प्रणाम करती है।)

विजयवर्मा—आर्य मैत्रेय! विजययात्रा पर निकले हुए हम लोग शत्रु के नगर
से इस वणिक्पुत्री सुमित्रा को माता और भाई के साथ बन्दी बनाकर ले आये। लज्जा,
विनय आदि कुलपुत्रिकोचित गुणों से युक्त इसको मैं अपनी पुत्री के समान समझता

१. विजययात्रां गतैः ख।

माम्। असञ्जातपाणिग्रहणामेतां परिणयत यूयम्।

मैत्रेयः— महामण्डलेश्वर ! द्विजातिरहमनया सह विजातिः, मित्रानन्दः
पुनः सजातिः, यदि सङ्घटिष्यते तदा परिणोष्यते।

विजयवर्मा— यदभिरुचितं भवतां तदस्तु। (पुनरञ्जलिं बद्ध्वा)

आक्रुष्टाः स्थ यदुच्चकैः कटुवचोवीचीभिरत्युद्भटं

बद्ध्वा यत् प्रहताः स्थ यष्टिभिरटच्चारार्थिभिः पत्तिभिः।

अस्माभिः प्रतिपक्षरोषपरुषैः क्षिप्ताः स्थ यन्निष्ठुरं,

तद् यूयं सहत क्रुधो हि भिदुराः पाल्येषु पुण्यात्मनाम्॥१२॥

(मैत्रेयः सलज्जमधोमुखो भवति।)

विजयवर्मा— (विमृश्य) सुनन्द ! कोऽयं यक्षाधिराजस्योपहारविधे-
र्विलम्बः?

हूँ। अतः आप इस अविवाहिता से विवाह करके मुझको अनुगृहीत करें।

मैत्रेय— महामण्डलेश्वर! मैं ब्राह्मण तो इसके लिए विजातीय हूँ, किन्तु मित्रानन्द सजातीय है। यदि वह मिलेगा तो इससे विवाह कर लेगा।

विजयवर्मा— आपकी जैसी इच्छा वैसा ही हो। (पुनः हाथ जोड़कर)

तीक्ष्ण कटु अपशब्दों द्वारा जो आपको अपमानित किया गया था, उच्चकों को पकड़ने वाले सैनिकों ने जो बाँधकर छड़ी से आपकी पिटाई की थी और शत्रु समझकर क्रोधावेश के कारण मैंने जो आपको निर्दयतापूर्वक धकियाया था, उन सबके लिए आप क्षमा करें, क्योंकि अपने अधीनस्थजनों के प्रति महापुरुषों का क्रोध तो क्षणभङ्गुर ही होता है॥१२॥

(मैत्रेय लज्जा से मुख नीचे झुका लेता है।)

विजयवर्मा— (सोचकर) सुनन्द! यक्षाधिराज के बलिकर्म में यह विलम्ब क्यों?

१. °त्यद्भुतं क।

२. विधिविलम्बः क।

(प्रविश्य)

कपिञ्जलः— देव ! सर्वमपि प्रगुणं पूजोपकरणम्, किमुतोपहारपुरुषः
कथमपि न सङ्घटितः।

विजयवर्मा— (सविषादम्) सुनन्द ! असम्पादितोपयाचितानामस्माकमुप-
स्पर्शनमात्रमप्यनुचितम्। तद् विचिन्तय कमप्युपहारसङ्घटनोपायम्।

मैत्रेयः—

पुण्यप्रसूतजन्मानश्चण्डालव्यालसङ्गताम्।

मांस-रक्तमयीं देवाः किं बलिं स्पृहयालवः?।।१३।

ततः कोऽयं भवद्भिर्विचारबन्ध्यमनसां दुर्मेघसां पन्थाः समुपास्यते?
अपि च—

अक्रूरं श्रेयसे कर्म क्रूरमश्रेयसे पुनः।

इति सिद्धे पथि क्रूरं श्रेयसे स्पृशतां भ्रमः।।१४।।

(प्रवेश कर)

कपिञ्जल—देव! पूजासामग्री तैयार है, किन्तु बलिपुरुष तो किसी भी प्रकार नहीं मिला।

विजयवर्मा—(दुःखपूर्वक) सुनन्द! मनौती पूरा किये विना तो हमारा आचमन करना भी अनुचित है, अतः बलिपुरुष को प्राप्त करने का कोई उपाय सोचो।

मैत्रेय—

पुण्यबल से उत्पन्न देवगण क्या चाण्डाल और हिंस्र पशुओं के योग्य मांस-रक्तमयी बलि को ग्रहण करने के इच्छुक होते हैं? (अर्थात् नहीं होते।)।।१३।।

तो क्यों आप लोग विचारशून्य मन वाले मूर्खों के पथ का अनुसरण कर रहे हैं? और भी—

दूसरों को कष्ट न देने वाले सत्कर्म का फल शुभ होता है, जबकि दूसरों को कष्ट देने वाले असत्कर्म का फल अशुभ होता है। इस तरह की व्यवस्था के शास्त्रसिद्ध होने पर भी जो लोग शुभ फल की प्राप्ति हेतु असत्कर्म करते हैं वे भ्रान्त हैं।।१४।।

१. सङ्घटते ख।

विजयवर्मा— कूरशास्त्रप्रतारितैरस्माभिर्योऽयमेकः प्रतिज्ञातो विधिः स प्रमाणमस्तु । अतः परं पुनर्यदभिधास्यते तदनुष्ठास्यामः ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारः— देव ! अमात्येन कामरतिना प्रेषितः पुरुषो द्वारि वर्तते।

विजयवर्मा— (साशङ्कम्) शीघ्रं प्रवेश्यताम्।

(प्रविश्य पुरुषः प्रणम्य लेखमर्पयति।)

सुनन्दः— (गृहीत्वा वाचयति।) स्वस्ति, रङ्गशालातो महामात्यः श्रीकामरति-मण्डलेश्वरं विजयवर्माणं सम्बोध्य कार्यमादिशति । यथा—यदि मदीयं कमप्युपकारलेशं स्मरसि तदा यदयमषडक्षीणं किमपि विज्ञपयति सन्देशहरो दुर्मुखस्तदचिरादतिनिगूढमादधीथा इति।

विजयवर्मा— दुर्मुख! कथय किमपि कर्णे यदमात्यः समादिष्टवान्।

(दुर्मुख उत्थाय कर्णे—एवमेव।)

विजयवर्मा— कामरतिवचसा वयमात्मीयं शिरोऽपि समर्पयामः।

विजयवर्मा—कूर शास्त्र द्वारा भ्रमित हमारे द्वारा प्रतिज्ञात यह एक (बलि) कार्य सम्पन्न हो जाये। इसके बाद आप जो कहेंगे हम वही करेंगे।

(प्रवेश कर)

प्रतीहार—देव! अमात्य कामरति द्वारा भेजा गया पुरुष द्वार पर खड़ा है।

विजयवर्मा—(आशङ्कापूर्वक) शीघ्र अन्दर ले आओ।

(पुरुष प्रवेश कर और प्रणाम करके लेख प्रदान करता है।)

सुनन्द—(लेकर पढ़ता है) कल्याण हो, रङ्गशाला नगरी से महामात्य श्री कामरति मण्डलेश्वर विजयवर्मा को सम्बोधित कर आदेश देते हैं कि 'यदि मेरे थोड़े से भी उपकार का स्मरण करते हो, तो यह सन्देशवाहक दुर्मुख जो कुछ भी गुप्तनिर्देश देता है उसका शीघ्र गुप्तरिति से पालन करो।'

विजयवर्मा—दुर्मुख! अमात्य ने जो कुछ भी कहा है, वह मेरे कान में कहो।

(दुर्मुख उठकर कान में— ऐसा ही कहा है।)

विजयवर्मा—कामरति के कहने पर तो मैं अपना शिर भी समर्पित कर दूँ,

एतावतः पुनरर्थस्य का कथा? किञ्च—

एकेनैवाधुनाऽस्माकमेतेन ननु कर्मणा।

मन्त्री यक्षश्च सन्तोषपरिपोषं प्रयास्यति।।१५।।

(पुनः कपिञ्जलं प्रति) यदयं दुर्मुखः समर्पयति तत् सुगृहीतं कुरु। (पुनः कर्णे—एवमेव।)

(सदुर्मुखः कपिञ्जलो निष्क्रान्तः।)

(नेपथ्ये)

भो भो उपवनचारिणः! सम्पन्ने निःशेषेऽप्युपहारोपकरणे किमद्यापि विलम्बते रत्नाकराधिनाथः?

विजयवर्मा—(आकर्ण्य मैत्रेयं प्रति) यूयमागच्छत यक्षायतनम्। समीपीभूय कारयतोपहारकर्म।

(सर्वे यक्षायतनमुपसर्पन्ति।)

विजयवर्मा—(मैत्रेयं प्रति) सोऽयमस्माकं कुलदेवता लोहितपाणिर्य-

इतनी छोटी सी बात का तो कहना ही क्या ?

अब हमारे इस एक ही बलिकर्म से मन्त्री कामरति और यक्षाधिनाथ दोनों पूर्ण सन्तुष्ट हो जायेंगे।।१५।।

(पुनः कपिञ्जल से) यह दुर्मुख जो दे रहा है, वह ग्रहण कर लो। (पुनः कान में— ऐसा ही करो)

(दुर्मुख के साथ कपिञ्जल भी निकल जाता है।)

(नेपथ्य में)

हे हे उपवन में विचरण करने वालो! बलि की समस्त सामग्री उपस्थित हो जाने पर भी रत्नाकरनरेश अब विलम्ब क्यों कर रहे हैं?

विजयवर्मा—(सुनकर मैत्रेय से) आप भी यक्षमन्दिर में चलिए और पास जाकर बलिकर्म सम्पन्न करवाइये।

(सभी यक्षमन्दिर की तरफ जाते हैं।)

विजयवर्मा—(मैत्रेय से) यही हैं हमारे कुलदेवता यक्षराज लोहितपाणि।

क्षाधिनाथः। (पुनः सखेदम्) कथं बहलधूपधूमध्यामलितलोचनैरस्माभिर्यक्षा-
धिनाथस्यापि मुखाम्भोजं न विलोक्यते?

(प्रविश्य)

कपिञ्जलः— देव! सोऽयं नियन्त्रितभुजः कृताशेषवध्यमण्डनः पुरो
लोहितपाणेरुपहारपुरुषः।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः पुरुषः।)

विजयवर्मा— (मैत्रेयं प्रति) भगवन्! कुरुतास्योपहारपुरुषस्य प्रोङ्क्षणादिकां
क्रियाम्। प्रयच्छत पारलौकिकं कमप्युपदेशम्।

(मैत्रेयः प्रोङ्क्षणादिकं कृत्वा धूपपात्रं दर्शयति।)

विजयवर्मा— कोऽत्र भोः कृपाणधरेषु?

(प्रविश्य पुरुषः कृपाणमर्पयति।)

विजयवर्मा— (कृपाणमाकृष्य) रे ! स्मर किमपि दैवतम्। अस्तमयति
परमतस्ते जीवितकथा।

(पुनः खेदसहित) अगरबत्ती के अत्यधिक धुएँ से रुआँसे नेत्रों से हम लोगों को
यक्षराज का मुखकमल भी दिखलाई क्यों नहीं पड़ रहा है?

(प्रवेश करके)

कपिञ्जलः— देव! यक्षराज लोहितपाणि का बँधी हुई भुजाओं वाला तथा
बलि हेतु पूर्णरूपेण सुसज्जित बलिपुरुष आपके सम्मुख उपस्थित है।

(तत्पश्चात् यथानिर्दिष्ट पुरुष प्रवेश करता है।)

विजयवर्मा—(मैत्रेय से) भगवन्! इस बलिपुरुष की अभिमन्त्रणादि क्रिया
सम्पन्न करें और कोई परलोकोपयोगी उपदेश दें।

(मैत्रेय अभिमन्त्रणादि कार्य सम्पन्न करके धूपपात्र दिखाता है।)

विजयवर्मा— अरे! यहाँ कोई कृपाणधारी है?

(पुरुष प्रवेश करके कृपाण देता है।)

विजयवर्मा—(तलवार तानकर) रे पुरुष! किसी देवता का स्मरण कर।
क्योंकि अब तेरी जीवनलीला समाप्त हो रही है।

१-२. प्रेक्षणादिकां क।

मैत्रेयः— भो उपहारपुरुष !

दैवादुपस्थिते मृत्यौ क्षीणसर्वप्रतिक्रिये।

तथा कथञ्चिन्मर्तव्यं न मर्तव्यं यथा पुनः।।१६।।

अहं च सर्वदर्शनानां क्रियासु कुशलो विशेषतश्चार्हतीषु, तत् कथय किं ते कुलम्?, किं ते कुलक्रमागतं दैवतम्? येन तदुचितां पारलौकिकीं क्रियां कारयामि। अपि च—

बन्धुभिर्विप्रयुक्तोऽहमिति चेतसि मा कृथाः।

बन्धूनां सम्प्रयोगेऽपि त्वमेव सहसे व्यथाः।।१७।।

पुरुषः— (मन्दस्वरम्) आर्य! गाढबन्धनपीडया शुष्कतालुमूलः स्तोकमपि वक्तुमहं न प्रभविष्णुः, ततः शिथिलय मे मनाग् बन्धनानि, पायय शिशिरस्य वारिणश्चलुकमेकम्।

विजयवर्मा— कोऽत्र भोः?

मैत्रेय— हे बलिपुरुष!

संयोगवश मृत्यु के उपस्थित हो जाने पर अर्थात् मृत्यु के अवश्यम्भावी होने पर यदि मरना भी पड़े तो अंग चेष्टादि सभी क्रिया-प्रतिक्रियाओं का त्याग करके अर्थात् पादोपगमन समाधि-मरण द्वारा इस प्रकार मरना चाहिए, जिससे उसको पुनः न मरना पड़े, अर्थात् मुक्ति मिल जाय।।१६।।

मैं सभी विद्याओं, विशेषतः आर्हत् अर्थात् जैन परम्परा के विधि-विधानों में कुशल हूँ, तो बतलाओ तुम किस कुल के हो? तुम्हारे कुलदेवता कौन हैं? जिससे कि मैं उसके अनुरूप पारलौकिकी क्रिया सम्पन्न करा सकूँ। और भी—

मैं अपने सगे-सम्बन्धियों से बिछुड़ रहा हूँ, ऐसा विचार तुम मन में मत करना, क्योंकि बन्धुजनों का संयोग होने पर भी दुःख तो तुमको ही सहना होगा।।१७।।

पुरुष—(धीमी आवाज में) आर्य! अत्यन्त कसे हुए बन्धन की पीड़ा से सूखे हुए कण्ठ वाला (प्यास से व्याकुल) मैं कुछ भी बोल पाने में समर्थ नहीं हूँ, अतः बन्धनों को कुछ ढीला कीजिए और एक चुल्लू ठण्डा पानी पिलाइये।

विजयवर्मा—अरे! यहाँ कौन है?

(प्रविश्य)

पुरुषः— एषोऽस्मि।

विजयवर्मा— अरे मदनक! शिथिलय बन्धनानि, पायय शिशिरमम्भः।

(मदनकस्तथा करोति।)

पुरुषः— आर्य! कौतुकमङ्गलनगरजन्मा वैदेशिकोऽहम्।

मैत्रेयः— (स्वगतम्) कौतुकमङ्गलनगरजन्मेत्यस्ति नः पक्षपातः। भवतु तावत्। (प्रकाशम्) कौतुकमङ्गलनगरे कस्ते पिता?, किं ते मित्रम्?

पुरुषः— (निःश्वस्य) आर्य! कृतमिदानीमेतस्मिन्स्त्रिलोकीत्रपाप्ररोहैकहेतौ पशुसमुचिते मरणपर्वणि कुलाचारपवित्राणां पितृ-मित्राणां प्रकाशनेन, न मे पितरौ, न मे मित्राणि, किमुताहमेकाकी गगनगर्भादिव पतितः।

मैत्रेयः— (स्वगतम्) महाकुलप्रसूतः खल्वयम्, महासत्त्वप्रकृतिश्च कोऽपि। (पुनर्विमृश्य) अपि नामायं कोऽपि जिनदासवर्गीणः सम्भवेत्, ततो

(प्रवेश कर)

पुरुष— मैं हूँ।

विजयवर्मा—अरे मदनक! इसके बन्धनों को ढीला करो तथा इसको ठण्डा पानी पिलाओ।

(मदनक वैसा ही करता है।)

पुरुष—आर्य! मैं कौतुकमङ्गल नामक नगर में उत्पन्न परदेशी हूँ।

मैत्रेय—(मन में) कौतुकमङ्गल नगर में जन्म हुआ है— यह सुनकर इसके प्रति मेरी सहानुभूति हो रही है। अच्छा! (प्रकट रूप से) कौतुकमङ्गलनगर में तुम्हारे पिता कौन हैं? कौन वहाँ तुम्हारा मित्र है?

पुरुष—(निःश्वास लेकर) आर्य! तीनों लोकों में लज्जास्पद इस पशुतुल्य मृत्यु के अवसर पर पवित्र कुल और आचरण वाले माता-पिता और मित्रों का नाम लेना व्यर्थ है। न मेरे माता-पिता हैं, न मित्र है। क्या कहूँ? मैं तो मानो अकेले ही आकाश के गर्भ से पृथ्वी पर गिरा हूँ।

मैत्रेय—(मन में) यह अवश्य ही कोई महान्-कुल में उत्पन्न और अत्यन्त सात्त्विक स्वभाव वाला व्यक्ति है। (पुनः सोचकर) सम्भव है कि यह

निर्बन्धेन पृच्छामि। (प्रकाशम्) महापुरुष! यत एव ते पवित्राणि पितृ-मित्राणि तत एवाकाण्डोपस्थिते मरणविड्वरे समुद्घोषणीयानि।

पुरुषः— आर्य! जिनदासो मे पिता, मित्रं मकरन्दो मैत्रेयश्च।

मैत्रेयः— हा भ्रातः मित्रवत्सल मित्रानन्द! कामिमां दुःस्थामवस्थामधिगतोऽसि?

(इत्यभिदधानः पुरुषं परिरभ्य तारस्वरं प्रलपति।)

सर्वे— (ससम्भ्रमम्) आर्य आर्य मैत्रेय! किमिदम्?

मैत्रेयः— मण्डलाधिनाथ! स एष मित्रं मे मित्रानन्दो यदर्थं यूयमभ्यर्थिताः।

विजयवर्मा—(ससम्भ्रमं कृपाणेन स्वयं बन्धनानि त्रोटयति। पुनः सविनयम्) महापुरुष! क्षमस्व यदस्माभिरज्ञातसम्बन्धैरपराद्धम्।

पुरुषः— ममैव कर्माण्यत्रापराध्यन्ति, न यूयम्।

जिनदास से सम्बन्धित कोई हो, अतः इससे आग्रहपूर्वक पूछता हूँ। (प्रकरूप से) महापुरुष! क्योंकि तुम्हारे माता-पिता और मित्रगण श्रेष्ठ हैं, इसीलिए अप्रत्याशितरूप से उपस्थित मृत्युरूप महान् सङ्कट के समय तुमको उनका नाम अवश्य लेना चाहिए।

पुरुष—आर्य! जिनदास मेरे पिता और मकरन्द एवं मैत्रेय मेरे मित्र हैं।

मैत्रेय—हाय भाई मित्रवत्सल मित्रानन्द! किस दुर्दशा को प्राप्त हो चुके हो!

(यह कहता हुआ पुरुष को गले लगाकर जोर-जोर से रोता है।)

सभी—(घबड़ाहट सहित) आर्य आर्य मैत्रेय! यह क्या है?

मैत्रेय—मण्डलाधिनाथ! यही है वो मेरा मित्र मित्रानन्द, जिसको खोजने के लिए मैंने आपसे प्रार्थना की थी।

विजयवर्मा—(शीघ्रतापूर्वक स्वयं तलवार से बन्धनों को काटता है। पुनः विनयपूर्वक) महापुरुष! मैत्रेय के साथ आपके सम्बन्ध से अनभिज्ञ हम लोगों द्वारा जो अपराध हुआ, उसको क्षमा करें।

पुरुष—यह मेरे कर्मों का ही दोष है, आपका नहीं।

विजयवर्मा—

अपराधोऽत्र नास्माकं न च प्राचीनकर्मणाम्।

किन्तु कामरतेस्तस्य पापतन्त्रस्य मन्त्रिणः॥१८॥

(पुनः सविनयम्) युष्मदर्थमियं विधृता मैत्रेयेण वत्सा सुमित्रा, तदेनामस्मिन् पवित्रे पर्वणि परिणयत यूयम्।

मित्रानन्दः— अस्ति पुराऽपि मे कौमुदी नाम पत्नी, तदेतां मदीयो भ्राता मकरन्दः परिणोष्यते।

(नेपथ्ये सकोलाहलम्)

सेनान्यः! सप्तकृत्वः स्थगयत निखिलान् हास्तिकैर्गोपुराग्रान्,

अश्वीयानश्ववाराः! प्रगुणयत बहिः सौप्तिकोपप्लवाय।

पादातान्यावृणुध्वं वपुरतिविकटैः कङ्कटैर्युद्धकेलि-

श्रद्धावर्धिष्णुदर्पास्तरलयत भटाः! संयुगं सांयुगीनाः॥१९॥

विजयवर्मा—

इसमें न तो हमारा अपराध है और न ही आपके पूर्वसम्पादित कर्मों का, अपितु इसमें तो उस पापाचारी मन्त्री कामरति का अपराध है॥१८॥

(पुनः विनयपूर्वक) पुत्री सुमित्रा को मैत्रेय ने आपके लिए ही रखा है। अतः इस शुभ अवसर पर आप इसका पाणिग्रहण करें।

मित्रानन्द—मेरी तो पहले से ही कौमुदी नाम की पत्नी है, तो इससे मेरा भाई मकरन्द विवाह करेगा।

(नेपथ्य में कोलाहलपूर्वक)

हे सेनानायको! नगर के सभी द्वारों पर गजसैनिकों द्वारा सातगुना पहरा लगा दो; हे अश्वारोही वीरो! शत्रुओं के रात में होने वाले आक्रमण का सामना करने के लिए अश्वसैनिकों को नगर के बाहर नियुक्त करो; हे पैदल सैनिको! अपने शरीर को अत्यन्त दृढ़ कवचों से ढक लो और हे युद्धक्रीड़ा में श्रद्धा के कारण सतत बढ़ने वाले पराक्रम से सम्पन्न युद्धकुशल शूरवीरो! युद्धभूमि की ओर कूच करो॥१९॥

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः)

मङ्गलकः— देव! विपक्षावस्कन्दः प्राप्तः।

विजयवर्मा— (ससम्भ्रमम्) व्रजत स्वं स्वं स्थानं यूयम्। वयमिदानीमभ्यमित्री-
यतामाधास्यामः।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

।। षष्ठोऽङ्कः समाप्तः।।

(प्रवेश करके घबड़ाया हुआ)

मङ्गलक— देव! शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया है।

विजयवर्मा— (व्याकुल होकर) तुम सभी अपने-अपने स्थान पर जाओ।
इस समय हम शत्रुओं का सामना करेंगे।।

(इसके पश्चात् सभी निकल जाते हैं।)

।। षष्ठ अङ्क समाप्त।।

॥अथ सप्तमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति सर्पकर्णः।)

छित्त्वा कण्ठमकुण्ठखड्गलतया चाटूनि सन्तन्वतो,
लोकात् क्लेशशतार्जितं च सुलसद्धान्ध्यान्धिलैर्गृह्यते।
प्राणानां च पणेन तस्य निभृतं भोगः सदा सर्वतः,
साशङ्कैः स्वपरोपतापजनीं धिक् तस्कराणां स्थितिम्॥ १॥

(पुनर्विमृश्य) आदिष्टोऽस्मि पल्लीपतिना सार्थस्य वा पान्थस्य वा कस्यापि गवेषणाय, तदहमेतं न्यग्रोधमारुह्य विलोकयामि। (तथा कृत्वा विलोक्य च) कथमयं दवीयसि प्रदेशे महान् सार्थः समेति? (पुनरन्यतोऽवलोक्य सहर्षम्) कथमेतानि कियन्त्यपि स्त्रीप्रायाणि मानुषाणि पल्लेः परिसरवर्तीन्येव? तदुत्तीर्य निपुणमवलोकयामि। (इत्युत्तरणं नाटयति।)

सप्तम अङ्क

(तत्पश्चात् सर्पकर्ण प्रवेश करता है।)

सर्पकर्ण—(खिन्नतापूर्वक)

धिक्कार है चोरों के स्वयं और दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाले जीवन को! ये चोर चापलूसी करते हुए अत्यधिक लोभ से अन्धे होने के कारण अपने अचूक तलवार से लोगों की गर्दन काटकर उनके द्वारा नाना कष्ट सहकर अर्जित धन का अपहरण कर लेते और सर्वदा सब तरफ से भय की आशङ्का से युक्त होते हुए भी अपने प्राणों की बाजी लगाकर उस अपहृत धन का गुप्तरूपेण उपभोग करते हैं॥१॥

(पुनः सोचकर) पल्लीपति (बस्ती के मुखिया) ने किसी व्यापारी या पथिक को खोजने का आदेश दिया है, अतः मैं इस बरगद के वृक्ष पर चढ़कर देखता हूँ। (वैसा करके और देखकर) क्या यह कहीं दूर से कोई बड़ा सार्थ (व्यापारियों का दल) आ रहा है? (पुनः दूसरी तरफ देखकर हर्ष से) क्या स्त्रियों जैसे प्रतीत हो रहे कुछ लोग बस्ती की सीमा के भीतर ही हैं? तो उतरकर ठीक से देखता हूँ। (यह कहकर उतरने का अभिनय करता है।)

१. न्यग्रोधमधिरूह ख।

(ततः प्रविशति कौमुदी, सुमित्रा, स्कन्धकृतबालका वृद्धा, मूर्धकृतकरण्डकः स्थविरश्च।)

कौमुदी— अणान्तरं कित्तिआइं पि दिवसाइं अम्हे अमच्चस्स गेहे वसिआइं।

(अनन्तरं कियन्त्यपि दिवसानि वयम् अमात्यस्य गेहे उषिताः।)

सुमित्रा— तदो तदो?

(ततस्ततः?)

कौमुदी— अन्नया निसीढसमये केणावि पओअणेण कत्थ वि अमच्चेण मिन्नाणंदो पेसिदो।

(अन्यदा निशीथसमये केनापि प्रयोजनेन कुत्रापि अमात्येन मित्राणन्दः प्रेषितः।)

वृद्धा— (सत्वरम्) तदो तदो?

(ततस्ततः?)

कौमुदी— मह उवरिं अणुरायं जाणिय अमच्चस्स भारिआए एदं थविरं सहायं दाऊण करंडयं च समप्पिअ पभाए अहं पि नीहारिदा।

(भ्रमोपरि अनुरागं ज्ञात्वा अमात्यस्य भार्यया एतं स्थविरं सहायं दत्त्वा करण्डकं च समर्प्य प्रभातेऽहमपि निष्कासिता।)

(तत्पश्चात् कौमुदी, सुमित्रा, कन्धे पर बालक को बैठाई हुई वृद्धा एवं सिर पर टोकरी रखे हुए एक वृद्ध पुरुष प्रवेश करते हैं।)

कौमुदी—उसके पश्चात् हम लोग कई दिनों तक अमात्य के घर में रहे।

सुमित्रा—उसके पश्चात् ?

कौमुदी—एक रात मन्त्री ने किसी कार्यवश मित्रानन्द को कहीं भेज दिया।

वृद्धा—(शीघ्रतापूर्वक) फिर उसके पश्चात् ?

कौमुदी— मेरे प्रति (मन्त्री) के अनुराग को जानकर अमात्य की पत्नी ने इस वृद्ध को साथ करके और टोकरी देकर मुझे भी प्रातःकाल घर से निकाल दिया।

स्थविरः— वत्से ! सपत्नीसम्भावनया त्वममात्यपत्न्या निष्कासिताऽसि।

कौमुदी— कमेण च मग्गे भमंती इ^१आणिं तुम्हाणं सत्थे मिलिदा।

(क्रमेण च मार्गे भ्राम्यन्ती इदानीं युष्माकं सार्थे मिलिता।)

वृद्धा— वत्से! दिट्ठिया, चिट्ठिदि दे पई मित्ताणंदो रयणायरउरे। एसा वि मह पुत्ती सुमित्ता तुह पइणो मित्तस्स मयरंदस्स रयणायरहाहिवइणा परिणेदुं पडिवादिदा वट्ठिदि।

(वत्से ! दिष्ट्या, तिष्ठति ते पतिर्मित्रानन्दो रत्नाकरपुरे। एषाऽपि मम पुत्री सुमित्रा तव पत्युर्मित्रस्य मकरन्दस्य रत्नाकराधिपतिना परिणेतुं प्रतिपादिता वर्तते।)

स्थविरः— (सभयम्)

एषा व्याघ्रमुखी पल्लिरावासो वज्रवर्मणः।

चौरेभ्यो भयमेतस्यां राज्ञोऽपि किमु मादृशाम्?।।२।।

स्थविर—पुत्रि! सौत होने की शङ्कावश अमात्य की पत्नी ने तुमको निकाल दिया।

कौमुदी—और उसके बाद मार्ग में भटकती हुई मैं अब तुमसे मिल गयी।

वृद्धा—पुत्रि! सौभाग्यवश तुम्हारा पति मित्रानन्द इस समय रत्नाकरपुर में ही है और रत्नाकरनरेश ने मेरी पुत्री सुमित्रा का विवाह भी तुम्हारे पति के मित्र मकरन्द के साथ करना निश्चित कर दिया है।

स्थविर—(भयपूर्वक)

यह व्याघ्रमुखी नाम की बस्ती (पल्ली) चोरों के मुखिया वज्रवर्मा का निवास स्थान है। इस में चोरों से राजा को भी भय लगता है, तो हम जैसे (साधारण लोगों) का कहना ही क्या।।२।।

१. इयाणिं ख।

२. मेत्तस्स ख।

ततः सर्वाभिरपि सर्वतो दत्तदृष्टिभिः पिहितनेपथ्याभिर्वाचयमाभिश्च
त्वरिततरं गन्तव्यम्।

(सर्वाः सभयं परिक्रामन्ति।)

बालकः— अम्ब! बुभुक्खिदो म्हि।

(अम्ब ! बुभुक्षितोऽस्मि।)

(वृद्धा हस्तसंज्ञया बालकं वारयति।)

बालकः— (तारस्वरं प्रलपन्) अम्ब ! अपूपं देहि मे।

स्थविरः— (सरोषं यष्टिमुद्यम्य) अरे! तिष्ठ, मा रोदीः, अन्यथा कर्णा-
वुत्पाटयिष्यामि।

(बालकः सभयमास्ते।)

सर्पकर्णः— यथाऽयं भारभुग्नकन्धरः शनैःप्रचारी स्थविरस्तथा जाने
सद्रविणोऽयं सार्थः। भवतु। स्थविरं पृच्छामि। (उच्चैःस्वरम्) आर्य! क्व
प्रस्थितोऽसि?

अतः सभी लोग सब तरफ ध्यान से देखते हुए छिपकर चुपचाप यहाँ से
शीघ्र भाग चलें।

(सभी भयपूर्वक घूमते हैं।)

बालक—माँ! मुझे भूख लगी है।

(वृद्धा हाथ के इशारे से बालक को मना करती है।)

बालक—(जोर से रोते हुए) माँ! मुझे मालपुआ (पूड़ा) दो।

स्थविर—(क्रोधपूर्वक छड़ी उठाकर) अरे! चुप रहो, मत रोओ, अन्यथा
कान उखाड़ लूँगा।

(बालक डर से शान्त हो जाता है।)

सर्पकर्ण—जिस प्रकार यह वृद्ध भार से कन्धा झुकाकर धीरे-धीरे चल रहा
है, उससे प्रतीत होता है कि इस व्यापारी के पास (प्रचुर) धन है। अच्छा! इस
वृद्ध से पूछता हूँ। (तेज आवाज में) आर्य! आप कहाँ जा रहे हैं?

स्थविरः— (स्वगतम्) यथाऽयं तरलदृष्टिस्तथा जाने चौरप्रणिधिः।
(प्रकाशं साक्षेपम्) किं तेऽस्मद्मनचिन्तया? व्रज यत्र चलितोऽसि।

सर्पकर्णः— नूनमथं मां ज्ञातवान्। भवतु। पल्लीपतये गत्वा विज्ञपयामि।
(इति विचिन्त्य शनैः शनैर्निष्क्रान्तः।)

स्थविरः— यदि मां तस्करा बन्धन्ति वा व्यापादयन्ति वा तदा बालकं
गृहीत्वा सर्वाभिरपि पलायितव्यम्।

(नेपथ्ये)

धलेध ले! धलेध, मालेध ले! मालेध, वेढेध ले! वेढेध।

(धरत रे! धरत, मारयत रे! मारयत, वेष्टयत रे! वेष्टयत।)

स्थविरः— हा! हताः स्मः। कथं तस्कराः समापतन्ति?

(वृद्धा अधः परिधानाञ्चलेन बालकं पिदधाति।)

(कौमुदी-सुमित्रे नेपथ्यानि पटावरणेन गोपयतः।)

(ततः प्रविशति पल्लीपतिर्यमदण्ड-पिङ्गलक-सर्पकर्णादिकश्च परिवारः।)

स्थविर—(मन में) जिस प्रकार इसकी दृष्टि चञ्चल है उससे मुझे लगता है कि यह चोरों का गुप्तचर है। (प्रकट रूप से क्रोधपूर्वक) हम कहीं भी जायँ उससे तुम्हें क्या मतलब? जहाँ से आये हो, वहीं चले जाओ।

सर्पकर्ण—यह अवश्य मुझे पहचान गया है। अच्छा! जाकर पल्लीपति (मुखिया) को सूचना देता हूँ। (यह सोचकर धीरे-धीरे चला जाता है।)

स्थविर—यदि चोर मुझे बाँधते अथवा मार देते हैं, तो तुम सब बालक को लेकर यहाँ से भाग जाना।

(नेपथ्य में)

पकड़ो रे! पकड़ो, मारो रे! मारो, घेर लो रे! घेर लो।

स्थविर—हाय! मारे गये! क्या लुटेरे आ रहे हैं?

(वृद्धा साड़ी के आँचल से बालक को ढँक देती है।)

(कौमुदी और सुमित्रा आभूषणों को वस्त्र के आवरण से छिपा लेती हैं।)

(तत्पश्चात् पल्लीपति और यमदण्ड, पिङ्गलक, सर्पकर्ण आदि अनुचरगण प्रवेश करते हैं)

पल्लीपतिः— (सनिर्वेदम्)

नक्तं दिनं न शयनं, प्रकटा न चर्या,

स्वीरं न चान्न-जल-वस्त्र-कलत्रभोगः।

शङ्कानुजादपि सुतादपि दारतोऽपि,

लोकस्तथापि कुरुते ननु चौर्यवृत्तिम्।।३।।

यमदण्डः— देव!

ऐहिकाऽऽमुष्मिकान् क्लेशान् कुक्षिसौहित्यकाम्यया।

स्वीकुर्वन्नस्ति दुर्मेधाः कोऽन्यस्तस्करतो जनः?।।४।।

(पल्लीपतिः भ्रूसंज्ञया यमदण्डं प्रेरयति।)

यमदण्डः— (कृपाणमुद्यम्य साक्षेपम्) अरे वृद्ध! मुञ्च करण्डकम्।

स्थविरः— (सदैन्यम्) गृहाण करण्डकम्। देहि मे प्राणभिक्षाम्। येनाऽहं
जीवन्नात्मनः कुटुम्बकं पश्यामि।

पल्लीपति— (विरक्तिपूर्वक)

न रात-दिन सोने का अवसर मिलता है, न दिनचर्या नियमित होती है और न ही स्वेच्छया अन्न, जल, वस्त्र और स्त्री का भोग ही होता है, साथ ही भाई, पुत्र और पत्नी ये सभी चरित्र पर सन्देह भी करते हैं, फिर भी व्यक्ति चौरकर्म करता ही है।।३।।

यमदण्ड— देव!

जो अपनी उदरपूर्ति की इच्छा से ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों दुःखों को स्वीकारता है, उस चोर की अपेक्षा अधिक दुर्बुद्धि वाला दूसरा मनुष्य कौन हो सकता है?।।४।।

(पल्लीपति भौह के इशारे से यमदण्ड को प्रेरित करता है।)

यमदण्ड— (तलवार तान कर) अरे वृद्ध! टोकरी छोड़ो।

स्थविर— (दीनतापूर्वक) टोकरी लो और मुझे प्राणदान दो, जिससे मैं जीवित रहते हुए अपने कुटुम्बों को देख सकूँ।

१. कृपाणमुद्दिश्य ख।

(यमदण्डः करण्डकं प्रतिगृह्णाति।)

(सर्वाः प्रतिभयेन वेपन्ते।)

(पिङ्गलकः कौमुदी-सुमित्रयोराभरणानि गृह्णाति।)

पल्लीपतिः— सर्वेषामपि वस्त्राणि रक्षणीयानि।

यमदण्डः— वृद्धे! परिधानाञ्चलेन पिहितं किमिदम्?

वृद्धा— न किं पि।

(न किमपि।)

(बालकः प्रतिभयेन मन्दं मन्दं रोदिति।)

पल्लीपतिः— कथमयं बालकस्वरः? (यमदण्डं प्रति) निरूपय बालको वा बालिका वा?

सर्पकर्णः— देव! बालकोऽयम्।

पल्लीपतिः— वृद्धे! कस्याऽयं तनयः?

(यमदण्ड टोकरी ले लेता है।)

(सभी भय से काँपते हैं।)

(पिङ्गलक कौमुदी और सुमित्रा से आभूषण ले लेता है।)

पल्लीपति— सभी के वस्त्र रख लिये जायँ।

यमदण्ड— वृद्धे! साड़ी के आँचल में छिपा हुआ यह क्या है?

वृद्धा— कुछ भी नहीं।

(बालक भय से धीरे-धीरे रोता है।)

पल्लीपति— क्या यह बच्चे की आवाज है? (यमदण्ड से) देखो यह बालक है या बालिका।

सर्पकर्ण— देव! यह बालक है।

पल्लीपति— वृद्धे! यह किसका पुत्र है?

वृद्धा— (सदैन्यम्) एस मह पुत्तओ, एदाओ दुवे वि मह पुत्तीओ।

(एष मम पुत्रकः। एते द्वे अपि मम पुत्र्यौ।)

पल्लीपतिः— कथं पदाचारया त्वयाऽयमियति वर्त्विनि समानीतः?

वृद्धा— कंधेण आणीदो।

(स्कन्धेन आनीतः।)

पल्लीपतिः— (यमदण्डं प्रति)

निसर्गसौहृदाज्ञातकायवाङ्मनसक्लमाः।

बालाः कथं नु जीवेयुर्न भवेज्जननी यदि?।।५।।

(यमदण्डः बालकं हस्ते गृहीत्वाऽऽकर्षति।)

वृद्धा— पुत्त! पुत्त! मिल्हेहि एदं वरायं।

(पुत्र! पुत्र! मुञ्च एतं वराकम्।)

सुमित्रा—(प्रणम्य पल्लीपतिं प्रति) ताद! अम्हाणं देसभंगेण दूरीभूद-
सयलकुडुंबगाणं एसो चेअ एगो जीविदालंबणं, ता चिह्वदु एस वराओ।

(तात! अस्माकं देशभङ्गेन दूरीभूतसकलकुटुम्बकानामेष एव एको
जीवितालम्बनम्। तत् तिष्ठत्वेष वराकः।)

वृद्धा—(दीनतापूर्वक) यह मेरा पुत्र है। ये दोनों भी मेरी पुत्रियाँ हैं।

पल्लीपति—क्या तुम इसको पैदल ही इतनी दूर ले आयी?

वृद्धा—कन्धे पर बैठाकर लायी हूँ।

पल्लीपति—(यमदण्ड से)

यदि माता न हो तो स्वभाव से ही स्नेही और शारीरिक, वाचिक और मानसिक
पीड़ा को न समझ पाने वाले बालक कैसे जीवित रहे?।।५।।

(यमदण्ड बालक को हाथ से पकड़कर खींचता है।)

वृद्धा—पुत्र! पुत्र! इस बेचारे को छोड़ दो।

सुमित्रा—(प्रणाम करके पल्लीपति से) तात! अपना देश विनष्ट हो जाने
के कारण सभी कुटुम्बजनों से वियुक्त हम लोगों के जीवन का यही एकमात्र आधार
है, अतः इस बेचारे को छोड़ दिया जाय।

पल्लीपतिः— तिष्ठतु, न वयं ग्रहीष्यामः, किन्तु किमप्येतदीयं द्रविणं प्रयच्छ।

स्थविरः— पल्लीश्वर! रत्नाकरभङ्गेन कान्दिशीका युष्मान् शरणमेताः प्रपन्नाः। साम्प्रतमेतासां शम्बलमपि नास्ति। ततः किमेतं बालकं गृहीत्वा करिष्यत? गृहीतोऽप्ययं मातरं विना विपत्स्यते।

यमदण्डः— वयमपि द्रविणं विना विपद्यामहे, ततोऽस्मदीयामपि चिन्तां कामपि कुरु।

पल्लीपतिः— यत्रेयं नवयौवनाञ्चितवपुर्मृगाक्षी सार्थे भवति तत्र शम्बलक-स्याप्यसम्भव इति न मे मनः प्रत्येति।

कौमुदी— संबलयं सव्यं पि तुम्हेहिं गहिदं। अओ वरं सव्वहा किं पि नत्थि।

(शम्बलकं सर्वमपि युष्माभिर्गृहीतम् । अतः परं सर्वथा किमपि नास्ति।)

पल्लीपति— ठीक है, हम नहीं पकड़ेंगे किन्तु इसके लिए हमको कुछ धन दो।

स्थविर— पल्लीश्वर! रत्नाकरदेश के नष्ट हो जाने के कारण भागे हुए ये लोग आपकी शरण में आये हैं। इस समय तो इनके पास मार्गव्यय भी नहीं है। तो इस बालक को पकड़ कर क्या करेंगे? क्योंकि पकड़े जाने पर भी तो यह माता के विना मर ही जायेगा।

यमदण्ड— हम भी तो धन के विना मर जायेंगे, अतः हमारी भी कुछ चिन्ता करो।

पल्लीपति— जहाँ यह नवयौवन से परिपूर्ण लावण्यमयी मृगनयनी (सुन्दरी स्त्री) हो, वहाँ मार्गव्यय भी न हो, यह मेरा मन नहीं मानता।

कौमुदी— सम्पूर्ण मार्गव्यय तो आप लोगों ने ले लिया। अब उससे अतिरिक्त हमारे पास कुछ भी नहीं है।

पल्लीपतिः— अयं ते पिङ्गलः शम्बलं दास्यति। (पुनः साक्षेपं यमदण्डं प्रति) गृहाणैतं बालकम्। अतिकालो भवति। ब्रजामः पल्लिकायाम्।

(यमदण्डः प्रसभं रुदन्तं बालकमाकर्षति।)

(बालकः प्रतिभयेन वृद्धायाः कण्ठमवलम्बते।)

(सर्वास्तारस्वरं रुदन्ति।)

पिङ्गलकः— (वृद्धां यष्टिना प्रणिहत्य) मुञ्च बालकम्, अन्यथा त्वां मारयिष्यामि।

वृद्धा— मारेहि मं, तहावि न मिल्लिस्सं।

(मारय माम्, तथापि न मोक्ष्यामि।)

पल्लीपतिः— (स्वगतम्)

अस्मिन् जगति महत्यपि न वेधसा किमपि वस्तु तद् घटितम्।

अनिमित्तमित्रवृत्तेर्भवति यतो मातुरुपकारः।।६।।

पल्लीपति—यह पिङ्गलक तुम्हें मार्गव्यय देगा। (पुनः क्रोधपूर्वक यमदण्ड से) पकड़ लो इस बालक को। बहुत देर हो रही है, अब हम लोग बस्ती में वापस चलते हैं।

(यमदण्ड रोते हुए बालक को बलात् खींचता है।)

(बालक भय से वृद्धा का गला पकड़ लेता है।)

(सभी जोर-जोर से रोतीं हैं।)

पिङ्गलक—(वृद्धा को छड़ी से मारता हुआ) छोड़ो बालक को, अन्यथा तुमको मार डालूँगा।

वृद्धा—मुझको मार डालो, फिर भी मैं नहीं छोड़ूँगी।

पल्लीपति—(मन ही मन)

अतिविशाल इस संसार में विधाता ने ऐसी किसी वस्तु की रचना नहीं की, जिससे निःस्वार्थ प्रेम करने वाली माता का उपकार हो सके।।६।।

(प्रकाशं सकपटम्) यमदण्ड! यदि न मुञ्चति तदा व्यापादय बालकम्।

(यमदण्डः कृतकं कृपाणेन प्रणिहन्ति।)

(वृद्धा पूत्कुर्वाणा कृपाणघातं शिरसा प्रतीच्छति।)

स्थविरः— (तारस्वरम्) अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्।

सुमित्रा— (यमदण्डं प्रति) भाय! कीस एदं धेरिं मारेसि?

(भ्रातः! कस्मादेतां स्थविरां मारयसि?)

पल्लीपतिः— (सविस्मयम्)

अपत्यजीवितस्यार्थे प्राणानपि जहाति या।

त्यजन्ति तामपि क्रूरा मातरं दारहेतवे।।७।।

(पुनः सकरुणं यमदण्डं प्रति) मुञ्चैनं वराकम्, अन्यतः कुतोऽपि द्रविण-
मपहरिष्यामः।

(प्रकट रूप से कपटपूर्वक) यमदण्ड! यदि नहीं छोड़ती है तो बालक को मार डालो।

(यमदण्ड बालक पर तलवार से प्रहार करता है।)

(वृद्धा चीखती हुई तलवार के प्रहार को अपने शिर पर झेल लेती है।)

स्थविर—(उच्च स्वर में) घोर पाप, घोर पाप!

सुमित्रा—(यमदण्ड से) भाई! क्यों इस वृद्धा को मार रहे हो?

पल्लीपति—(आश्चर्यपूर्वक)

जो सन्तान के जीवन के लिए अपने प्राणों का भी परित्याग कर देती है, उस माता को भी क्रूर सन्तान स्त्री के लिए त्याग देते हैं।।७।।

(पुनः करुणापूर्वक यमदण्ड से) छोड़ दो इस बेचारे को, हम कहीं और से धन चुरा लेंगे।

१. भो ! कीस क।

(प्रविश्य)

पुरुषः— भट्टा! दिद्विया एगो महंतो सत्थो संपत्तो।

(भर्त्तः ! दिद्विया एको महान् सार्थः सम्प्राप्तः।)

पल्लीपतिः— (सहर्षम्) अस्ति किमपि द्रविणम्?

पुरुषः— कणयसंपुडाइयं पहूदं दविणमत्थि।

(कनकसम्पुटादिकं प्रभूतं द्रविणमस्ति।)

पल्लीपतिः— सार्थवाहोऽपि सङ्गहीतः?

पुरुषः— न केवलं संगिहीदो तुम्हाणं पासे आणीदो अत्थि।

(न केवलं संगृहीतो युष्माकं पार्श्वे आनीतोऽस्ति।)

(ततः प्रविशति पदातिना विधृतबाहुः सार्थवाहः।)

पल्लीपतिः— (विलोक्य) यथाऽयं दर्शनीयाकृतिस्तथा जाने महापुरुषः
कोऽपि।

(प्रवेश कर)

पुरुष—स्वामी! सौभाग्य से एक बड़ा (धनवान्) व्यापारी मिला है।

पल्लीपति—उसके पास कुछ धन भी है?।

पुरुष—स्वर्णपेटिका इत्यादि प्रभूत धन है।

पल्लीपति—सार्थवाह भी पकड़ा गया?

पुरुष—न केवल पकड़ा गया, अपितु आपके पास भी ले आया गया है।

(तत्पश्चात् सैनिकों द्वारा पकड़ी हुई भुजाओं वाला व्यापारी प्रवेश करता है।)

पल्लीपति—(देखकर) जिस प्रकार यह देखने में अतिसुन्दर है, उससे कोई महापुरुष प्रतीत होता है।

सुमित्रा— (अपवार्य कौमुदीं प्रति) साहे! सत्यवाहं निरूविअ मे महंतो हरिसपण्भारो वड्ढदि, ता चित्तेहि किं कारणं?

(सखि! सार्थवाहं निरूप्य मे महान् हर्षप्राग्भारो वर्धते, तस्मिन्तय किं कारणम् ?)

कौमुदी— सहि ! ममावि एवं।

(सखि ! ममापि एवम् ।)

पल्लीपतिः— सार्थवाह ! कुतः समागतोऽसि?

सार्थवाहः— साम्प्रतं सुवर्णद्वीपात्।

सुमित्रा— (निरूप्य स्वगतम्)

अरि! गरुअत्तं खंधाणं अररि! वच्छत्थलस्स पिहुलत्तं।

कटरि! थिरत्तं दिट्ठीएँ कटरि! बाहाण दीहत्तं।।८।।

(अरे ! गुरुत्वं स्कन्धयोः अरेरे ! वक्षःस्थलस्य पृथुलत्वम् ।

कटरि ! स्थिरत्वं दृष्ट्याः कटरि ! बाह्वोः दीर्घत्वम् ।।)

पल्लीपतिः— त्वमेकः सार्थाधिपतिः?

सुमित्रा— (दूसरी तरफ मुँह घुमाकर) सखि! सार्थवाह को देखकर मेरी प्रसन्नता अत्यन्त बढ़ती जा रही है, तो तुम सोचो (कि इसका) क्या कारण है?

कौमुदी— सखि! मेरी भी यही स्थिति है।

पल्लीपति— सार्थवाह! कहाँ से आये हो?

सार्थवाह— इस समय सुवर्णद्वीप से।

सुमित्रा— (देखकर मन ही मन)

अरे! इसके कन्धों का गुरुत्व, अरे रे! इसकी छाती की चौड़ाई, हाय रे! इसकी दृष्टि की स्थिरता (गम्भीरता) और हाय रे! इसकी भुजाओं की विशालता।।८।।

पल्लीपति— तुम अकेले ही सार्थवाह हो?

सार्थवाहः— अपरोऽप्यस्ति वेलन्धरपुरनिवासी नरदत्तनामा सार्थाधिपतिः ।

पल्लीपतिः— अरे ! कथं स न सङ्गृहीतः?

पदातिः— सोऽपि सङ्गृहीतः, परं सार्थ एव तिष्ठति।

पल्लीपतिः— अरे पुरुष! गत्वा ब्रूहि कङ्कालकम् यथा—सार्थद्रविणम-
शेषमपि पल्ल्यां प्रवेशय।

(पुरुषो निष्क्रान्तः।)

सार्थवाहः— (दक्षिणाक्षिस्फुरणमभिनीय सहर्षम्) निश्चितमयमस्माकं
तस्करोपद्रवः शुभोदकः। (पुनः सुमित्रां साभिलाषमवलोक्य) अहो!
बाह्यनेपथ्यैरकदर्थितो नेत्रपात्रैकलेहाः कोऽपि चारिमा। यतः—

वक्त्रं चन्द्रविलासि पङ्कजपरीहासक्षमे लोचने,

वर्णः स्वर्णमलङ्करिष्णुरलिनीजिष्णुः कचानां चयः।

वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली,

वाचां मार्दवमुज्ज्वलं युवतिषु स्वाभाविकं मण्डनम्।।१।।

सार्थवाह—वेलन्धरपुरनिवासी नरदत्त नामक एक अन्य सार्थवाह भी है।

पल्लीपति—अरे! क्या वह नहीं पकड़ा गया?

सैनिक—वह भी पकड़ा गया और दूसरे के साथ ही है।

पल्लीपति—अरे पुरुष! जाकर कङ्काल से कहो कि सार्थवाह का समस्त
धन पल्ली में ले आये।

(पुरुष निकल जाता है।)

सार्थवाह—(दायीं आँख के फड़कने का अभिनय करके) चोरों का यह उपद्रव
हमारे लिए अवश्य ही मङ्गलकारी है। (पुनः सुमित्रा को आसक्तिपूर्वक देखकर) अहो!

(इस सुमित्रा का) मुख चन्द्रमा के समान कान्तिमान् है, आँखें कमल के
सौन्दर्य का उपहास करने में सक्षम हैं, शरीर का रङ्ग स्वर्ण को भी अलङ्कृत करने
वाला और केशपाश की शोभा भ्रमरपंक्ति की शोभा को भी जीतने वाली है,
स्तनयुगल हाथी के कपोलों की शोभा का हरण करने वाले, विशाल नितम्बस्थली
और वाणी में सरलता है— इस प्रकार युवतियों में उपलब्ध सभी नैसर्गिक गुण
इस सुमित्रा में सुलभ हैं।।१।।

पल्लीपतिः— सार्थवाह! किमभिधानोऽसि?

सार्थवाहः— मकरन्दाभिधानोऽस्मि।

सुमित्रा— (सवितर्कमात्मगतम्) किं एसो सो मयरंदो जस्स अहं रयणायराहिवइणा परिणेदुं पडिवादिदा ? (पुनः सस्पृहम्) जइ एसो च्चिअ सो ता कदत्थो मे जम्पो।

(किम् एष स मकरन्दः ? यस्याहं रत्नाकराधिपतिना परिणेतुं प्रतिपादिता। यदि एष एव स तत् कृतार्थं मे जन्म।)

कौमुदी— (सविमर्शमात्मगतम्) किं एसो सो मह भत्तुणो मित्तं मयरंदो? दिट्ठिया, दिट्ठिआ, जीविद म्हि भत्तुणो मित्तस्स दंसणेण।

(किम् एष स मम भर्तुर्मित्रं मकरन्दः? दिष्ट्या, दिष्ट्या, जीविताऽस्मि भर्तुर्मित्रस्य दर्शनेन।)

सार्थवाहः— (सुमित्रां निरूप्य स्वगतम्)

अस्यां जगन्नयनकैरवचन्द्रिकायां,

सत्यामपि त्रिभुवनस्थितिसूत्रधारः।

लक्ष्यां स यादसि रतिं हरिरादधानः,

प्रेम्णो विचारविमुखां दिशति प्रशस्तिम्॥१०॥

पल्लीपति— सार्थवाह! तुम्हारा नाम क्या है?

सार्थवाह— मेरा नाम मकरन्द है।

सुमित्रा— (अनुमान लगाती हुई मन ही मन) क्या यह वही मकरन्द है जिसके साथ रत्नाकरनरेश ने मेरे विवाह का निश्चय किया है? (पुनः रुचिपूर्वक) यदि यह वही है, तब तो मेरा जन्म सफल हो गया।

कौमुदी— (सोचती हुई मन ही मन) क्या यह मेरे पति का मित्र वही मकरन्द है?

सार्थवाह— (सुमित्रा को देखकर मन ही मन)

जगत् की नेत्ररूपिणी कुमुदिनी के लिए चन्द्रिका के समान इस (सुन्दरी) के होते हुए भी समुद्रजाता लक्ष्मी में ही अनुरक्त रहने वाले तीनों लोकों के सञ्चालक भगवान् विष्णु प्रेम की विचारविमुखता (अन्धत्व) को द्योतित कर रहे हैं॥१०॥

पल्लीपतिः— अरे सर्पकर्ण! गत्वा ब्रूहि कङ्कालकम्। यथा—नरदत्तः
सुखं धरणीयः, अपरथा लक्ष्मीपतिर्युवराजः क्रोत्स्यति।

(सर्पकर्णो निष्क्रान्तः।)

(प्रविश्य)

पुरुषः— भट्टा! लच्छीवङ्गणा पेसिदो पुरिसो तुम्हाणं दंसणमिच्छदि।

(भर्तः ! लक्ष्मीपतिना प्रेषितः पुरुषः युष्माकं दर्शनमिच्छति।)

पल्लीपतिः— (साशङ्कम्) शीघ्रमानय।

(पुरुषो निष्क्रान्तः।)

प्रविश्य लेखहारकः लेखमर्पयति।)

पल्लीपतिः— (उत्थाय गृहीत्वा वाचयति) स्वस्ति, वेलन्धरनगराद्
युवराजो लक्ष्मीपतिर्व्याघ्रमुख्यां वज्रवर्माणं सम्बोध्य कार्यमादिशति। यथा—
अस्माकं परमोपकारी मित्रानन्दनामा वणिक् कौमुदीनाम्न्या कान्तया समं
परिभ्राम्यन् क्वचिदपि यदि भवत्यदातिभिः प्राप्यते तदाऽस्मभ्यमुपनेय इति।

पल्लीपति—अरे सर्पकर्ण! जाकर कङ्कालक से कहो कि नरदत्त को सुखपूर्वक
रखे, अन्यथा युवराज लक्ष्मीपति क्रोधित हो जायेगे।

(सर्पकर्ण निकल जाता है।)

(प्रवेश कर)

पुरुष—स्वामी! लक्ष्मीपति द्वारा प्रेषित दूत आपके दर्शन करना चाहता है।

पल्लीपति—(आशङ्कापूर्वक) शीघ्र ले आओ।

(पुरुष निकल जाता है।)

(दूत प्रवेश करके लेख अर्पित करता है।)

पल्लीपति—(उठकर लेकर पढ़ता है) कल्याण हो, वेलन्धरनगर से युवराज
लक्ष्मीपति व्याघ्रमुखी में वज्रवर्मा को सम्बोधित करके आदेश देते हैं कि हमारा परम
उपकारी मित्रानन्द नामक व्यापारी कौमुदी नामक पत्नी के साथ घूमता हुआ यदि
कहीं आपके सैनिकों को मिल जाय, तो उसको हमारे पास ले आइये। (पुनः सोचकर

(पुनर्विमृश्य स्वगतम्) सम्भवति तयोर्मध्यात् किमप्येषु मानुषेषु। (प्रकाशं सुमित्रां प्रति) भद्रे! किमभिधानाऽसि?

सुमित्रा— अहं सुमित्राभिहाणा।

(अहं सुमित्राभिधाना।)

पल्लीपतिः— (कौमुदीं प्रति) तव किमभिधानम्?

स्थविरः— राजपुत्र! अस्याः कौमुदीत्यभिधानम्।

पल्लीपतिः— (स्वगतम्) संवदति भार्यानामधेयम्। (प्रकाशम्) किमभिधानः पतिरस्याः?

स्थविरः— एतद्भर्ता मित्रानन्दाभिधानः।

पल्लीपतिः— (स्वगतम्) कथमस्माभिरात्मीयानामेव मानुषाणामुपद्रवः कुतः?

सार्थवाहः— भद्रे! कुतस्थस्ते भर्ता?

मन में) हो सकता है कि पकड़े गये व्यक्तियों में उन दोनों में से कोई एक हो। (स्पष्टतः सुमित्रा से) भद्रे! तुम्हारा नाम क्या है?

सुमित्रा— मेरा नाम सुमित्रा है।

पल्लीपति— (कौमुदी से) तुम्हारा नाम क्या है?

स्थविर— राजपुत्र! इसका नाम कौमुदी है।

पल्लीपति— (मन में) पत्नी का नाम तो यथानिर्दिष्ट ही बतला रहा है। (स्पष्ट रूप में) इसके पति का क्या नाम है?

स्थविर— इसके पति का नाम मित्रानन्द है।

पल्लीपति— (मन में) क्या हम लोगों ने आत्मीयजनों के साथ ही दुर्व्यवहार किया?

सार्थवाह— भद्रे! तुम्हारा पति कहाँ का निवासी है?

कौमुदी— कोउंगमंगलनिवासी मे भत्ता।

(कौतुकमङ्गलनिवासी मे भर्ता।)

सार्थवाहः— मैत्रेयो जीवति?

कौमुदी— (स्वगतम्) जहा एस सव्वं पि जाणेदि तहा नूणमेस मयरंदो।
(प्रकाशम्) जीवदि।

(यथा एष सर्वमपि जानाति तथा नूनमेष मकरन्दः। जीवति।)

सार्थवाहः— राजपुत्र! इयं मे भ्रातृजाया। स खलु मित्रानन्दो मे परमं मित्रम्।

कौमुदी— (पल्लीपतिं प्रति) एसा मे बहिणिआ सुमिन्ना मिन्नाणंदतोसिदेण रयणायरहिक्खणा एदस्स अदिट्ठस्स वि परिणेतुं पडिवादिदा वट्टिदि।

(एषा मे भगिनी सुमित्रा मित्रानन्दतोषितेन रत्नाकराधिपतिना एतस्याद्दृष्ट-
स्यापि परिणेतुं प्रतिपादिता वर्तते।)

पल्लीपतिः— अयमस्माकं तर्हि जामाता। विवाहमङ्गलमध्यस्याः स्वदुहितु-
रस्माभिराधेयम्। (पुनर्लेखवाहकं प्रति) भद्र! ब्रज त्वम्। विज्ञपय युवराजाय।

कौमुदी— मेरे पति कौतुकमङ्गल नामक नगर के निवासी हैं।

सार्थवाह— मैत्रेय जीवित है?

कौमुदी— (मन में) जिस प्रकार यह सभी बातें जानता है उससे स्पष्ट है कि यह अवश्य मकरन्द ही है। (प्रकटरूप से) जीवित है।

सार्थवाह— राजपुत्र! यह मेरी भ्रातृजाया है और वह मित्रानन्द तो मेरा परममित्र है।

कौमुदी— (पल्लीपति से) यह मेरी बहन सुमित्रा है जिसका विवाह मित्रानन्द से प्रसन्न हुए रत्नाकरनरेश (विजयवर्मा) ने इस अपरिचित (मकरन्द) के साथ करने का निश्चय किया है।

पल्लीपति— तब तो यह हमारा जामाता हुआ। अपनी इस पुत्री का शुभविवाह भी हमको ही करना चाहिए। (पुनः दूत से) भद्र! तुम जाओ और युवराज से कहो

यथा— प्राप्तानि कियन्त्यपि मानुषाणि, तानि प्रेषयिष्यामः। वयमपि
विवाहमङ्गलमाधातुं पल्लीमधितिष्ठामः॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

॥सप्तमोऽङ्कः समाप्तः॥

कि कुछ लोग पकड़े गये हैं, उनको हम भेजेगे। अब हम भी विवाह सम्पन्न कराने
हेतु पल्ली जा रहे हैं।

(सभी निकल जाते हैं।)

॥सप्तम अङ्क समाप्त॥

॥अथ अष्टमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति मकरन्दः, कौमुदी, सुमित्रा च।)

मकरन्दः— (विमृश्य) कोऽत्र भोः?

(प्रविश्य)

पुरुषः— एषो चिष्टामि। आदिशेदु शस्तवाहे।

(एष तिष्ठामि। आदिशतु सार्थवाहः।)

मकरन्दः— अरे मागध! इदानीं परिणतवया वर्तते दिवसः। ततो ब्रूहि गत्वा नरदत्तम् यथा—यावद् वयमेकचक्राया नगर्याश्चैत्य-प्रासाद-प्राकारा-ऽऽरामरामणीयकं कौमुदी-सुमित्रयोरादर्शयामस्तावत् त्वया सार्थरक्षायां प्रयत्नो विधेयः, स्थविरश्च शम्बलं किमपि दत्त्वा रङ्गशालां प्रति प्रतिनिवर्तनीयः।

(मागधो निष्क्रान्तः।)

मकरन्दः— (विमृश्य) आर्ये कौमुदि! कुलक्रमेणैवायं वज्रवर्मा शबरः,

॥ अष्टम अङ्क ॥

(तत्पश्चात् मकरन्द, कौमुदी और सुमित्रा प्रवेश करते हैं।)

मकरन्द—(सोचकर) अरे! यहाँ कौन है?

(प्रवेश कर)

पुरुष—मैं हूँ। सार्थवाह! आदेश दें।

मकरन्द—अरे मागध! अब दिन ढल चुका है, अतः नरदत्त से जाकर कहो 'जब तक मैं कौमुदी एवं सुमित्रा को एकचक्रा नगरी के रमणीय मन्दिरों, भवनों, भित्तियों एवं उद्यानों के दर्शन कराता हूँ तब तक तुम सार्थ (व्यापारी दल) की सुरक्षा की व्यवस्था करो और स्थविर को कुछ मार्गव्यय देकर रङ्गशाला वापस भेज दो।'

(मागध निकल जाता है।)

मकरन्द—(सोचकर) आर्ये कौमुदि! यह वज्रवर्मा केवल जन्म से ही शबर (भील) है, अपने पवित्र आचरण से तो यह साधुओं का भी अतिक्रमण कर रहा

१. एसो चिष्टामि। आदिशेदु सत्यवाहे क।

पवित्रेण चरित्रेण पुनः साधूनप्यतिशेते। इयन्तं हि द्रविणसमूहमुपनतं परित्यक्तुं
साधवोऽपि तपस्विनः, किमुत परजीवितापहारिणः पक्कणचारिणः?

द्रविणं मुञ्चमानश्च हस्तमोचनपर्वणि।

औचितीं निष्णाबुद्धित्वमात्मनः प्रथयत्ययम्।।१।।

(विमृश्य) प्रिये सुमित्रे! मातरं भ्रातरं च ते स्वनगरं प्रति प्रस्थापयन्
वज्रवर्मा परं पुण्यमर्जितवान्।

कौमुदी— सहि सुमित्ते! कथं ते पिउहरं?

(सखि सुमित्रे ! कुत्र ते पितृगृहम्?)

सुमित्रा— अलयउरनिवासिणो धनदेवस्स सत्थवाहस्स अहं धूआ
विजयवम्मणा वंदिग्गाहेण आणीदा।

(अचलपुरनिवासिनो धनदेवस्य सार्थवाहस्याहं पुत्री विजयवर्मणा
बन्दिग्गाहेणाऽऽनीता।)

मकरन्दः— (पुरोऽवलोक्य साशङ्कम्)

है। क्योंकि, इतनी अधिक मात्रा में प्राप्त धनसमूह के परित्याग के प्रति तो साधुजन
भी अनासक्त (असमर्थ) हो जाते हैं, फिर दूसरों का जीवन हरने वाले भील (वज्रवर्मा)
का तो कहना ही क्या?

अपने हाथों से इस धनसमूह के अपहरण का सुअवसर सुलभ होने पर भी
इसका परित्याग करने वाला यह (वज्रवर्मा) अपने आचरण के औचित्य और
बुद्धिवैशद्य को प्रकट कर रहा है।।१।।

(सोचकर) प्रिये सुमित्रे! तुम्हारे माता और भाई को अपने नगर वापस भेजकर
वज्रवर्मा ने बहुत पुण्य अर्जित किया है।

कौमुदी— सखि सुमित्रे! तुम्हारा पितृगृह कहाँ है?

सुमित्रा— मैं अचलपुरवासी सार्थवाह धनदेव की पुत्री हूँ और विजयवर्मा
मुझे बन्दी बनाकर यहाँ ले आया है।

मकरन्द— (सामने देखकर आशङ्कापूर्वक)

चैत्यानि ध्वजचुम्बिताम्बरतलान्यश्रेभमुच्छृङ्खलं,
 हर्म्याण्यद्भुतवैभवानि, विपणिः पण्यैरगण्यैर्घना।
 सञ्चारस्तु न चत्वरे न च गृहे स्त्रौणस्य पौंसस्य च,
 शङ्का-त्रास-वितर्क-विस्मयकरः कोऽयं प्रकारः पुरः? ॥ २॥

कौमुदी— (सभयविस्मयम्) अज्ज मयरंद! ता किं नयरस्स मज्झं न पेक्खिदव्वं?

(आर्य मकरन्द ! तावत् किं नगरस्य मध्यं न प्रेक्षितव्यम्?)

मकरन्दः— मध्यमपि विलोकयिष्यामः।

(सर्वे परिक्रामन्ति।)

मकरन्दः— (सभयम्)

स्फुरद् वामं चक्षुः, प्रतिमुहुरिदं सैष भुजगः
 स्फटाटोपी शुष्के विटपिनि विमुञ्चन् विषलवान्।
 खरश्चायं भूम्नाऽभिमुखमतिरुष्टः कटु रटन्,
 पुरस्तात् पश्चाद्वा विपदमतिगुर्वी दिशति नः ॥ ३॥

शङ्का, भय, वितर्क और विस्मयकारी यह कैसा नगर है? इसमें गगनचुम्बी ध्वजों वाले मन्दिर हैं, उच्छृङ्खल प्रकृति के हाथी-घोड़े हैं, अद्भुत वैभवशाली भवन हैं और बाजार असंख्य विक्रेय वस्तुओं से भरा पड़ा है, किन्तु चौराहों पर या घर कहीं पर भी स्त्री-पुरुषों का सञ्चार (गमनागमन) दिखायी नहीं पड़ रहा है ॥ २ ॥

कौमुदी— (भय एवं आश्चर्यपूर्वक) आर्य मकरन्द! तो क्या नगर का मध्य (भीतरी भाग) नहीं देखना चाहिए?

मकरन्द— भीतरी भाग भी देखेंगे।

(सभी घूमते हैं।)

मकरन्द— (भयपूर्वक)

फड़कती हुई बाईं आँख और सूखी डाल पर बारम्बार विषबूंद टपकाता हुआ यह फन फैलाया हुआ भयङ्कर साँप तथा नीचे मुख करके रेंकता हुआ यह गधा सामने या पीछे से आने वाली हमारी महान् विपत्ति की सूचना दे रहे हैं ॥ ३ ॥

सुमित्रा— अज्जउत्त! फलविसंवाईणं कित्तियाणं सउणाणं कन्नं देसि?
(आर्यपुत्र ! फलविसंवादिनां कियतां शकुनानां कर्णं ददासि?)

मकरन्दः— प्रिये!

विसंवदतु वा मा वा शकुनं फलकर्मणि।

तथापि प्रथमं चेतो वैमनस्यमुपाशुनुते।।४।।

आभ्यन्तरं च शकुनं चेत एव, तदेहि देवतायतनमेतदधिरुह्य देवतां
नमस्कुर्मः। उपनता अपि हि विपदः प्रतिरुध्यन्ते देवतादर्शनेन।

(सर्वे देवतायतनमधिरोहन्ति।)

मकरन्दः— कथमयं सकलदेवताधिचक्रवर्ती नाभिसूनुश्चैत्याभ्यन्तरम-
लङ्करोति?

(सर्वे प्रणमन्ति।)

मकरन्दः— (अञ्जलिमाधाय)

सुमित्रा— आर्यपुत्र! विपरीत फल की सूचना देने वाले कितने शकुनों पर
ध्यान देंगे?

मकरन्द— प्रिये!

शकुन फल के विषय में सत्य सूचना दें अथवा न दें किन्तु चित्त में अशान्ति
तो पहले उत्पन्न कर ही देते हैं।।४।।

और भीतरी शकुन तो मन ही होता है, तो आओ इस मन्दिर में प्रवेश कर
देवताओं को प्रणाम करें, क्योंकि देवताओं के दर्शन से सम्मुख उपस्थित विपत्तियाँ
भी दूर हो जाती हैं।

(सभी मन्दिर में प्रवेश करते हैं।)

मकरन्द— ये देवाधिदेव सकल देवों के चक्रवर्ती नाभिपुत्र भगवान् ऋषभदेव
मन्दिर के मध्य भाग को किस प्रकार सुशोभित कर रहे हैं?

(सभी प्रणाम करते हैं।)

मकरन्द— (हाथ जोड़कर)

१. एतदारुह्य क।

भद्राम्भोजमृणालिनी, त्रिभुवनावद्यच्छिदाजाह्ववी,
 लक्ष्मीयन्त्रणशृङ्खला, गुणकलावल्लीसुधासारणिः।
 संसारार्णवनौर्विपत्तिलतिकानिस्त्रिशयष्टिश्रिरं,
 दृष्टिर्नाभिसुतस्य नः प्रथयतु श्रेयांसि तेजांसि च।।५।।

(पुनर्विचिन्त्य) आर्ये कौमुदि! देवतायतनजगत्यां स्थित्वा विलोकयामः
 कस्यापि मानुषस्य सञ्चारम् । (विलोक्य) कथमयमितस्ततो दत्तदृष्टिर्बटुः
 पर्यटन्नवलोक्यते?

(प्रविश्य)

बटुः— स्वस्ति यजमानेभ्यः।

मकरन्दः— बटो! स्पष्टं प्रकटय त्रास-विस्मयकारिणः पुटभेदनस्यास्य
 स्वरूपमिदानीमेव देशान्तरादुपेयुषामस्माकम्।

बटुः— महाभाग! महानयं कथाप्रबन्धः। तमेवं योगीन्द्र एव युष्मभ्यमावेद-
 यितुमलम्भूष्णुः। तदेत यूयम्। पश्यत देवतायतनोपवननिबद्धवासं योगीन्द्रम्।

नाभिपुत्र भगवान् ऋषभदेव के दर्शन, जो कल्याणस्वरूप कमलों के लिए
 सरोवरतुल्य, तीनों लोकों के पाप को नष्ट करने के लिए गङ्गासदृश, लक्ष्मी को
 नियन्त्रित रखने के लिए बेड़ी के समान, गुण और कलाओं के प्रसाररूपी अमृत के
 लिए प्रवाहस्वरूप, संसाररूपी समुद्र को पार करने के लिए नौकासदृश और
 विपत्तिलता के लिए खड्गस्वरूप हैं, हमारे लिए मङ्गलकारक और बलदायक हों।।५।।

(पुनः सोचकर) आर्ये कौमुदि! मन्दिर के परिसर में खड़े होकर हम किसी
 मनुष्य का आना-जाना देखते हैं। (देखकर) क्या इधर-उधर दृष्टि डालता हुआ घूमने
 वाला बटु (बालक) दिखाई पड़ रहा है?

(प्रवेश कर)

बटु— यजमानों का कल्याण हो।

मकरन्द— हे बटु! अभी-अभी परदेश से आये हुए हम लोगों को भय
 और विस्मय उत्पन्न करने वाले इस नगर का स्वरूप साफ-साफ बतलाओ।

बटु— महाभाग! यह बहुत बड़ी कहानी है जिसे योगीन्द्र ही आपको बताने
 में सक्षम हैं। अतः आपलोग आर्ये, मन्दिर के उपवन में निवास करने वाले योगीन्द्र
 से मिलें।

(सर्वे परिक्रामन्ति।)

(ततः प्रविशति कापालिकः।)

कापालिकः— (साश्चर्यम्)

आद्यं यत् किल बीजमन्धतमसक्लिन्नस्य दुःखोदधे-

श्वेतः पर्वणि तत्र कुत्रचिदपि श्लाघ्ये समुत्कण्ठते।

वेषस्त्वेष नरास्थिहार-रशना-ताडङ्क-चूडामणि-

प्रायः शंसति तापसीं स्थितिमहो! रोमाञ्चिताः कौतुकैः॥६॥

बटुः— (उपसृत्य) भगवन्! एष सार्थवाहः प्रणमति।

कापालिकः— (कौमुदीं विलोक्य सहर्षमात्मगतम्)

यन्निमित्तं पुरा भ्राम्यन् क्लेशावेशमशिश्रियम्।

तदेव स्वयमायातमहो! वेधाः प्रियङ्करः॥७॥

(सभी घूमते हैं।)

(तत्पश्चात् कापालिक प्रवेश करता है।)

कापालिक— (आश्चर्यपूर्वक)

जो मेरा मन घने अन्धकार से आच्छन्न दुःखसमुद्र का मूल कारण है, वह (मन) किसी प्रिय (कामवासना को तृप्त करने वाले) अवसर की प्राप्ति-के लिए उत्कण्ठित हो रहा है, किन्तु मानव-अस्थि से निर्मित और हार, करधनी, कुण्डल, चूडामणि आदि वाला यह वेष मेरे तपस्वी होने की स्थिति को द्योतित कर रहा है। अहो! मैं तो कौतूहल से रोमाञ्चित हो गया हूँ॥६॥

बटु— (समीप जाकर) भगवन्! यह सार्थवाह आपको प्रणाम कर रहा है।

कापालिक— (कौमुदी को देखकर हर्षपूर्वक मन ही मन)

अहो! विधाता कितना कृपालु है, क्योंकि पहले जिस वस्तु की प्राप्ति हेतु भटकते हुए मैंने अनेक विषम कष्टों को सहन किया, वही वस्तु (विधाता की कृपा से) स्वयं मेरे सम्मुख उपस्थित हो गयी॥७॥

१. दुःखावधेः क।

(पुनः सादरमिव प्रकाशम्) कोऽत्र भोः?, पाद्यं पाद्यम्, अर्घोऽर्घः।
(पुनर्बटुं प्रति) उपनयाऽऽसनानि।

(बटुस्तथा करोति।)

कापालिकः— सार्थवाह! साम्प्रतं कुतः?

मकरन्दः— साम्प्रतं व्याघ्रमुखीतः।

(कापालिको बटोः कर्णे—एवमेव।)

(बटुः निष्क्रान्तः।)

कापालिकः— (पुनः सस्पृहं कौमुदीमवलोक्य) इयं का?

मकरन्दः— इयं मे भ्रातृजाया।

कापालिकः— पतिरस्याः सार्थमध्ये तिष्ठति?

मकरन्दः— अस्याः पत्युरवस्थानं यूयमेव निरर्गलज्ञानजुषो ज्ञास्यथ।

कापालिकः— इयमपरा का?

(पुनः आदरभाव-सा दिखाते हुए प्रकट रूप से) अरे! यहाँ कौन है? पादोदक लाओ पादोदक, अर्घ लाओ अर्घ। (पुनः बटु से) आसन ले आओ।

(बटु वैसा ही करता है।)

कापालिक— सार्थवाह! इस समय कहाँ से आ रहे हो?

मकरन्द— इस समय व्याघ्रमुखी से आ रहा हूँ।

(कापालिक बटु के कान में—ऐसा है।)

(बटु निकल जाता है।)

कापालिक— (पुनः आसक्तिपूर्वक कौमुदी को देखकर) यह कौन है?

मकरन्द— यह मेरी भ्रातृजाया है।

कापालिक— क्या इसका पति सार्थ के साथ है?

मकरन्द— इसके पति की स्थिति तो निर्विघ्न ज्ञानसम्पन्न आप ही जान सकते हैं।

कापालिक— यह दूसरी कौन है?

मकरन्दः— इयं मे सधर्मचारिणी।

कापालिकः— (कौमुदीमवलोक्य स्वगतम्)

चलकमलविलासाभ्यासिनी नेत्रपत्रे,
दशनवसनभूमिर्बन्धुजीवं दुनोति।
स्मरभरपरिरोहत्याण्डिमागूढरूढ-
द्युतिविजितमृगाङ्गा मोदते गण्डभित्तिः॥८॥

(प्रकाशं मकरन्दं प्रति)

त्वां निध्याय निबद्धवासववपुःस्पर्द्धां, स्फुरद्यौवने
चैते प्रीति-रती इव प्रियतमे देवस्य चेतोभुवः।
स्मृत्वा तस्य कठोरघोरमनसः कृत्यं च पापीयस-
श्रेतो नः प्रतिकम्पते विघटते सन्नस्यति भ्रश्यति॥९॥

मकरन्द— यह मेरी धर्मपत्नी है।

कापालिक— (कौमुदी को देखकर मन ही मन)

इसके दोनों नेत्र चञ्चल कमलों के विलास का अनुकरण करने वाले हैं, इसके दातों का निवासस्थान (अधरोष्ठ) बन्धुजीव (दुपहरिया) नामक पुष्प को भी दुःखी (रक्तिमा से तिरस्कृत) कर रहा है और कामभार से विकसित पीत-धवल रूप में निहित उत्कृष्ट छटा (कान्ति) द्वारा चन्द्रमा को भी जीतने वाले इसके कपोल चित्त को आह्लादित कर रहे हैं॥८॥

(प्रकटरूप में मकरन्द से)

इन्द्र के शरीर से स्पर्द्धा करने वाले (अतिसुन्दर) तुमको और कामदेव की प्रीति एवं रति-इन दो प्रियतमाओं के समान इन दोनों (कौमुदी एवं सुमित्रा) को देखकर और उस अतिकठोरहृदयी और पापी (विधाता) के दुष्कृत्य का स्मरण कर मेरा चित्त काँप रहा है, खण्डित हो रहा है, भयभीत हो रहा है और विचारमूढ़ (भ्रष्ट) भी हो रहा है॥९॥

१. पापान्धसः ख।

२. प्रविकम्पते ख।

मकरन्दः— भगवन्! सर्वं विततमावेदय।

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः पुरुषो युवतिश्च।)

पुरुषः— (सदैन्यम्) भगवन्! परित्रायस्व परित्रायस्व।

युवतिः— भयवं! रक्खेहि मं अणज्जविज्जाहरेण अवहरिज्जंतिं।

(भगवन्! रक्ष मामनार्यविद्याधरेणापह्नियमाणाम् ।)

कापालिकः— मा भैष्टां मा भैष्टाम्, अस्मदभ्यर्णमधिवसतोर्युवयोर्विरञ्चिरपि न प्रभविष्णुः, किमङ्ग! पुनः खेचरखेटः?

पुरुषः— (सकरुणम्) भगवन्! देहि मे प्राणभिक्षाम्।

मकरन्दः— (सभयम्) भगवन्! कुतोऽयमनयोरियान् प्रतिभयाडम्बरः?

कापालिकः— अस्ति नामैको योनिसिद्धः, स च “पक्ष्मलाक्षीलक्ष्मभिरमेत विद्याधरपदकामः” इत्यलीकां पापीयसीं वैदिकीं वाचमाकर्ण्य पृथिव्यास्तरुणं स्त्रेणमपहरति। परदारव्रतं चानुरुन्धानो भर्तारं व्यापाद्य सभर्तुकामभर्तुकां

मकरन्द— भगवन्! सब बातें विस्तार से कहिए।

(घबड़ाये हुए स्त्री एवं पुरुष प्रवेश करके)

पुरुष— (दीनतापूर्वक) भगवन्! रक्षा करें, रक्षा करें।

युवती— भगवन्! मुझको दुष्ट विद्याधर द्वारा अपहृत होने से बचाइये।

कापालिक— मत डरो, मत डरो! मेरे समीप रहते तो विधाता भी तुम दोनों का कुछ नहीं बिगाड़ सकता फिर सामान्य प्राणी क्या है? और उसमें भी यह दुराचारी विद्याधर?

पुरुष— (दीनतापूर्वक) भगवन्! मुझे प्राणदान दीजिए।

मकरन्द— (भयपूर्वक) भगवन्! ये दोनों इतने भयभीत क्यों हैं?

कापालिक— एक सिद्ध है और वह ‘विद्याधर पद-प्राप्ति की कामना करने वाला एक लाख सुन्दरियों के साथ रमण करे’ इस असत्य और पापकारिणी वैदिकी वाणी को सुनकर पृथ्वी की युवतियों का अपहरण करता है और परस्त्रीगमन करता हुआ उनके पति की हत्या कर सधवाओं को भी विधवा बना देता है। इस नगर

करोति। इदं च नगरं तेन दुरात्मना विगतमानुषप्रचारं कृतम्। तवापि वनितानिमित्तं व्यसनं सम्भावयामि।

मकरन्दः— भगवन्! स पुनः किमर्थमिदमनार्थं कर्म समाचरति?

कापालिकः— महाभाग!

परस्य शर्मणः सत्यं प्रत्यूहो हरिणीदृशः।

भवेऽपि तद् यदि क्वापि तदा ता एव हेतवः।।१०।।

अपि च—

ताभ्यः सकर्णः को नाम कामिनीभ्यः पराङ्मुखः?

भूर्भुवःस्वर्विभूतीनां सौभाग्यं यत्प्रसादतः।।११।।

पुरुषः— समादिशन्तु मे कृत्यं योगीन्द्रपादाः।

कापालिकः— सप्तमं दिनमिदं विद्याधराधमाकर्षणविधिमनुतिष्ठता-
मस्माकम्, तदियं ते पत्नी पुरोवर्तिनीनामेकचक्राकामिनीनां मध्ये यामद्वय-

को भी उस दुष्ट ने मानवविहीन कर दिया है। सम्भव है कि तुम्हारे ऊपर भी युवतियों (कौमुदी एवं सुमित्रा) के कारण कोई सङ्कट आ जाये।

मकरन्द— भगवन्! परन्तु वह क्यों यह कुत्सित कर्म करता है?

कापालिक— महाभाग!

मृगनयनियाँ निश्चय ही अलौकिक आनन्द (मोक्ष) की प्रतिबन्धिका हैं, किन्तु यदि कहीं लौकिक आनन्दानुभूति होती है, तो उसका कारण भी वे ही हैं।।१०।।

और भी—

जिन कामिनियों के प्रसाद से भूः, भुवः (अन्तरिक्ष) और स्वः— इन तीनों लोकों के ऐश्वर्य (के अनुभव) का सौभाग्य प्राप्त होता है, उन कामिनियों के विषय में सुनकर भला कौन व्यक्ति उनसे विमुख हो सकता है।।११।।

पुरुष— योगीन्द्र महोदय! मुझे मेरा कार्य बतलायें।

कापालिक— निकृष्ट विद्याधर को पकड़ने की विधि के हमारे अनुष्ठान का यह सातवाँ दिन है, इसलिए तुम्हारी पत्नी सामने स्थित एकचक्रा नगर की

मस्मत्पातालभवनमधिवसतु। एकाकिनः पुनः पुरुषस्थ न समुचितः परदारणां
मध्येऽधिवासः, ततस्त्वं कियन्तमपि कालं क्वचिदपि गत्वाऽतिवाहय।

(पुरुषो निष्क्रान्तः।)

मकरन्दः— (सभयमात्मगतम्) ममापि कौमुदी-सुमित्रे पातालभवनम-
धिवासयितुमुचिते।

कापालिकः— अद्य पुनर्निशीथसमये मन्त्रेण तन्त्रेण च तं दुरात्मानमाकृष्य
मोक्षयिष्यामि निःशेषमप्यपहृतं यौवतम्। (पुनर्विमृश्य) कोऽत्र भोः?

प्रविश्य

तापसः— एषोऽस्मि।

कापालिकः— मायामय! आकारय कियतीरपि युवतीर्येनेयं ताभिर्विदित-
मार्गाभिः सह पातालवेश्मनि प्रविशति।

(तापसो निष्क्रान्तः।)

सुन्दरियों के साथ दो रात हमारे पाताल-भवन में रहे। किन्तु अकेले पुरुष का परस्त्रियों
के बीच रहना उचित नहीं है, अतः तुम कहीं अन्यत्र जाकर कुछ समय व्यतीत
करो।

(पुरुष निकल जाता है।)

मकरन्द— (भयपूर्वक मन ही मन) मेरे लिए भी कौमुदी एवं सुमित्रा को
पाताल-भवन में रखवाना ही उचित है।

कापालिक— आज पुनः रात में मन्त्र एवं तन्त्र से उस दुरात्मा को बुलाकर
सभी अपहृत युवतियों को मुक्त कराऊँगा। (पुनः सोचकर) अरे! यहाँ कौन है?

(प्रवेश कर)

तापस— मैं हूँ।

कापालिक— मायामय! कुछ युवतियों को बुलाओ जिससे उस रास्ते से
परिचित उन युवतियों के साथ यह पाताल-भवन में प्रवेश कर सके।

(तपस्वी निकल जाता है।)

१. मध्ये निवासः क।

(ततः प्रविशन्ति पातालभवनादागमनं नाटयन्त्यः पञ्चषा योषितः।)
(योषितः कापालिकं प्रणम्य कौमुदी-सुमित्रयोः पादौ संस्पृशन्ति।)

कापालिकः— (युवतीं प्रति) ब्रज पातालभवनमेताभिः सह।

मकरन्दः— भगवन्! एते अपि कौमुदी-सुमित्रे यामद्वयं पातालगृहमधि-
तिष्ठताम्।

कापालिकः— (स्वगतम्) प्रियं नः। (प्रकाशं) यद् भवते रोचते तदस्तु।

(सर्वाः पातालभवनप्रवेशं नाटयन्ति।)

कापालिकः— (विमृश्य) सार्थवाह! इदानीं विद्याधराकर्षणहोमसमयः,
ततस्त्वया क्रियमाणं साहायकं किमपि मृगयामहे।

मकरन्दः— प्रकृत्यैवाहमकुतोभयः, ततः स्वैरमादिशत यूयम्।

कापालिकः— त्वया समाकृष्टकरालकरवालेन निष्कम्पमनसा होमशवस्य
पुरतः स्थातव्यम्। होममण्डले च नापरस्य मन्त्रस्य वा दैवतस्य वा कस्यापि

(तत्पश्चात् पाताल-भवन से आने का अभिनय करती हुई पाँच छः युवतियाँ
प्रवेश करती हैं।)

(स्त्रियाँ कापालिक को प्रणाम कर कौमुदी और सुमित्रा का चरण-स्पर्श करती हैं।)

कापालिक— (एक युवती से) इनके साथ पाताल-भवन जावो।

मकरन्द— भगवन्! ये दोनों कौमुदी और सुमित्रा भी दो रात पाताल-भवन
में ही रहें।

कापालिक— (मन में) हमारे लिए तो अच्छा ही है। (प्रकटरूप से) जैसी
आपकी इच्छा हो वही हो।

(सभी पाताल-भवन में प्रवेश का अभिनय करती हैं।)

कापालिक— (सोचकर) सार्थवाह! यह विद्याधराकर्षण यज्ञ के होम का
समय है, अतः तुम्हारी कुछ सहायता चाहता हूँ।

मकरन्द— मैं तो स्वभाव से ही निर्भीक हूँ, अतः आप स्वेच्छया आदेश दें।

कापालिक— तुम अपने ऊपर तानी हुई भयङ्कर तलवार से भयभीत हुए
विना होमशव के सम्मुख स्थित रहना। यतः यज्ञमण्डप में अन्य किसी मन्त्र या
१. °लभुवमे° ख।

प्रवेशः समुचित इति न त्वया प्रतिभयाकुलेन मनसि किमपि ध्यातव्यम्।

मकरन्दः— एवं करिष्यामि।

(प्रविश्य)

मायामयः— भगवन्! सर्वं प्रगुणमेव पूजोपकरणम्। तदागच्छत होमवेदिकाम्।

(सर्वे परिक्रामन्ति।)

मायामयः—

एतानि होमविधये ज्वलितानलानि
कुण्डानि, सैष वनसैरिभपुच्छदीपः।
एतद् वपुश्च पुरुषस्य सलक्षणस्य
निर्जीवमेष पुनरन्त्र-वसोपहारः॥१२॥

कापालिकः— पुरुषस्य वपुः क्व वर्तते?

(प्रविश्य बटुः पुरुषस्य वपुर्मण्डलमध्ये विमुच्य निष्क्रान्तः।)

देवता का प्रवेश उचित नहीं है, अतः तुम भयाकुल होकर मन में किसी का ध्यान भी मत करना।

मकरन्द— ऐसा ही करूँगा।

(प्रवेश कर)

मायामय— भगवन्! समस्त पूजनसामग्री तैयार है। अतः आप यज्ञवेदी में आयें।

(सभी घूमते हैं।)

मायामय— ये हविः प्रदान हेतु प्रज्वलित अग्नि वाले कुण्ड हैं, यह जङ्गली भैंसे की पूँछ का दीपक है, यह रूपवान् पुरुष का निर्जीव शरीर है और यह आँत और चर्बी की बलिसामग्री है॥१२॥

कापालिकः— पुरुष का शरीर कहाँ है?

(प्रवेश करके बटु पुरुष का शरीर यज्ञमण्डप के मध्य में रखकर चला जाता है।)

कापालिकः— (पुरुषवपुषः कुण्डानां च पूजां विधाय मकरन्दं प्रति)

मन्त्रापविन्द्रं यद्येतद् वपुर्भ्राम्यति मण्डले।

तथापि न त्वया स्थानात् कम्पनीयमितस्ततः॥१३॥

मकरन्दः— आवश्यकमेतत्।

कापालिकः— मायामय! उपनय पुरुषवपुषः करवालम्।

(मायामयस्तथा करोति।)

(कापालिकः वसारसोपलिप्तान्यन्त्रखण्डानि जुहोति।)

मकरन्दः—(स्वगतम्) अपि नाम कोऽप्यपायः सम्भवेत्, तदहं परमेष्ठि-
नाम पवित्रं मन्त्रं स्मरामि। (पुनः साशङ्कम्) कथं प्रहसति प्रचलति च पुरुषः?

कापालिकः— (मकरन्दं प्रति) समय इदानीं शवोत्थानस्य, ततस्त्वया
सावधानेन भवितव्यम्।

(पुरुषस्य वपुः करवालमादाय मकरन्दाभिमुखं कतिचित् पदानि दत्त्वा
पुनर्मण्डलमध्ये निपतति।)

कापालिक— (पुरुष-शरीर और हवनकुण्डों की पूजा करके मकरन्द से)
यदि यह अभिमन्त्रित शरीर यज्ञमण्डप में घूमे तब भी तुम अपने स्थान से
इधर-उधर मत हिलना॥१३॥

मकरन्द— मैं ऐसा ही करूँगा।

कापालिक— मायामय! पुरुषशरीर के पास खड्ग ले आओ।

(मायामय वैसा ही करता है।)

(कापालिक चर्बी के रस में लिप्त आँत के टुकड़ों की आहुति देता है।)

मकरन्द— (मन ही मन) हो सकता है कोई अनिष्ट हो जाये, अतः मैं
भगवान् पञ्च-परमेष्ठी के पवित्र नमस्कार मन्त्र का स्मरण करता हूँ। (पुनः
आशङ्कापूर्वक) क्या यह मृत पुरुष हँस और चल रहा है?

कापालिक— (मकरन्द से) अब शव के उठने का समय हो गया है, अतः
तुम सावधान हो जाओ।

(पुरुष का शरीर तलवार लेकर मकरन्द की तरफ कुछ कदम चलकर पुनः
यज्ञमण्डप में गिर पड़ता है।)

कापालिकः— (ससम्भ्रमम्) किमपि दैवतं स्मरन्नसि?

मकरन्दः— न किमपि स्मरामि।

(कापालिकः सविशेषमन्त्रखण्डानि जुहोति।)

(पुनः पुरुष उत्थाय तथैव निपतति।)

कापालिकः— (साक्षेपम्) महाभाग! किमिति कमपि दैवतं स्मृत्वा होमभङ्गं करोषि?

मकरन्दः— सर्वथा नाहं किमपि स्मरामि।

(कापालिकः पुनः साक्षेपं मन्त्रमुच्चारयन्त्रन्त्रखण्डानि जुहोति।)

(पुनः पुरुषवपुर्मकरन्दाभिमुखं गत्वा प्रतिनिवृत्त्य च करवालेन कापालिकमभिहन्ति।)

(कापालिक आक्रन्दमाधाय तिरोधत्ते।)

मकरन्दः— (विलोक्य ससम्भ्रमम्) कथं पतितं पुरुषवपुः?, तिरोहितः

क्वापि कापालिकः? (पुनर्दिशोऽवलोक्य) कथं मायामयादिकः परिवारोऽपि

कापालिक— (घबड़ाकर) किसी देवता का स्मरण कर रहे हो?

मकरन्द— किसी का स्मरण नहीं कर रहा हूँ।

(कापालिक विशेष प्रकार से आँत के टुकड़ों की आहुति देता है।)

(पुरुष पुनः उठकर उसी प्रकार गिर जाता है।)

कापालिक— (क्रोधपूर्वक) महाभाग! क्यों किसी देवता का स्मरण करके यज्ञभङ्ग कर रहे हो?

मकरन्द— मैं वस्तुतः किसी का भी स्मरण नहीं कर रहा हूँ।

(कापालिक पुनः क्रोधपूर्वक मन्त्रोच्चारण करता हुआ आँत के टुकड़ों की आहुति देता है।)

(पुनः पुरुषशरीर मकरन्द की तरफ जाकर और पुनः लौटकर तलवार से कापालिक पर प्रहार करता है।)

(कापालिक चीखकर गायब हो जाता है।)

मकरन्द— (देखकर घबड़ाहट पूर्वक) क्या पुरुषशरीर गिर गया? कापालिक भी कहीं गायब हो गया? (पुनः चारों तरफ देखकर) क्या मायामय आदि

न दृश्यते?। भवतु तावत्, पातालभवनतः कौमुदी-सुमित्रे समाह्वयामि।
(परिक्रम्य सविषादम्) कथं न किमपि पातालभवनं दृश्यते? नूनममुना
कापालिकेन वञ्चितोऽस्मि।

(नेपथ्ये)

मकरन्द! तूर्णमेहि व्रजति गृहीत्वा समग्रमपि सार्थम्।
व्यापाद्य तव पदातीन् नरदत्तः स्वां पुरीमेषः॥१४॥

मकरन्दः— (आकर्ण्य) कथं सार्थेऽप्युपव्रवस्तदहं गत्वा सम्भावयामि।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

॥अष्टमोऽङ्कः समाप्तः॥

अनुचर भी नहीं दीख रहे हैं? अच्छा, पाताल-भवन से कौमुदी और सुमित्रा को बुलाता हूँ। (धूमकर खेदपूर्वक) क्या पाताल-भवन भी कहीं दिखाई नहीं दे रहा है? अवश्य इस कापालिक ने मुझे धोखा दिया है।

(नेपथ्य में)

मकरन्द! शीघ्र आओ। तुम्हारा सम्पूर्ण धन लेकर और सभी सैनिकों को मारकर नरदत्त अपने नगर भाग रहा है॥१४॥

मकरन्द— (सुनकर) क्या धन पर भी सङ्कट आ गया, तो मैं जाकर विचार करता हूँ।।

(सभी निकल जाते हैं।)

॥अष्टम अङ्क समाप्त॥

॥अथ नवमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति युवराजो लक्ष्मीपतिरमात्यश्चारायणश्च।)

युवराजः— (ससम्भ्रमम्) कोऽत्र भोः कञ्चुकिषु?

(प्रविश्य)

कञ्चुकी— एषोऽस्मि।

युवराजः— समादिश अगदङ्कारमात्रेयम्। यथा—देव्या अनङ्गसेनाया वपुषि सावधानेन भाव्यम्।

(कञ्चुकी निष्क्रान्तः।)

(नेपथ्ये)

सरसिजवनमपबन्धं दिशो वितमसो दृशः प्रकटभावाः।

अवतरति नभोमित्रे वसुधायां कस्य नाऽऽनन्दः?।।१।।

चारायणः— देव! शुभोदकं मित्रोदयं मागधः पठितवान्।

नवम अङ्क

(तत्पश्चात् युवराज लक्ष्मीपति और मन्त्री चारायण प्रवेश करते हैं।)

युवराज— (आकुलता से) अरे! यहाँ कोई कञ्चुकी है?

(प्रवेश कर)

कञ्चुकी— मैं हूँ।

युवराज— वैद्य आत्रेय को आदेश दो कि देवी अनङ्गसेना के स्वास्थ्य के प्रति सावधान रहें।

(कञ्चुकी निकल जाता है।)

(नेपथ्य में)

कमलसमूह मुकुलित हो गया है, दिशाएँ अन्धकाररहित हो गयी हैं और आँखों से स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी हैं। इस प्रकार सूर्य के उदित होने पर किसको आनन्दानुभूति नहीं होती, अर्थात् अवश्य होती है।।१।।

चारायण— देव! मागध ने माङ्गलिक सूयोंदय का वर्णन किया है।

युवराजः— अमात्य! मित्रानन्दशब्दयोराकर्णनादुद्वेजिताः स्मः।

पूरुजम्भारिपुरोपमानममरस्तम्बेरमस्पर्धिनो

नागाः, सूर्यतुरङ्गनिर्जयजवैर्विभ्राजिनो वाजिनः।

राज्यश्रीककुदं तदेतदखिलं यन्मन्त्रलीलायितं,

तस्याग्निद्वितयीं शिरस्यवहतो धिङ् नः कृतघ्नानिमान्।। २।।

(पुनर्विमृश्य) अमात्य ! वचस्विनामवाच्यं श्रद्धालूनामश्रद्धेयं महीयसामश्रोत-
व्यमैहिकाऽऽमुष्मिकापायप्रत्यवमर्शबन्ध्यमतिना कामरतिना पश्य कीदृशम-
नुष्ठितम्?

चारायणः— देव! किमनुष्ठितवानमात्यः कामरतिः?

युवराजः— अस्माकं जीवितैकनिदानं मित्रानन्दाभिधानं तत्पत्नी-
मभिलाषुकः कामरतिः 'स्वनगरं प्रति प्रस्थापितो मित्रानन्दः' इति प्रवादं
विधाय विजयवर्मणे व्यापादयितुमुपनीतवान्।

युवराज— अमात्य! मित्र और आनन्द शब्दों को सुनने से मैं व्याकुल हो गया हूँ ।

हम कृतघ्नों को धिक्कार है, क्योंकि हम उस महापुरुष (मित्रानन्द) के दोनों चरण अपने मस्तक पर नहीं रख सके जिसकी सन्मन्त्रणा की ही यह लीला है कि हमारी राजलक्ष्मी इतनी उन्नत है जिससे हमारी राजधानी इन्द्र की नगरी (स्वर्ग की राजधानी अमरावती) के समान (रमणीय) है, हमारे हाथी इन्द्र के गजराज ऐरावत के प्रतिस्पर्धी हैं और हमारे उत्कृष्ट घोड़े वेग में सूर्य के घोड़ों को भी जीतने वाले हैं।। २।।

(पुनः सोचकर) अमात्य! देखो, ऐहिक और पारलौकिक अनिष्ट का विचार कर पाने में असमर्थ बुद्धि वाले कामरति ने वचस्वियों के लिए अवाच्य, श्रद्धालुओं के लिए अश्रद्धेय और महात्माओं के लिए अश्रोतव्य कैसा दुष्कृत्य कर दिया।

चारायण— देव! क्या कर दिया अमात्य कामरति ने?

युवराज— मेरे जीवन के एकमात्र आधार मित्रानन्द को उसकी पत्नी के 'अभिलाषी कामरति द्वारा 'मित्रानन्द को अपने नगर भेज दिया गया' ऐसी अफवाह फैलाकर उसे मरवाने के लिए विजयवर्मा के पास भेज दिया।

चारायणः— देव!

जनुषान्धा न पश्यन्ति भावान् केवलमैहिकान्।

ऐहिकाऽऽमुष्मिकान् कामकामलान्धाः पुनर्जनाः।।३।।

युवराजः— ततः परं च रत्नाकरभङ्गेन तस्य किमपि संवृत्तमिति न जानीमः, तत्पत्नी पुनः कौमुदी व्याघ्रमुख्यां तिष्ठतीत्यस्ति किंवदन्ती।

(प्रविश्य)

प्रतीहारः— देव! देशान्तरतः समायातो नरदत्तः सार्थवाहो युवराजपादान् ब्रह्मभिलषति।

चारायणः— देव! क्रमागतविभूतिर्महानयं नरदत्तः सार्थवाहः, तदमुं महता गौरवेण देवो ब्रह्ममर्हति।

युवराजः— (सादरम्) त्वरिततरं प्रवेशय।

(ततः प्रविशति उपायनीकृतरत्नभृतभाजनहस्तेन पुरुषेणानुगम्यमानो नरदत्तः।)

चारायण— देव!

जन्मान्ध लोग तो केवल ऐहलौकिक कृत्यों का अवलोकन नहीं कर पाते हैं, किन्तु कामान्ध लोग तो ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों कृत्यों का अवलोकन (विचार) करने में असमर्थ होते हैं।।३।।

युवराज— और उसके अतिरिक्त रत्नाकरदेश के नष्ट हो जाने के कारण उसका क्या हुआ यह मुझे ज्ञात नहीं। उसकी पत्नी कौमुदी व्याघ्रमुखी में है, ऐसी जनश्रुति है।

(प्रवेश कर)

प्रतीहार— देव! परदेश से आया हुआ सार्थवाह नरदत्त आपके दर्शन करना चाहता है।

चारायण— देव! यह नरदत्त परम्परा-प्राप्त ऐश्वर्य वाला महान् सार्थवाह है। अतः आप बड़े सम्मान के साथ इससे मिलें।

युवराज— (आरदपूर्वक) अतिशीघ्र अन्दर ले आओ।

(तत्पश्चात् रत्नों से भरा उपहारपात्र हाथ में लिए हुए पुरुष के आगे-आगे नरदत्त प्रवेश करता है।)

(नरदत्त उपायनभाजनमुपनीय प्रणमति।)

युवराजः— (ससम्भ्रमम्) क्षेमं यात्रिकाः! समायाताः स्थ? निरुपद्रवः सर्वोऽपि सार्थलोकः?

नरदत्तः— देवस्य विक्रमबाहोर्युवराजस्य च लक्ष्मीपतेः प्रभावेन।

चारायणः— देव! वेलन्धरमशेषमपि नरदत्तस्य यानपात्रयातायातैः समृद्धवैभवम्।

युवराजः— वेलन्धराभ्यर्णमशेषोऽपि सार्थः प्रविष्टः?

चारायणः— देव! सार्थस्य कियानपि विष्कम्भोऽस्ति। (पुनर्नरदत्तं प्रति) विज्ञपय यथार्थं विष्कम्भस्वरूपं देवाय।

नरदत्तः— (सविनयम्) देव! सुवर्णद्वीपात् प्रतिनिवृत्तस्य ममैकः पटच्चर-वृत्तिर्वणिक्पुत्रः सङ्घटितः। स च मया क्रयकौशलानुरञ्जितेन स्वसार्थे प्रधानः कृतः। स चेदानीं 'मदीयोऽयं सार्थः, न ते किमपि लभ्यमस्ति' इति व्याहरति।

(नरदत्त उपहारपात्र समीप ले जाकर प्रणाम करता है।)

युवराज— (शीघ्रतापूर्वक) यात्रियो! आप कुशलपूर्वक तो आये? क्या सब के सब व्यापारी लोग सकुशल हैं?

नरदत्त— महाराज विक्रमबाहू और युवराज लक्ष्मीपति के प्रभाव (कृपा) से सभी सकुशल हैं।

चारायण— देव! नरदत्त के जहाज के गमनागमन के कारण सम्पूर्ण वेलन्धर नगर ऐश्वर्यशाली हो गया है।

युवराज— क्या सभी सार्थवाह वेलन्धर नगर में प्रविष्ट हो गये?

चारायण— देव! सार्थवाह के नगरप्रवेश के मार्ग में कुछ बाधा है। (पुनः नरदत्त से) युवराज को ठीक-ठीक बतलाओ कि क्या बाधा है?

नरदत्त— (विनयपूर्वक) देव! सुवर्णद्वीप से वापस आते समय मुझे एक लुटेरा व्यापारीपुत्र मिला। उसके क्रय-कौशल से प्रसन्न होकर मैंने उसको अपने दल का नेता बना दिया और अब वह कहता है 'यह समस्त धन मेरा है, तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा'।

युवराजः— अहो! अराजन्वती वसुमती। (पुनर्विमृश्य) अमात्य ! नैकस्य संलापश्रवणेन निर्णयः कर्तुं शक्यते, अतो द्वितीयमपि पृच्छामि।

चारायणः— कोऽत्र भोः अस्मत्परिजनेषु?

(प्रविश्य)

देवशर्मा— एषोऽस्मि।

(चारायणः कर्णे—एवमेव।)

(देवशर्मा निष्क्रान्तः।)

(ततः प्रविशति मकरन्दो देवशर्मा च।)

मकरन्दः— (सविषादमात्मगतम्)

विच्छेदः पितृ-बान्धवैः, प्रवहणस्योदन्वति भ्रंशनं,
प्राणेभ्योऽप्यधिकं प्रियेण विरहो मित्रेण पुण्यात्मना।
कान्ताया नवसङ्गमेऽप्यपहृतिः, सर्वस्वनाशोऽधुना,
नव्यं नव्यमुदेति कन्दलमहो! प्रातीपिके वेधसि।।४।।

युवराज— अहो! पृथ्वी कितनी अराजक हो गयी है? (पुनः सोचकर) अमात्य! केवल एक व्यक्ति की बात सुनकर निर्णय नहीं किया जा सकता, अतः दूसरे से भी पूछता हूँ।

चारायण— अरे! यहाँ हमारा कोई सेवक है?

(प्रवेश कर)

देवशर्मा— मैं हूँ।

(चारायण कान में—ऐसा ही करो)

(देवशर्मा निकल जाता है।)

(तत्पश्चात् मकरन्द और देवशर्मा प्रवेश करते हैं।)

मकरन्द— (विषादपूर्वक मन में)

पहले माता-पिता तथा बन्धुजनों से विच्छेद, समुद्र में जहाज का डूबना, पुनः प्राणों से भी प्रियतर धर्मात्मा मित्र से वियोग, नवमिलन में ही पत्नी का अपहरण और अब सर्वस्वनाश। अहो! भाग्य के प्रतिकूल होने पर नई-नई विपत्तियाँ उपस्थित हो रही हैं।।४।।

खलु कृत्वा नातीतव्यसनशोचनम्।
आजन्म यानि जायन्ते व्यसनानि सहस्रशः।
स्मर्यन्ते तानि चेन्नित्यं कोऽवकाशस्तदा मुदाम्? ॥५॥

भवतु, प्रणमामि।

युवराजः— अये वाणिज्यकारक! किंनिदानोऽयं नरदत्तेन सह विवादः?

मकरन्दः— (सविनयम्) देव ! सुवर्णद्वीपात् प्रतिनिवृत्तस्य ममायं पटच्चरवृत्तिर्नरदत्तः सङ्घटितः। क्रय-विक्रयकौशलानुरञ्जितेन च मया स्वसार्थे प्रधानः कृतः। अयं चेदानीं 'मदीयोऽयं सार्थः, न ते किमपि लभ्यमस्ति' इति व्याहरति।

(युवराजः स्मित्वा चारायणमुखमवलोकयति।)

चारायणः— देव ! क्रमागतोऽयं नरदत्तः, तदस्य सत्येषु नः सम्प्रति प्रतिपत्तिरस्ति, देशान्तरिणः पुनरस्य स्वरूपं नावगच्छामः।

युवराजः— अमात्य!

अथवा अतीतविषयक विपत्तियों के विषय में सोचना व्यर्थ है, क्योंकि जीवनपर्यन्त जो हजारों विपत्तियाँ आती रहती हैं, यदि सदा उन्हीं का स्मरण किया जाय तो जीवन में सुख का अवसर कहाँ? ॥५॥

अच्छा, प्रणाम करता हूँ।

युवराज— अरे व्यापारी! नरदत्त के साथ यह विवाद किस कारण?

मकरन्द— (विनयपूर्वक) देव! सुवर्णद्वीप से वापस आते समय मुझे यह चोर नरदत्त मिला। इसके क्रय-विक्रय के कौशल से प्रसन्न होकर मैंने इसको अपने दल का प्रधान बना दिया और अब यह कहता है 'यह समस्त धन मेरा है, तुम्हें इसमें से कुछ भी नहीं मिलेगा।'

(युवराज मुस्कराकर चारायण का मुँह देखते हैं।)

चारायण— देव! यह नरदत्त खानदानी व्यापारी है, अतः इसकी बात पर मुझे विश्वास है; किन्तु इस परदेशी के स्वरूप को मैं नहीं जानता।

युवराज—अमात्य!

समूलकाषं कषतां द्विषन्महीं,
 शिशून् पितृभ्यां हरतां च निर्दयम्।
 अपक्षपातेन यदर्थनिर्णय-
 स्तदेव धर्मः किमपि क्षमाभुजाम्॥६॥

चारायणः— ततः किम्?

युवराजः—

समानशील-सन्तान-युक्ति-व्यापारयोर्द्वयोः।
 विना विशेषचिह्नेन युक्तो नैकत्र निर्णयः॥७॥

मकरन्दः— देव ! विशेषचिह्नमप्यस्ति।

युवराजः— कोऽवकाशस्तर्हि विवादस्य?

मकरन्दः— देव! सुवर्णोष्णिकासम्पुटानि यानि तानि सर्वाण्यपि मन्नामाङ्कितानि।

युवराजः— देवशर्मन्! ससुवर्णसम्पुटं सुवर्णकारमाकारय।

(देवशर्मा निष्क्रान्तः।)

शत्रु के राज्य को पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट करने वाले और माता-पिता से भी उनके बच्चों का निर्दय होकर (दण्ड देने हेतु) हरण करने वाले राजाओं का यही धर्म है कि वे किसी विवाद का निर्णय विना पक्षपात के करें॥६॥

चारायण— उससे क्या?

युवराज— दोनों का स्वभाव, सन्तान, तर्क और कार्य समान होने के कारण विना किसी विशेष चिह्न के किसी एक के पक्ष में निर्णय करना उचित नहीं है॥७॥

मकरन्द— देव! विशेष चिह्न भी है।

युवराज— तब तो विवाद के लिए अवकाश कहाँ ?

मकरन्द— देव! सोने के ईंटों की जो पेटियाँ हैं, उन सब पर मेरा नाम अङ्कित है।

युवराज— देवशर्मन्! सोने की पेटियों सहित स्वर्णकार को बुलाओ।

(देवशर्मा निकल जाता है।)

(प्रविश्य सुवर्णकारः सम्पुटान्युपनयति।)

युवराजः—(सर्वतोऽवलोक्य) कथं न कुत्राप्यभिधानम्?। (पुनः साक्षेपम्)
अरे ! कोऽयमसत्यालापः?

मकरन्दः— द्वेधा विधाप्य सम्पुटानि मध्यमवलोकयतु देवः।

युवराजः— (तथा कृत्वा मध्यमवलोक्य च सविस्मयम्) कथमुभयतोऽपि
सम्पुटेषु मकरन्दाभिधानम्? (पुनः साक्षेपममात्यं प्रति) क्रमागतस्य
नरदत्तस्थायमीदृशो युष्माकं सत्यप्रत्ययः?

नरदत्तः— (सविनयम्) देव! विज्ञपनीयमस्ति।

युवराजः— (साक्षेपम्) अतः परमपि किमपि विज्ञपनीयमस्ति? भवतु,
विज्ञपय।

नरदत्तः— देव! बाल्ये हि मे पिता विपन्नः। इदानीमहमनुजश्चायं द्वावेव
कुटुम्बे पुरुषौ।

युवराजः— ततः किम्?

(स्वर्णकार प्रवेश करके पेटियों को समीप ले आता है।)

युवराज— (सब तरफ देखकर) क्या कहीं भी नाम नहीं लिखा है? (पुनः
क्रोधपूर्वक) अरे! क्यों असत्य बोल रहे हो?

मकरन्द— आप पेटियों को दो भाग में करके (खोलकर) उनके भीतर देखें।

युवराज— (वैसा करके और बीच में देखकर आश्चर्यपूर्वक) क्या पेटियों
पर दोनों तरफ मकरन्द का नाम लिखा है? (पुनः क्रोधपूर्वक अमात्य से) खानदानी
नरदत्त पर आपको इतना अधिक विश्वास क्यों?

नरदत्त— (विनयपूर्वक) देव! कुछ कहना चाहता हूँ।

युवराज— (क्रोधपूर्वक) अब भी कुछ कहने को बचा है? अच्छा, कहो।

नरदत्त— देव! बाल्यकाल में ही मेरे पिता की मृत्यु हो गयी। इस समय
परिवार में मैं और मेरा अनुज ये दो ही पुरुष हैं।

युवराज— उससे क्या ?

नरदत्तः— अहमपि निरपत्यः, भ्रातैव मे अपत्यम्। तदस्यैव नाम्ना क्रेयं च वस्तु, अयं च मकरन्दाभिधानः। अत्र चार्थेऽमात्यः पौरलोकश्च प्रमाणम्।

चारायणः— देव ! अयमुपायनभाजनवाही भ्राताऽस्य मकरन्दाभिधानः।

युवराजः— कोऽत्र भोः?

(प्रविश्य)

प्रतीहारः— आदिशतु देवः।

युवराजः— कियतोऽपि बणिजः समाह्वय।

(प्रतीहारो निष्क्रान्तः।)

(प्रविश्य कृतोष्णीषा पञ्चषा बणिजः प्रणमन्ति)

युवराजः— तातस्य विक्रमबाहोराज्ञा भवतां यदपक्षपातेन वदत। ततः कथयत को नरदत्तस्य भ्राता? किमभिधानश्च?

नरदत्त— मैं भी निःसन्तान हूँ, भाई ही मेरी सन्तति है, अतः इसी के नाम से वस्तुएँ खरीदता हूँ और इसका ही नाम मकरन्द है। इस विषय में अमात्य और नगरवासी प्रमाण हैं।

चारायण— देव! यह उपहारपात्र लाने वाला ही इसका मकरन्द नामक भाई है।

युवराज— अरे! यहाँ कौन है?

(प्रवेश कर)

प्रतीहार— युवराज आज्ञा दें।

युवराज— कुछ व्यापारियों को बुलाओ।

(प्रतीहार निकल जाता है।)

(पाँच छः पगड़ीधारी व्यापारी प्रवेश करके प्रणाम करते हैं।)

युवराज— पिता विक्रमबाहु की आज्ञा है कि आप सब निष्पक्षभाव से उत्तर दें। अतः आप सब बतलावें कि (यहाँ पर) नरदत्त का भाई कौन है? और उसका क्या नाम है?

वणिजः— (सभयम्) देव ! नरदत्तस्यायं भ्राता मकरन्दाभिधानः।

(युवराजः साटोपं मकरन्दमवलोकयति।)

मकरन्दः— (सदुःखमात्मगतम्)

प्रत्यहं नव्यनव्याभिर्भवन्तीभिर्विपत्तिभिः।

आस्तां नाम परस्तावदात्माऽपि मम भग्नवान्।।८।।

(प्रकाशम्) देव ! अपरमप्यभिज्ञानमस्ति- इला मे गोत्रदेवता, तदभिधानेना-
परमिलादत्त इत्यपि नाम। ततः कियन्त्यपि सम्पुटानीलादत्तनामाङ्कितानि,
ततस्तान्यपि विलोकयतु देवः।

युवराजः— (तथा कृत्वा) कथमेतानि इलादत्तनामाङ्कितानि? (पुनः सरोषं
नरदत्तं प्रति) अतः परमपि विज्ञप्यमवशिष्यते किमपि?

नरदत्तः— (सावष्टम्भम्) अवशिष्यते।

युवराजः— (विहस्य) त्वरिततरं विज्ञपय।

व्यापारीगण— (भयपूर्वक) देव! यह नरदत्त का मकरन्द नामक भाई है।

(युवराज क्रोधपूर्वक मकरन्द को देखता है।)

मकरन्द— (दुःखपूर्वक मन में)

प्रतिदिन उपस्थित होती हुई नई-नई विपत्तियों से मेरे शरीर का तो कहना
ही क्या? मेरा हृदय भी खण्डित हो गया है।।८।।

(प्रकटरूप में) देव! एक अन्य पहचान भी है— इला मेरी कुलदेवता है
और उन्हीं के नाम से मेरा दूसरा नाम इलादत्त भी है। अतः कुछ पेटियों पर इलादत्त
भी लिखा हुआ है, आप उन पेटियों को भी देखें।

युवराज— (वैसा करके) क्या इन पर इलादत्त नाम लिखा हुआ है? (पुनः
रोषसहित नरदत्त से) इसके बाद भी कुछ कहना बाकी है क्या?

नरदत्त— (दृढ़तापूर्वक) बाकी है।

युवराज— (हँस कर) शीघ्र कहो।

नरदत्तः— देव ! इलादत्ताभिधानो मे भागिनेयः, ततः सुवर्णद्वीपस्थितेन मया सोमपरिवेषपर्वणि सम्पुटानां शतमष्टोत्तरं तन्नामाङ्कितं कृतम्। अत्राप्यर्थे पौरलोकः प्रमाणम्।

(युवराजो वणिजां मुखान्यवलोकयति।)

वणिजः— अस्तीलादत्ताभिधानो नरदत्तभागिनेयः।

युवराजः— (साक्षेपं मकरन्दं प्रति) अरे दाम्भिक! कूटप्रयोगैरस्माकं वणिजां च दुष्कीर्तिमुत्पादयसि?

मकरन्दः— (सावष्टम्भम्) उपायनीकृतरत्नानां प्रभावातिशयं नरदत्तमा-
पृच्छतु देवः।

युवराजः— नरदत्त! कस्य रत्नस्य कः प्रभावातिशयः?

नरदत्तः— (सक्षोभम्) देव! सर्वाण्यपि रत्नानि सप्रभावाणि, परं न कदाचिदपि निरूपितप्रत्ययानि।

युवराजः— (नरदत्तं प्रति) यदि त्वदीयानि रत्नानि तदा निस्सन्देहमभिदधीथाः।

नरदत्त— देव! इलादत्त नाम का मेरा भागिनेय है, इसीलिए सुवर्णद्वीप में सोमरस-वितरण के अवसर पर मैंने एक सौ आठ स्वर्णपेटियों पर उसका नाम अङ्कित करवा दिया। इस विषय में भी नगरवासी ही प्रमाण हैं।

(युवराज व्यापारियों का मुँह देखते हैं।)

व्यापारीगण— हाँ, नरदत्त का इलादत्त नामक भागिनेय है।

युवराज— (क्रोधपूर्वक मकरन्द से) अरे पाखण्डी! जालसाजी करके मेरा और व्यापारियों का अपयश फैला रहे हो?

मकरन्द— (दृढ़तापूर्वक) आप नरदत्त से उपहार में दिये गये रत्नों के प्रभाव के विषय में पूछें।

युवराज— नरदत्त! किस रत्न का क्या प्रभाव है?

नरदत्त— (बैचेनी के साथ) देव! सभी रत्न प्रभावशाली हैं, किन्तु कभी भी इनका परीक्षण नहीं किया गया है।

युवराज— (नरदत्त से) यदि तुम्हारे रत्न होते तो तुम अवश्य बतला देते।

मकरन्दः— देव! निःसन्देहमभिहिते भवन्ति मदीयानि रत्नानि?

युवराजः— अवश्यं भवन्ति।

मकरन्दः— देव ! रत्नमिदं स्पर्शमात्रेण शूलमपनयति। यदि चायमर्थो विसंवदति तदा शिरश्छेदेन दण्डः।

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः)

कञ्चुकी—

देवी कण्ठगतप्राणा शूलवेदनयाऽधुना।

अतः परं विधेयं तु युवराजोऽवगच्छति।।१।।

युवराजः— कञ्चुकिन्! रत्नमिदमुपनय देव्याः, येन समूलं शूलं प्रणश्यति।

(कञ्चुकी रत्नमादाय निष्क्रान्तः।)

(नरदत्तः सभयमपवार्य उपायनभाजनवाहिनः कर्णे—एवमेव।)

(उपायनभाजनवाही निष्क्रान्तः।)

मकरन्द— देव! क्या असन्दिग्ध रूप से बतला देने पर रत्न मेरे हो जायेंगे?

युवराज— अवश्य हो जायेंगे।

मकरन्द—देव! यह रत्न स्पर्शमात्र से पीड़ा दूर कर देता है और यदि यह सत्य न हो तो दण्डस्वरूप में मेरा सिर काट लिया जाय।

(प्रवेश करके घबड़ाया हुआ)

कञ्चुकी— तीव्र पीड़ा से देवी के प्राण कण्ठ को आ गये हैं अर्थात् वियुक्त होने वाले हैं। अब आगे क्या करना है, यह तो युवराज ही समझ सकते हैं।।१।।

युवराज— कञ्चुकिन्! यह रत्न देवी के पास ले जाओ। इससे पीड़ा समूल नष्ट हो जाती है।

(कञ्चुकी रत्न लेकर निकल जाता है।)

(नरदत्त भयपूर्वक दूसरी तरफ मुँह घुमाकर उपहारपात्र लाने वाले के कान में— ऐसा ही करो।)

(उपहारपात्र लाने वाला निकल जाता है।)

(प्रविश्य)

चेटी— भट्टा! दिट्टिया दिट्टिया।

(भर्तः ! दिष्ट्या दिष्ट्या।)

युवराजः— (सरभसम्) केरलिके! त्वरिततरमानन्दस्य निदानं विज्ञपय।

चेटी— रयणस्स पभावेण भट्टिणी व गयशूलवेअणा संजादा।

(रत्नस्य प्रभावेन भट्टिणी व्यपगतशूलवेदना सञ्जाता।)

युवराजः— (सक्रोधम्) अमात्य ! कैतवप्रयोगैर्देशान्तरिणां धनमपहृत्या-
स्माकमकीर्तिमुत्पादयतो नरदत्तस्य को दण्डः ?

चारायणः— (सकम्पम्) यं देवः समादिशति।

युवराजः— तर्हि श्रपाकमाकार्य सकुटुम्बमेनं नरदत्तमस्माकं पश्यतां
शूलमारोपय।

(नरदत्तः कम्पते।)

चारायणः— (उच्चैःस्वरम्) भो अस्मत्परिजनाः! सशूलं श्रपाकमाकारयत।

(प्रवेश कर)

चेटी— स्वामी! अहो भाग्य, अहो भाग्य?

युवराज— (उत्कण्ठापूर्वक) केरलिके! शीघ्र आनन्द का कारण बतलावो।

चेटी— रत्न के प्रभाव से युवराज्ञी की वेदना समाप्त हो गयी।

युवराज— (क्रोधपूर्वक) अमात्य! छल-कपट से परदेशियों का धन अपहृत
कर हमारा अपशय फैलाने वाले नरदत्त को क्या दण्ड दिया जाय?

चारायण— (काँपते हुए) जिस दण्ड की आप आज्ञा दें।

युवराज— तो चाण्डाल को बुलाकर परिजमसहित नरदत्त को मेरे सामने
शूली पर लटका दो।

(नरदत्त काँपता है।)

चारायण— (उच्च स्वर में) अरे हमारे सेवकों! चाण्डाल को शूली सहित
बुलाओ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारः— देव! सर्वदेशाचार-भाषा-वेषकुशलो बर्बरकूलवासी वणिज्यकारको द्वारि वर्त्तते।

(प्रविश्य)

श्वपाकः— अमच्च! एषो चिष्टामि।

(अमात्य! एष तिष्ठामि।)

चारायणः— अरे पिङ्गलक! सकुटुम्बमेनं नरदत्तं शूलमारोपय।

युवराजः— (प्रतीहारं प्रति) प्रवेशय वणिज्यकारकम्।

(प्रविश्य बर्बरो दूरस्थः प्रणमति।)

युवराजः— वणिज्यकारक! केन प्रयोजनेन वेलन्धरमवतीर्णोऽसि?

बर्बरः— भद्रा! पाणाह्नितो पि पियदले एगे मे भाया, शे लूशिय गिहादो नीशलिदे।

(भर्त्तः! प्राणेभ्योऽपि प्रियतरः एको मे भ्राता, स रुष्ट्वा गृहान्निःसृतः।)

(प्रवेश कर)

प्रतीहार— देव! सभी देशों के आचार, भाषा और वेष में कुशल बर्बर नदी के तट पर रहने वाला व्यापारी द्वार पर खड़ा है।

(प्रवेश कर)

श्वपाक— अमात्य! मैं आ गया हूँ।

चारायण— अरे पिङ्गलक! नरदत्त को परिजनों सहित शूली पर चढ़ा दो।

युवराज— (प्रतिहार से) व्यापारी को अन्दर ले आओ।

(प्रवेश करके दूर से ही प्रणाम करता है।)

युवराज— व्यापारी! किस प्रयोजन से वेलन्धरनगर में आये हो?

बर्बर— स्वामी! प्राणों से भी प्रिय मेरा एक भाई है, जो रूठ कर घर से भाग गया है।

युवराजः— ततः किम्?

बर्बरः— शे दाणिं वेलंधरे पविष्टे चिष्टदि।

(स इदानीं वेलन्धरे प्रविष्टः तिष्ठति।)

युवराजः—(मकरन्दमुद्दिश्य) एकस्तावदयं वैदेशिको वेलन्धरे प्रविष्टोऽस्ति।

बर्बरः— हा भाय! चिला दिष्टो सि।

(हा भ्रातः! चिराद् दृष्टोऽसि।)

(इत्यभिदधानो मकरन्दं परिरभ्य तारस्वरं प्रलपति)

युवराजः—(ससम्भ्रमम्) कथमयं मकरन्दो म्लेच्छजातिः? दुरात्मनाऽमुना म्लेच्छेन नरदत्तस्य वेश्मनि भोजन-शयनाभ्यां वर्णसङ्करः कृतः।

मकरन्दः—(स्वगतम्) शूलवेदनापहारेण मयि पक्षपात्यपि कुमारस्तेनामुनोप-
लिङ्गान्तरेण प्रतिपक्षतां यास्यति।

विरलविपदां कथञ्चिद् विपदो हर्तुं समीहते लोकः।

प्रतिपदनवविपदां पुनरुपैति माताऽपि निर्वेदम्॥१०॥

युवराज— उससे क्या ?

बर्बर— वह इस समय वेलन्धर में ही है।

युवराज— (मकरन्द की ओर सङ्केत करके) एक तो यही विदेशी है, जो वेलन्धर में प्रविष्ट हुआ है।

बर्बर— हाय भाई! बहुत समय बाद दिखे हो। (यह कहता हुआ मकरन्द को गले लगाकर जोर से रोता है।)

युवराज— (घबराहट के साथ) क्या यह मकरन्द म्लेच्छ जाति का है? इस दुष्ट ने नरदत्त के घर में भोजन और शयन कर हमको वर्णसङ्कर बना दिया।

मकरन्द— (मन ही मन) युवराज्ञी की पीड़ा को दूर करने के कारण मेरे पक्षपाती भी युवराज इस अपशकुन से मेरे विरुद्ध हो जायेंगे।

यदा-कदा विपत्ति में पड़ने वाले लोगों की विपत्तियों को तो लोग किसी प्रकार दूर भी कर सकते हैं, किन्तु जिन पर प्रतिक्षण नई-नई विपत्तियाँ आती रहती हैं, उनके प्रति तो माता भी विरक्त (ममत्वहीन) हो जाती है॥१०॥

तदतः परं कृतमुपायान्तरविमर्शनेन। यद् भाव्यं तद् भवतु।

युवराजः— (प्रतीहारं प्रति) उपनय दुरात्मानमेनं श्वपाकाय।

(प्रतीहारो मकरन्दं केशौराकृष्य श्वपाकायोपनयति।)

(नेपथ्ये)

अलमंलं क्रूरेण कर्मणा।

युवराजः— (सक्रोधम्) अरे! कोऽयं कृतान्तवदनं स्पृहयालुरस्मदाज्ञां प्रतिरुणद्धि?

प्रतीहारः— देव! व्याघ्रमुखीपतिर्वज्रवर्मा युष्मदाज्ञां प्रतिरुणद्धि।

युवराजः— (सदर्पम्) अस्मदाज्ञां प्रतिरोद्धुं शक्तिरस्ति पदातिपांशोर्वज्र-
वर्मणः? (पुनः श्वपाकं प्रति) आरोपय शूलमेतं दुरात्मानम्।

(श्वपाको मकरन्दमुत्क्षिपति।)

अतः अब कोई अन्य उपाय सोचना व्यर्थ है। जो होना है वह हो।

युवराज— (प्रतीहार से) इस दुष्ट को श्वपाक के पास ले जाओ।

(प्रतिहार मकरन्द का केश पकड़ कर उसको श्वपाक के पास ले जाता है।)

(नेपथ्य में)

ऐसा क्रूर कर्म न करें।

युवराज— (क्रोधपूर्वक) अरे! अपनी गर्दन कटवाने का इच्छुक यह कौन मेरी आज्ञा का विरोध कर रहा है?

प्रतीहार— देव! व्याघ्रमुखी के मुखिया वज्रवर्मा आपकी आज्ञा का विरोध कर रहे हैं।

युवराज— (अहङ्कारपूर्वक) मेरी आज्ञा का विरोध करने की शक्ति है पैर की धूल के बराबर वज्रवर्मा में? (पुनः श्वपाक से) इस दुष्ट को शूली पर लटका दो।

(चाण्डाल मकरन्द को शूली पर चढ़ाने के लिए उठाता है।)

(नेपथ्ये)

अहो ! अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्, अहह पापकारित्वम्!

युवराजः— (साक्षेपम्) अरे ! कोऽयमस्मान् भूयो भूयस्तिरस्करोति?

(प्रविश्य वज्रवर्मणा सह)

मित्रानन्दः— कुमार! कोऽयं विचारध्यामोहः?।

युवराजः— (प्रत्यभिज्ञाय) कथमयमस्मत्प्राणस्वामी मित्रानन्दः? (पुनः स्वसिंहासने समुपवेश्य) आर्य! किं तवाऽयं मकरन्दः?

मित्रानन्दः— ममाऽयं भ्राता मकरन्दः।

युवराजः— अरे बर्बर! किमिदम्?

बर्बरः— (सकम्पम्) नरदत्तेण एदं कवडं कालाविदे हगे।

(नरदत्तेन एतत् कपटं कारितोऽहम्।)

वज्रवर्मा— ममायं मकरन्दो जामाता।

(नेपथ्य में)

अहो! अनुचित है, अनुचित है, आह! घोर पापकर्म है!

युवराज— (क्रोधपूर्वक) यह कौन बारम्बार हमारा तिरस्कार कर रहा है?

(वज्रवर्मा के साथ प्रवेश करके)

मित्रानन्द— युवराज! यह कैसी विचारशून्यता है?

युवराज— (पहचान कर) क्या यह मेरा प्राणरक्षक मित्रानन्द है? (पुनः अपने सिंहासन पर बैठ कर) आर्य! यह मकरन्द आपका कौन है?

मित्रानन्द— यह मकरन्द मेरा भाई है।

युवराज— अरे बर्बर! यह सब क्या है?

बर्बर— (काँपते हुए) नरदत्त ने मुझसे यह छल करवाया।

वज्रवर्मा— यह मकरन्द मेरा जामाता है।

युवराजः— (सपश्चात्तापम्)

अमर्ष-मात्सर्य-विमोह-कैतवै-

रसून् हरन्तो नयशालिनामपि।

शुभेषु वृत्तिं दधतोऽपि केषुचित्

पतन्त्यगाधे तमसि क्षितीश्वराः॥११॥

(पुनरमात्यं प्रति) आरोपय सबर्बरं नरदत्तं शूलम्। इह समानय कृतस्नानं मकरन्दम्। भवत्वस्माकं दुर्नयस्य प्रायश्चित्तम्।

वज्रवर्मा— मित्रानन्दसम्पर्कपर्वणि न समुचितः प्राणिवधः।

मित्रानन्दः— कुमार! सर्वस्याप्यपराधस्यास्मदागमनमेव दण्डः।

युवराजः— (सविनयम्)

एतद् दिनं सुदिनमेष विशेषकश्च

द्वीपः क्षितेः पुरमिदं च पुरां पताकम्।

यस्मिन् पवित्रमनसो यशसो निशान्तं

युष्माद्दशाः पथि भवन्ति दशां शरण्याः॥१२॥

युवराज— (पश्चात्तापसहित)

वे राजा घोर नरक में गिर जाते हैं जो असहिष्णुता, विद्वेष, अज्ञान और छल के कारण नीतिमार्गानुसारी और सत्कर्म करने वाले लोगों का भी वध कर देते हैं॥११॥

(पुनः अमात्य से) नरदत्त को बर्बरसहित शूली पर लटका दो। स्नान किये हुए मकरन्द को यहाँ ले आओ। हमारे दुर्व्यवहार का प्रायश्चित्त हो जाये।

वज्रवर्मा— मित्रानन्द से मिलन के शुभ अवसर पर प्राणिवध उचित नहीं।

मित्रानन्द— युवराज! हमारा आगमन ही सभी अपराधों का दण्ड है।

युवराज— (विनयपूर्वक)

आज का दिन शुभ है, यह द्वीप भी श्रेष्ठ है और यह रङ्गशाला नगरी भी सभी नगरियों में उत्कृष्ट है जिसमें आप जैसे स्वच्छ अन्तःकरण वाले महापुरुष अहर्निश यशोमार्ग पर ही चलने की प्रेरणा देते रहते हैं॥१२॥

ततः कथयत केयमनभ्रा सुधावृष्टिः ?

वज्रवर्मा— सर्वमहं रजन्यां विज्ञपयिष्यामि। इदानीं पुनर्मध्याह्नसन्ध्यामाधातुं प्रयातु देवः। मित्रानन्दोऽप्यध्वश्रममपनयताम्।

चारायणः— देव! यदभिद्यते वज्रवर्मा तदस्तु।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

।।नवमोऽङ्कः समाप्तः।।

तो आप बतलावे कि विना बादल के ही यह सुधावृष्टि (आकस्मिक आगमन) कैसे?

वज्रवर्मा— सब बातें मैं रात में बतलाऊंगा। इस समय आप सायंकालीन सन्ध्यावन्दन हेतु जायें। मित्रानन्द भी यात्रा की थकान दूर कर ले।

चारायण— देव! वज्रवर्मा जैसा कहते हैं, वैसा ही हो।।

(सभी निकल जाते हैं।)

।।नवम अङ्क समाप्त।।

॥ अथ दशमोऽङ्कः ॥

(ततः प्रविशति पञ्चभैरवः।)

पञ्चभैरवः— (उच्चैःस्वरम्) हंहो विद्याधराः! स्वयं रत्नकूटाधिपतिर्वः
समादिशति-द्रुतमाकारयत दक्षिणाश्रमवासिनीं लम्बस्तनीम्, तौ च वध्यौ
कुतोऽपि गवेषयित्वा समानयत, पुरुषोत्तमं च तं जीवितदायिनं सङ्कटयत।

(नेपथ्ये)

यदादिशति सिद्धपरमेश्वरस्तदचिरादेव सम्पादयामि।

पञ्चभैरवः— तर्हि गत्वा विज्ञपयामि सिद्धाधिपतये। (इति परिक्रामति।
विलोक्य) कथमियमुत्तराश्रमवासिन्याः कुन्दलतायास्तापसी क्षेमङ्करी?

(प्रविश्य)

क्षेमङ्करी— अय्य पंचभैरव! सिद्धाहिवदिणो दंसणमहिलसामि।

(आर्य पञ्चभैरव! सिद्धाधिपतेर्दर्शनमभिलषामि।)

दशम अङ्क

(तत्पश्चात् पञ्चभैरव प्रवेश करता है।)

पञ्चभैरव— (उच्च स्वर में) अरे अरे विद्याधरो! स्वयं रत्नकूटनरेश आदेश
दे रहे हैं कि दक्षिण दिशा की आश्रम-वासिनी लम्बस्तनी को शीघ्र बुलाइये, उन
दोनों वध्यपुरुषों को कहीं से भी खोजकर ले आइये और उस जीवनदाता श्रेष्ठपुरुष
को भी मिलवाइये।

(नेपथ्य में)

सिद्धपरमेश्वर की जैसी आज्ञा है, वैसा शीघ्र ही करता हूँ।

पञ्चभैरव— तो जाकर सिद्धाधिनाथ को सूचित करता हूँ। (यह कहकर
धूमता है। पुनः देखकर) क्या यह उत्तराश्रमवासिनी कुन्दलता की तापसी (शिष्या)
क्षेमङ्करी (आ रही) है?

(प्रवेश कर)

क्षेमङ्करी— आर्य पञ्चभैरव! सिद्धाधिनाथ के दर्शन करना चाहती हूँ।

पञ्चभैरवः— भद्रे! प्रहारवेदनाभिरतितरामस्वस्थशरीरः साम्प्रतं सिद्ध-
परमेश्वरो वक्तुमपि न प्रभविष्णुः, ततो दृष्ट्वा किं करिष्यसि?

क्षेमङ्करी— प्रहारवेदनागणोपसमणत्थं चेत्यं दंसणमभिलसामि।

(प्रहारवेदनोपशमनार्थमेव दर्शनमभिलषामि।)

पञ्चभैरवः— सत्त्वरमागच्छ, पश्य तर्हि कामकाननकदलीगृहमधिशायानं
सिद्धाधिनाथम्।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः सिद्धाधिनाथः सुघण्टनन्दिघोषप्रभृतिकश्च परिवारः।)

सिद्धाधिनाथः— (प्रहारवेदनामभिनीय) अहह!

सुघण्टः— देव ! किं प्रहारव्रणमियन्तं कालमवतिष्ठते?

सिद्धाधिनाथः— कुपितदेवताप्रहारोऽयं न संरोहिणीऔषधीं विना प्रशाम्यति।

नन्दिघोषः— किमसाध्या संरोहिणी सिद्धपरमेश्वरस्य?

(सिद्धाधिनाथः दीर्घं निःश्वस्य तूष्णीमास्ते।)

पञ्चभैरव— भद्रे! प्रहारवेदना से अत्यन्त अस्वस्थ शरीर वाले सिद्धाधिनाथ
इस समय बोल पाने में भी समर्थ नहीं हैं, तो उनके दर्शन कर क्या करोगी?

क्षेमङ्करी— प्रहारवेदना को शान्त (समाप्त) करने के लिए ही तो दर्शन
करना चाहती हूँ।

पञ्चभैरव— तो शीघ्र आओ और कामवन के कदलीगृह में सोये हुए
सिद्धाधिनाथ को देखो।

(तत्पश्चात् यथानिर्दिष्ट सिद्धाधिनाथ और सुघण्ट, नन्दिघोष आदि अनुचरगण
प्रवेश करते हैं।)

सिद्धाधिनाथ— (प्रहारवेदना का अभिनय करके) आह!

सुघण्ट— देव! क्या प्रहार का घाव अभी तक विद्यमान है?

सिद्धाधिनाथ— यह क्रोधित देवता का प्रहार है, जो संरोहिणी (घाव को
सुखाने वाले औषध विशेष) औषध के विना शान्त नहीं होता।

नन्दिघोष— क्या संरोहिणी औषध आपके लिए भी अप्राप्य है?

(सिद्धाधिनाथ दीर्घ निःश्वास लेकर चुप रह जाता है।)

पञ्चभैरवः— देव! क्षेमङ्करी प्रणमति।

सिद्धाधिनाथः— क्षेमङ्करि ! निष्प्रत्यूहव्रतानुष्ठाना कुशलवती कुन्दलता?

क्षेमङ्करी— सिद्धाहिवदिणो पसादेण। (पुनः सविनयम्) एदं विन्नवेदि कुन्दलता अत्थि अम्हाणं आसमे मंतिओ अदिधी, सो मंतेण तंतेण य पहारवेयणं पडिहणेदि।

(सिद्धाधिपतेः प्रसादेन। एतद् विज्ञपयति कुन्दलता— अस्ति अस्माकमाश्रमे मान्त्रिकोऽतिथिः, स मन्त्रेण तन्त्रेण च प्रहारवेदनां प्रतिहन्ति।)

सिद्धाधिनाथः— मन्त्रविस्तरं विधापयितुं वयमिदानीमनोजस्विनः, तन्त्रप्रयोगं यदि करोति, तदा कुरुताम्।

(क्षेमङ्करी निष्क्रान्ता।)

सिद्धाधिनाथः— (सविषादम्) अहो वैचित्र्यं कालस्य! प्रहारवेदनामुपशमयितुं वयमपि साम्प्रतमपरस्य मुखमीक्षामहे।

पञ्चभैरव— देव! क्षेमङ्करी प्रणाम कर रही है।

सिद्धाधिनाथ— क्षेमङ्करि! क्या कुन्दलता निर्विघ्न व्रतानुष्ठान करती हुई सकुशल है?

क्षेमङ्करी— सिद्धाधिनाथ की कृपा से सकुशल है। (पुनः विनयपूर्वक) कुन्दलता ने यह निवेदन किया है— हमारे आश्रम में एक मान्त्रिक अतिथि है और वह तन्त्र-मन्त्र से प्रहारवेदना को नष्ट कर देता है।

सिद्धाधिनाथ— मन्त्र-प्रयोग (अनुष्ठान) करवाने में मैं इस समय असमर्थ हूँ, तन्त्रप्रयोग यदि करता है तो करे।

(क्षेमङ्करी निकल जाती है।)

सिद्धाधिनाथ— (खेदपूर्वक) अहो! समय की गति कितनी विचित्र है, प्रहारवेदना को शान्त करने हेतु मुझे भी इस समय दूसरे की सहायता लेनी पड़ रही है!

१. एवं क।

२. अहो ? विपाकवैचित्र्यं क।

(पुनः स्मृत्वा)

अनुजग्राह नस्तत्र स्वक्लेशमुपगम्य यः।

निसर्गसुहृदस्तस्य वणिजः किं विदध्महे?।।१।।

(पुनः सविषादम्)

परस्मादुपकारो यः सोऽपि व्रीडावहः सताम्।

तस्याप्रत्युपकारस्तु दुनोत्यन्तः पशूनपि।।२।।

(नेपथ्ये)

परिमलभृतो वाताः, शाखा नवाङ्कुरकोटयो,

मधुरविरुतोत्कण्ठाभाजः प्रियाः पिकपक्षिणाम्।

विरलविरलस्वेदोद्गारा वधूवदनेन्दवः,

प्रसरति मधौ धात्र्यां जातो न कस्य गुणोदयः?।।३।।

सुघण्टः— देव! शुभोदकं मागधः पठितवान्।

(पुनः स्मरण कर)

जिसने स्वयं सङ्कट में पड़कर भी वहाँ (वरुणद्वीप में) मुझ पर अनुग्रह (करके मुझको पाशपाणि के बन्धन से मुक्त) किया था, उस स्वाभाविक मित्र व्यापारी (मित्रानन्द) का मैं क्या (प्रत्युपकार) करूँ?।।१।।

(पुनः विषादपूर्वक)

दूसरों द्वारा स्वयं पर किया गया उपकार भी सज्जनों के लिए लज्जास्पद होता है और उस उपकार का प्रत्युपकार न कर पाना तो पशुओं को भी व्यथित कर देता है (सज्जनों का तो कहना ही क्या?)।।२।।

(नेपथ्य में)

हवायें सुगन्धि से परिपूर्ण हो गयीं हैं, वृक्षों की शाखाएँ कोटिशः नवीन किसलयों से आच्छादित हो गयीं हैं, प्रेमीजन कोयलों की मधुर कूक सुनकर समागम हेतु व्याकुल हो रहे हैं और तरुणियों के मुखचन्द्रों पर कुछ-कुछ पसीने की बूँदें छलकने लगी हैं। इस प्रकार पृथ्वी पर वसन्त ऋतु के आगमन के कारण किसका गुणोदय नहीं हो गया है?।।३।।

सुघण्ट— देव! मागध ने शुभसूचक पाठ किया है।

सिद्धाधिनाथः— अद्य केनाप्यचिन्त्येन हेतुनाऽस्माकं मानसमपि प्रवर्द्धमानो-
त्साहम्। (पुनर्नन्दिघोषं प्रति) समादिश कामपरिचारकं ब्रह्मलयम्। यथा—
वयमद्य निशीथे स्वयं बलिकर्म विधास्यामः। ततो भगवतः पञ्चबाणस्य
पूजाविशेषः कोऽपि विपञ्चनीयः।

(नन्दिघोषो निष्क्रान्तः।)

(प्रविश्य)

क्षेमङ्करी— एदिणा तंतेण उवलिंपेदु पहारवणं सिद्धाहिवई।

(एतेन तन्त्रेणोपलिम्पतु प्रहारवणं सिद्धाधिपतिः।)

सिद्धाधिनाथः— (तथा कृत्वा सविस्मयम्) कथं क्षणादेव सर्वथाऽप्यलक्ष्यः
प्रहारव्रणः समजनि? (पुनः सविमर्शम्) कथमिदं तदेवाऽऽस्माकीनमौषधम्?
(क्षेमङ्करीं प्रति) सुमुखि! स त्वदीयो मान्त्रिकः किमपरमपि किमपि जानाति?

क्षेमङ्करी— अवरं पि पियसंपओगं जाणादि।

(अपरमपि प्रियसम्प्रयोगं जानाति।)

सिद्धाधिनाथः— कोऽप्यस्माकं व्यापादयितुं प्रियः, कोऽपि पूजयितुं,

सिद्धाधिनाथ— आज किसी अज्ञात कारण से मेरे मन में उत्साह का सञ्चार
हो रहा है। (पुनः नन्दिघोष से) कामपरिचारक ब्रह्मलय को आदेश दो कि आज
रात मैं स्वयं बलिकर्म सम्पन्न करूँगा, अतः भगवान् कामदेव की विशेष पूजा की
व्यवस्था की जाय।

(नन्दिघोष निकल जाता है।)

(प्रवेश कर)

क्षेमङ्करी— आप प्रहार के व्रण (घाव) पर इस औषध का लेप लगावें।

सिद्धाधिनाथ— (वैसा करके विस्मयपूर्वक) क्या क्षणभर में ही घाव पूरा
गायब हो गया? (पुनः विचार करते हुए) कहीं यह मेरा वही खोया हुआ औषध
तो नहीं? (क्षेमङ्करी से) सुमुखि! तुम्हारा वह मान्त्रिक कुछ और भी जानता है क्या?

क्षेमङ्करी— हाँ, और भी प्रिय जादू जानता है।

सिद्धाधिनाथ— कोई वध्य होने के कारण मेरा प्रिय है और कोई पूज्य होने

तदुभयस्यापि संयोगमाधातुमूर्जस्वलः?

क्षेमङ्करी— अथ इं?

(अथ किम् ?)

सिद्धाधिनाथः— (सौत्सुक्यम्) समादिश कुन्दलताम्। यथा-निकषा कामायतनं स्वयं सन्निहिता विधापय मान्त्रिकेण प्रियजनसङ्कटनार्थं मन्त्रोपचारम्।

(क्षेमङ्करी निष्क्रान्ता।)

(प्रविश्य कटितटं नर्तयन्ती लम्बस्तनी प्रणमति।)

सिद्धाधिनाथः— (सर्सरम्भम्) लम्बस्तनि! इदमासनमास्यताम्। (पुनः सौत्सुक्यम्) अस्मन्मनोरथानुरूपं किमप्याचरत्यात्रेयी?

लम्बस्तनी— (सोद्वेगम्) न किं पि।

(न किमपि।)

सिद्धाधिनाथः— हा हताः स्मः (पुनः सविषादम्) लम्बस्तनि! स एष ग्रैवेयकप्रवासप्रसादो यदस्माकमपि दौर्भाग्यम्। (पुनः सोपहासम्) सूत्रधारी

होने के कारण और मैं उन दोनों का संयोग प्राप्त कर पाने में समर्थ हूँ?

क्षेमङ्करी— और क्या?

सिद्धाधिनाथ— (उत्सुकतापूर्वक) कुन्दलता को आदेश दो कि काम-मन्दिर के पास स्वयं उपस्थित रह कर मान्त्रिक से प्रियजनों को मिलवाने हेतु मन्त्रप्रयोग करवाये।

(क्षेमङ्करी निकल जाती है।)

(प्रवेश करके कमर लचका कर नृत्य करती हुई लम्बस्तनी प्रणाम करती है।)

सिद्धाधिनाथ— (शीघ्रतापूर्वक) लम्बस्तनि! इस आसन पर बैठो। (पुनः उत्सुकतापूर्वक) क्या आत्रेयी हमारे मनोरथ के अनुकूल कुछ व्यवहार प्रदर्शित कर रही है ?

लम्बस्तनी— (क्षोभ सहित) कुछ भी नहीं।

सिद्धाधिनाथ— हाय! मारे गये! (पुनः दुःखपूर्वक) लम्बस्तनि! यह उस कण्ठहार के अभाव के कारण ही हो रहा है जो हमारे लिए बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है।

खलु भवती विकटकपटनाटकघटनासु, ततस्त्वमपि भग्नाऽसि।

लम्बस्तनी— किमहं करोमि?, सा खु अत्तेई न आहरदि, न जंपेदि, णवरं तवोविहाणकदनिच्छया रोअंती चिट्ठदि।

(किमहं करोमि? सा खलु आत्रेयी नाऽऽहरति, न जल्पति, नवरं तपोविधानकृतनिश्चया रुदती तिष्ठति।)

सिद्धाधिनाथः— निजस्य पत्युः प्रेम्णा पत्यन्तरं नाभिलषति?, उताहो मन्मथाभावेन?

लम्बस्तनी— (साक्षेपम्) सा किमत्थि इत्थिआ?, जीइ वम्महो न भोदि।

(सा किमस्ति स्त्री?, यस्या मन्मथो न भवति।)

सिद्धाधिनाथः— सन्ति ताः कियन्त्योऽप्यस्मिन् जगति स्त्रियो यासां मन्मथसहस्रमपि न मनो व्यथयति। स्त्रीसम्पर्क इव पुरुषसम्पर्कोऽपि न विकाराय। अङ्गसंस्कारो लोकव्यवहारो न कामोद्धारः। जठरपिठरीभरण-मात्रावधयः सर्वेऽप्यभिलाषाः पुरुषोपसेवाऽऽजीविकार्थम् न मन्मथव्यथा-

(पुनः उपहासपूर्वक) तुम तो बड़े-बड़े कपटजाल रचने में निपुण हो और तुम भी असफल हो गई?

लम्बस्तनी— मैं क्या करूँ? वह आत्रेयी न खाती है, न बोलती है और पति के मिलनपर्यन्त उपवास रखने का निश्चय कर रोती रहती है।

सिद्धाधिनाथ— अपने पति के प्रेमवश दूसरे पति की इच्छा नहीं करती अथवा काम के अभाव के कारण?

लम्बस्तनी— (क्रोधपूर्वक) वह कैसी स्त्री है जिसमें कामभाव न हो?

सिद्धाधिनाथ— इस संसार में ऐसी कितनी ही स्त्रियाँ हैं जिनके मन को हजारों कामदेव भी व्यथित नहीं कर सकते। स्त्री-सम्पर्क के समान पुरुष-सम्पर्क भी उनके मन को विकृत नहीं कर सकता। वे आभूषणधारणादि अङ्गसंस्कार केवल लोकव्यवहार के कारण करती हैं, कामोद्दीपन के लिए नहीं। उनकी समस्त अभिलाषाएँ पेट भरने मात्र तक सीमित रहती हैं। वे पुरुष की सेवा आजीविका हेतु करती हैं न कि कामसन्ताप की शान्ति हेतु। पति, पिता एवं भाई

व्यपोहार्थम्। कामयितरि जनयितरि भ्रातरि च पुरुषमात्रपरमन्तःकरणम्।
तदलममुना वाग्विलासेन।

सर्वथा कैतवं निन्द्यं प्रवदन्ति विपश्चितः।

केवलं न विना तेन दुःसाध्यं वस्तु सिध्यति॥४॥

ततो ब्रज त्वं कामायतनम्। प्रवर्तय सर्ववनितासु विधीयमानं पूर्वमन्त्रितमेव
कैतवप्रयोगम्। वयमप्येते प्रदोषानन्तरमागता एव।

(लम्बस्तनी निष्क्रान्ता।।)

(प्रविश्य)

पुरुषः— देव! वध्ययोर्मध्यादेकः प्राप्तः।

सिद्धाधिनाथः— (सरभसम्) घातकस्तदितरो वा?

पुरुषः— तदितरः।

सिद्धाधिनाथः— (पञ्चभैरवं प्रति) स एष मन्त्रोपचारकर्मणः प्रभावः।

(पुनः पुरुषं प्रति) गत्वा समादिश लम्बस्तनीम्, यथा—पञ्चबाणस्यापि व्यापारो

इन सबके प्रति समान मनोभाव रखती हैं। अतः हमारी इस बातचीत से कोई लाभ नहीं।

ज्ञानीजन छल-कपट को सर्वथा निन्दनीय बतलाते हैं, किन्तु कोई भी
दुःसाध्य वस्तु उसके विना प्राप्त नहीं होती॥४॥

अतः तुम अब काममन्दिर में जाओ और सभी युवतियों के साथ पूर्वविचारित
कपटलीला प्रारम्भ करो। मैं भी प्रदोषवन्दन के बाद आ ही रहा हूँ।

(लम्बस्तनी निकल जाती है।)

(प्रवेश कर)

पुरुष— देव! दो वध्यपुरुषों में से एक मिल गया।

सिद्धाधिनाथ— (शीघ्रतापूर्वक) प्रहार करने वाला या दूसरा?

पुरुष— दूसरा ।

सिद्धाधिनाथ— (पञ्चभैरव से) यह उसी मन्त्रोपचारकर्म का प्रभाव है। (पुनः
पुरुष से) जाकर लम्बस्तनी से कहो कि कामदेव का पूजन भी वध्यपुरुष के हाथ

वध्यहस्तेनैव कार्यः।

(पुरुषो निष्क्रान्तः।)

(नेपथ्ये)

वसुधातलसन्तपनस्तपनश्चरमं प्रयात्यचलमेषः।

प्रियजनसङ्कटनकरं तिमिरं प्रविलुठति काष्ठासु।।५।।

पञ्चभैरवः— देव! मान्त्रिकमन्त्रानुरूपं प्रदोषं मागधः पठितवान्।

सिद्धाधिनाथः— अधितिष्ठामस्तर्हि कामायतनम्।

(सर्वे परिक्रामन्ति।)

पञ्चभैरवः— देव!

स्फूर्जद्यावकपङ्कसङ्क्रमलसन्मध्यं जपासोदरै-

दूष्यैः क्लृप्तपताकामाप्रकिसलैस्ताग्नीभवत्तोरणम्।

से ही करवाना है।

(पुरुष निकल जाता है।)

(नेपथ्य में)

पृथ्वी को सन्तप्त करने वाला सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा है और प्रेमीजनों को मिलवाने वाला अन्धकार सभी दिशाओं में व्याप्त हो रहा है।।५।।

पञ्चभैरव— देव! मागध ने मान्त्रिक के मन्त्र के अनुरूप ही सायंकाल का वर्णन किया है।

सिद्धाधिनाथ— तो अब हम लोग काममन्दिर की ओर चलें।

(सभी घूमते हैं।)

पञ्चभैरव— देव!

यह भगवान् कामदेव का मन्दिर है जिसका आन्तरिक भाग चमकीले अलक्तक (महावर) के रस के प्रसार से चमकीला हो गया है, जिसके शिखर पर जपाकुसुम के समान गाढ़े लाल रङ्ग की पताका लहरा रही है, तोरणद्वार आम्रपल्लवों से आच्छादित होने के कारण ताम्रवर्ण के प्रतीत हो रहे हैं, सब तरफ (मन्दिर को

कौसुम्भैर्घटितावचूलमभितो मत्तालिभिर्दामभिः,
सिन्दूरारुणिताङ्गणं गृहमिदं देवस्य चेतोभुवः॥६॥

(प्रविश्य)

ब्रह्मलयः— देव! स एष विहितविशेषपूजो भगवाननङ्गः। इदं च
सिंहासनमास्यतां देवेन।

सिद्धाधिनाथः— (प्रणम्य)

जनमहितमहिम्नां विष्णु-शम्भु-स्वयम्भू-
हरि-हय-हिमधाम्नां दुर्यशोनाट्यबीजम्।
कृततरुणिममाद्यन्मानिनीमानभङ्गः,
प्रथयतु महतीं नस्तां समीहामनङ्गः॥७॥

(पुनः सिंहासनमलङ्कृत्य सोत्कण्ठम्)

हिमकरकराकीर्णा रात्रिर्मधुः कलितोदयो,
गलितकुसुमैश्छन्ना भूमिः, सचापकरः स्मरः।

सजाने के लिए) केसरिया पताकाएँ लटक रही हैं जिन पर उन्मत्त भ्रमरपंक्ति मँडरा
रही है और आँगन सिन्दूर (के गिरकर फैलने) से लाल हो गया है॥६॥

(प्रवेश कर)

ब्रह्मलय— देव! यही हैं भगवान् कामदेव, जिनकी विशेष पूजा करनी है
और यह सिंहासन है, इस पर आप बैठें।

सिद्धाधिनाथ— (प्रणाम करके)

लोकविश्रुत महिमा वाले भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य और
चन्द्रदेव के दुर्यश के प्रसार के कारणभूत और तारुण्य के मद से मतवाली मानिनियों
के गर्व को चूर करने वाले भगवान् कामदेव हमारी कामेच्छा को प्रवर्धित करें॥७॥

(पुनः सिंहासन पर बैठकर उत्कण्ठापूर्वक)

यदि विधाता अनुकूल हो, तो चन्द्रिका से नहलाई हुई रात्रि, प्रादुर्भूत
वसन्तऋतु, गिरे हुए पुष्पों से आच्छादित भूमि, हाथ में पुष्प धनुष लिए हुए साक्षात्

मिथुनघटनादक्षं मित्रं प्रिया प्रणयोन्मुखी,
विधिरयमियान् सम्पद्येत प्रसीदति वेधसि।।८।।

(ततः प्रविशति लम्बस्तनी आत्रेयी च।)

सिद्धाधिनाथः— (आत्रेयीमवलोक्य सविस्मयम्)

चक्षुर्बाष्पविकज्जलं करतलव्यासङ्गखण्डद्युति-
र्गण्डश्रीरधरः खरः प्रसुमरैः सूत्कारतारोर्मिभिः।
आहारप्रतिरोधकीकसशिरामात्रा च गात्रावनि-
र्दृष्टिं प्रीणयते तथापि सुदती लेखेव शीतत्विषः।।९।।

लम्बस्तनी— वत्से! पणमेहि सिद्धनाहं।

(वत्से! प्रणम सिद्धनाथम् ।)

(आत्रेयी प्रणम्य सलज्जमधोमुखी भवति।)

सिद्धाधिनाथः—

सौभाग्यद्रुममञ्जरि! स्मरकरिक्रीडैकरेवावने!
लावण्यस्य तरङ्गिणि! त्रिभुवनप्रह्लादनाचन्द्रिके!।

कामदेव, प्रेमीयुगल का मिलन कराने में दक्ष मित्र और प्रणयोन्मुखी प्रिया- ये सभी भाग्यबल से उपस्थित हो जाते हैं।।८।।

(तत्पश्चात् लम्बस्तनी और आत्रेयी प्रवेश करती हैं।)

सिद्धाधिनाथ— (आत्रेयी को देखकर विस्मयपूर्वक)

अश्रुप्रवाह के कारण आँखों का काजल धुल गया है, हथेली से पुनः पुनः रगड़े जाने के कारण कपोलों की कान्ति क्षीण हो गयी है, जोर-जोर से चीखने के कारण अधरोष्ठ फट गया है और भोजन न ग्रहण करने के कारण शरीर कठोर और कृश हो गया है, फिर भी यह सुदती (कौमुदी) चन्द्रकला के समान नेत्रों को आह्लादित कर रही है।।९।।

लम्बस्तनी— पुत्रि! सिद्धनाथ को प्रणाम करो।

(आत्रेयी प्रणाम करके लज्जा से मुख नीचे झुका लेती है।)

सिद्धाधिनाथ— हे सौभाग्यरूपी वृक्ष की मञ्जरि! कामरूपी गज की क्रीड़ा हेतु एकमात्र नर्मदातटस्थित वनस्वरूपिणि! हे लावण्य (सौन्दर्य) की तरङ्गिणि! हे

वक्त्राम्भोजमुदस्य पश्य सुदति! स्वभूर्भुवश्चक्षुषां
साफल्यैकनिबन्धनं भगवतश्चेतोभुवो मन्दिरम् ॥१०॥

(आत्रेयी सत्रीडं तूष्णीमास्ते।)

सिद्धाधिनाथः— (सोत्कण्ठम्)

वक्त्रं विलक्ष्म, सततोदयदर्पिते च
नेत्रे, शठेन सृजता मदिरेक्षणायः।

धात्रा कलङ्क-विनिमीलनपांसुराणां,

किं नाम नापकृतमिन्दु-सरोरुहाणाम्? ॥११॥

(पुनरपवार्य) लम्बस्तनि! सर्वमपि कामकर्तव्यं शिक्षितस्त्वया वध्यः?

लम्बस्तनी— अद्य इ?

(अथ किम् ?)

सिद्धाधिनाथः— (आत्रेयीं प्रति) भद्रे! स्वयं सन्निहिते भगवति पञ्चबाणे

तीनों लोकों (के प्राणियों के चित्त) को आह्लादित करने वाली चन्द्रिकास्वरूपिणि सुदति (कौमुदी)! अपना मुखकमल उठाकर पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग— इन तीनों लोकों के प्राणियों की दृष्टि की सफलता के एकमात्र आधार (कसौटी) भगवान् कामदेव के मन्दिर को देखो ॥१०॥

(आत्रेयी लज्जा से चुप रहती है।)

सिद्धाधिनाथ— (उत्कण्ठापूर्वक)

इस मदिरेक्षणा के निष्फलङ्क मुख और सतत विकास के कारण दर्पयुक्त नेत्रों की रचना करने वाले धूर्त विधाता ने क्रमशः कलङ्क और निमीलन (मुरझाना) रूप दोषों से युक्त चन्द्रमा और कमलों का अपकार नहीं किया क्या? ॥११॥

(पुनः दूसरी तरफ मुँह घुमाकर) लम्बस्तनि! क्या तुमने वध्यपुरुष को कामपूजन की सभी विधियों की शिक्षा दे दी?

लम्बस्तनी— और क्या?

सिद्धाधिनाथ— (आत्रेयी से) भद्रे! स्वयं भगवान् कामदेव के समीप रहते

कोऽयं प्रियसम्पर्कनिमित्तं क्लेशाभ्युपगमः? अभ्युपगच्छ स्वच्छेन चेतसा सत्यावपातस्य भगवतः पञ्चबाणस्य पुरुषोपहारम्, येनायं प्रसन्न प्रयच्छति ते प्रियपतिम्। अपि च यस्यैवायं भगवाननङ्गः स्वयं स्रजमुपनेष्यते स एव ते पतिः।

लम्बस्तनी— वत्से! भोदु एदं, पिच्छ भयवदो पहावं।

(वत्से ! भवत्वेतत्, पश्य भगवतः प्रभावम् ।)

सिद्धाधिनाथः— (कामाभितापमभिनीय)

अस्यां मृगीदृशि दृशोरमृतच्छटायां,

देवः स्मरोऽपि नियतं वितताभिलाषः।

एतत्समागममहोत्सवबद्धतुष्ण-

माहन्ति मामपरथा कथमेष बाणैः?।।१२।।

(पुनरात्रेयीं प्रति)

नतशतमखकामिनीप्रसून-

च्युतमकरन्दकरम्बितांहिपद्भाम्।

तुम प्रियमिलन हेतु इतना कष्ट क्यों सहन कर रही हो? स्वच्छ मन से सत्यनिष्ठ भगवान् कामदेव को पुरुष की बलि प्रदान करो, जिससे प्रसन्न होकर ये तुम्हें तुम्हारा प्रिय पति प्रदान करेगा और भगवान् कामदेव जिसके भी गले में स्वयं माला डाल देंगे वही तुम्हारा पति होगा।

लम्बस्तनी— पुत्रि! बलि प्रदान करो और फिर भगवान् कामदेव का प्रभाव देखो।

सिद्धाधिनाथ— (कामसन्ताप का अभिनय करके)

आँखों में अमृतवर्षा करने वाली इस मृगनयनी में निश्चय ही कामदेव भी अनुरक्त हो गये हैं, अन्यथा इसके समागमरूपी महोत्सव के अभिलाषी मुझको बाणों से आहत क्यों कर रहे हैं?।।१२।।

(पुनः आत्रेयी से)

हे मृगनयनि! ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर भगवान् द्वारा जिनके नाम का जप किया जाता है ऐसे भगवान् कामदेव की, (प्रणाम करने हेतु) झुकी हुई इन्द्र की

द्वहिण-हरि-हरोपजप्यनाम्नः,

प्रणम मृगाक्षि! मनोभवस्य मूर्तिम्॥१३॥

आत्रेयी— (उत्थाय प्रणम्य च सविनयम्) भयवं कुसुमबाण! पसीअ उवणेहि पिअं जणं, अहं ते पुरिसेण बलिं करिस्सं।

(भगवन् कुसुमबाण? प्रसद्योपनय प्रियं जनम्। अहं ते पुरुषेण बलिं करिष्ये।)

(नेपथ्ये)

भद्रे! स्वयं सन्निहिते भर्तरि किं भर्तारमर्थयसे?

आत्रेयी— कथमेस सयं भयवं पंचबाणो जंपेदि? (पुनर्विलोक्य) कथं सयं सयंवरमालं सिद्धणाहस्स कंठे निक्खवेदि?

(कथमेष स्वयं भगवान् पञ्चबाणः जल्पति? कथं स्वयं स्वयंवरमालां सिद्धनाथस्य कण्ठे निक्षिपति?)

(सर्वे सविस्मयमवलोकयन्ति।)

सिद्धाधिनाथः— (सविस्मयमात्मगतम्) कथमिदं तदेव त्रिलोकीकामिनीजन-
मनःक्षोभैकहेतुर्ब्रैवेयकमुपनीतं भगवता पञ्चबाणेन? (पुनरपवार्यं) लम्बस्तनि!

स्त्रियों के (केशपाश में ग्रथित) पुष्पों से गिरे हुए परागकण से रञ्जित (शोभित) चरणकमलों वाली मूर्ति को प्रणाम करो॥१३॥

आत्रेयी— (उठकर और प्रणाम कर विनयपूर्वक) भगवन् कामदेव! प्रसन्न होकर मेरे पति को मुझसे मिलवा दीजिए। मैं आपको पुरुष-बलि प्रदान करूँगी।

(नेपथ्य में)

भद्रे! स्वयं पति के समीप उपस्थित होते हुए भी पति के लिए प्रार्थना क्यों कर रही हो?

आत्रेयी— क्या ये स्वयं भगवान् कामदेव बोल रहे हैं? (पुनः देखकर) क्या स्वयं ही स्वयंवरमाला को सिद्धनाथ के गले में डाल रहे हैं?

(सभी आश्चर्य से देखते हैं।)

सिद्धाधिनाथ— (आश्चर्यपूर्वक मन ही मन) क्या भगवान् कामदेव ने त्रिलोक की कामिनियों के मनःक्षोभ की एकमात्र कारणभूता वही माला प्रदान की

किमिदम्?, कैतवमपि सत्यतामगात्।

लम्बस्तनी— अहं पि विम्हिदा चिद्गामि।

(अहमपि विस्मिता तिष्ठामि।)

आत्रेयी— (सात्त्विकभावानभिनीय सरभसम्) एसो सो च्वेअ मे पई। (पुनः सरभसम्) अज्जउत्त! चिरा दिट्ठो सि।

(एष स एव मम पतिः। आर्यपुत्र! चिराद् दृष्टोऽसि।)

लम्बस्तनी— वत्से! निरूविदो तए भयवदो पहावो?, ता इयाणिं उवविसिय देहि पुरिसोवहारं।

(वत्से! निरूपितस्त्वया भगवतः प्रभावः ?, तदिदानीमुपविश्य देहि पुरुषोपहारम् ।)

सिद्धाधिनाथः— (दक्षिणाक्षिस्फुरणमभिनीय सरभसम्) भगवन् कुसुमचाप!

अमन्दं स्पन्दमानस्य दक्षिणास्यास्य चक्षुषः।

फलं प्रयच्छ सम्पर्कं तेन जीवितदायिना।।१४।।

है? (पुनः दूसरी तरफ मुँह घुमाकर) लम्बस्तनि! यह क्या? कपटलीला भी सत्य हो गयी?

लम्बस्तनी— मैं भी अचम्भित हो गयी हूँ।

आत्रेयी— (सात्त्विक भावों का अभिनय करके शीघ्रता से) यही है मेरा पति। (पुनः शीघ्रतापूर्वक) आर्यपुत्र! बहुत समय बाद दिखे हो।

लम्बस्तनी— पुत्रि! तुमने देख लिया न भगवान् कामदेव का प्रभाव? तो अब बैठकर पुरुषबलि प्रदान करो।

सिद्धाधिनाथ— (दायीं आँख के फड़कने का अभिनय करके शीघ्रतापूर्वक) भगवन् कामदेव!

उस जीवनदाता (मित्रानन्द) से मिलवाकर इस दाहिनी आँख के (शुभसूचक) तीव्र गति से फड़कने का फल प्रदान करें।।१४।।

(नेपथ्ये)

एष प्रत्यासन्नः।**सिद्धाधिनाथः— किं जीवितदायिनः सम्पर्कः प्रत्यासन्नः?**

(नेपथ्ये)

एष प्रत्यासन्नः कालो निशीथस्य। तदारभ्यतां बलिकर्म।(ततः प्रविशति यावकरसोपलिप्तसर्वाङ्गः करवीरदामालङ्कृतकण्ठपीठो
निवसितकुसुम्भवसनः पुरुषः।)**सिद्धाधिनाथः— (अपवार्यं) लम्बस्तनि! तथा त्वयाऽयमुपलिप्तो यथा
सर्वथा नोपलक्ष्यते। क्रूरकर्मणि पटीयसी खल्वसि।**

(पुरुषः पञ्चबाणं प्रणम्य प्रदक्षिणीकृत्य च होमकुण्डसविधमुपविशति।)

**लम्बस्तनी— वत्से! करेहि भयवदो कुंडाणलस्स उवहारपुरिसस्स य
पूर्यं।****(वस्ते ! कुरु भगवतः कुण्डानलस्योपहारपुरुषस्य च पूजाम् ।)**

(नेपथ्य में)

यह सन्निकट है।

सिद्धाधिनाथ— क्या जीवनदाता से सम्पर्क सन्निकट है?

(नेपथ्य में)

रात होने ही वाली है, अतः बलिकर्म आरम्भ करें।

(तत्पश्चात् सर्वाङ्गमे महावर का लेप लगाया हुआ, गले में कनेर पुष्प की
माला पहना हुआ गेरुआ वस्त्रधारी पुरुष प्रवेश करता है।)**सिद्धाधिनाथ— (दूसरी तरफ मुँह घुमाकर) लम्बस्तनि! तुमने तो इसको
ऐसा रङ्ग दिया है कि यह बिल्कुल दीख ही नहीं रहा है। तुम क्रूरकर्म में निश्चय
ही दक्ष हो।**(पुरुष कामदेव को प्रणाम कर और प्रदक्षिणा कर हवनकुण्ड के पास बैठ
जाता है।)**लम्बस्तनी— पुत्रि! हवनकुण्ड के अग्नि और बलिपुरुष की पूजा करो।**

(आत्रेयी तथा करोति।)

सिद्धाधिनाथः— महापुरुष! सार्वकामिकमिदं शाश्वतिकमग्निकुण्डम्। भगवतः पञ्चबाणस्य पुरतो वनितया स्वयमस्मिन्नाहुतीकृतः स्वर्गसुन्दरीणां पतिर्भविष्यसि। तदिदानीं क्लेशसहस्रपिच्छिलं पितृ-मातृ-पुत्र-कलत्र-स्वापतेय-प्रेमाणमपहाय परलोकमधितिष्ठासुः प्रशान्तेन चेतसा स्मर किमपि दैवतमिष्टम्।

पुरुषः— (सविनयमञ्जलिं बद्ध्वा)

शीर्णनिःशेषसंसारव्यापारावेशवैशसम्।

स्मरामि निष्ठितक्लेशं देवं नाभिसमुद्भवम्।।१५।।

सिद्धाधिनाथः— ऐहिकमपि किमपि शरणं प्रतिपद्यस्व।

पुरुषः— ऐहिकः पुनरनङ्गदासो योनिसिद्धः शरणम्, यो मया वरुणद्वीपे स्वयमुपकृतः।

सिद्धाधिनाथः— कथं भवान् मित्रानन्दः?

(आत्रेयी वैसा ही करती है।)

सिद्धाधिनाथ— महापुरुष! यह सतत प्रज्वलनशील अग्निकुण्ड समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। भगवान् कामदेव के सम्मुख इस युवती द्वारा स्वयं आहुति दिये जाने पर तुम स्वर्ग की सुन्दरियों (अप्सरों) के पति बनोगे। अतः अब सहस्रों कष्टों से आक्रान्त पिता, माता, भाई, स्त्री, सम्पत्ति इन सभी का मोह त्याग कर और परलोकगमन के इच्छुक होकर शान्त मन से किसी इष्ट देव का स्मरण करो।

पुरुष— (विनयपूर्वक हाथ जोड़कर)

मैं नाभि के पुत्र भगवान् ऋषभदेव का स्मरण करता हूँ, जिन्होंने समस्त सांसारिक क्रियाकलापों से होने वाले समस्त पापों को नष्ट कर दिया है और इसीलिए समस्त क्लेशों से मुक्त हैं।।१५।।

सिद्धाधिनाथ— किसी ऐहिक व्यक्ति का भी स्मरण कर लो।

पुरुष— इस लोक में तो अनङ्गदास नामक सिद्ध ही शरण है, जिसका वरुणद्वीप में मैंने स्वयं उपकार किया था।

सिद्धाधिनाथ— क्या आप मित्रानन्द हैं?

पुरुषः— मित्रानन्दोऽस्मि।

सिद्धाधिनाथः— (प्रणम्य) परमेश्वर! प्रसीद प्रसीद, क्षमस्व कृतघ्नस्य क्रूरचेतसोऽनङ्गदासस्य तमेकमपराधम्। (पञ्चभैरवं प्रति) स एष मे जीवितस्य स्वामी मित्रानन्दो यद्गवेषणाय यूयमभ्यर्थिताः।

(पञ्चभैरवः यावकोपलेपनमपनीय मित्रानन्दं सिंहासने समुपवेशयति।)

(आत्रेयी प्रत्यभिज्ञाय परिरभ्य च तारस्वरं प्रलपति।)

पुरुषः— (सबाष्पम्) प्रिये! कामिमां दुःस्थामवस्थामधिगतवत्यसि?

सिद्धाधिनाथः— अपरमपि बहु कर्तव्यमस्ति। परमिदानीं गृहाण स्त्रीरत्नमेकम्। अमुमेव कुण्डाग्निं प्रदक्षिणीकृत्य परिणय भगवतः पञ्चबाणस्य पुरतः। (लम्बस्तनीं प्रति) उपनय द्वितीयां तां तापसीम्।

(प्रविश्य तापसी प्रणमति।)

आत्रेयी— (निभृतं विलोक्य) कथमेसा सुमिता?

(कथमेषा सुमित्रा?)

पुरुष— हाँ, मैं मित्रानन्द ही हूँ।

सिद्धाधिनाथ— (प्रणाम करके) परमेश्वर! प्रसन्न हों,, प्रसन्न हों, क्रूरहृदयी और कृतघ्न अनङ्गदास के इस एकमात्र अपराध को क्षमा करें। (पञ्चभैरव से) यही हैं मेरे प्राणदाता मित्रानन्द, जिनको खोजने हेतु मैंने आप से कहा था।

(पञ्चभैरव महावर के लेप को धोकर मित्रानन्द को सिंहासन पर बैठाता है।)

(आत्रेयी पहचान कर और आलिङ्गन कर जोर से रोती है।)

पुरुष— (आँसू बहाते हुए) प्रिये! तुम्हारी यह कैसी दुर्दशा हो गयी है?

सिद्धाधिनाथ— अभी और भी बहुत कार्य करना है। परन्तु इस समय आप एक स्त्रीरत्न का ग्रहण कीजिए और भगवान् कामदेव के सम्मुख ही इसी कुण्डाग्नि की प्रदक्षिणा कर उससे विवाह कीजिए। (पुनः लम्बस्तनी से) उस दूसरी तापसी को समीप लाओ।

(तापसी प्रवेश कर प्रणाम करती है।)

आत्रेयी— (ध्यान से देखकर) क्या यह सुमित्रा है?

१. अवलोक्य क।

पुरुषः— कथमेषा सुमित्रा मकरन्दपत्नी? (पुनः सिद्धं प्रति) इयं मे मित्रस्य पत्नी सुमित्रा।

सिद्धाधिनाथः— (सलज्जम्) केयमपराधपरम्परा? (पुनः पुरुषं प्रति) एते द्वे अपि मयैवापहत्य विहितरूपान्तरे लम्बस्तनीवेश्मनि परस्परवार्तानभिज्ञे विहितनामान्तरे कालमियन्तं विधृते। (पुनर्विमृश्य) पतिरस्याः क्व वर्तते?

पुरुषः— यदाऽहं वेलन्धरनगरात् स्वनगरं प्रति प्रतिष्ठमानो युष्मद्विद्याधरैर-
पहतस्तादा पतिरस्याः क्वचिदपि पलाय्य गतवान्।

(प्रविश्य)

प्रतीहारः— एकः पथिको देवपादान् द्रष्टुमभिलषति।

सिद्धाधिनाथः— शीघ्रं प्रवेशय।

(प्रतीहारो निष्क्रान्तः।)

(प्रविश्य पथिकः प्रणमति।)

पुरुष— क्या यह मकरन्द की पत्नी सुमित्रा है? (पुनः सिद्ध से) यह मेरे मित्र की पत्नी सुमित्रा है।

सिद्धाधिनाथ— (लज्जासहित) यह कैसी अपराधपरम्परा है? (पुनः पुरुष से) ये दोनों स्त्रियाँ भी मेरे द्वारा ही अपहृत होकर वेश और नाम बदलकर एक दूसरे से अलग लम्बस्तनी के भवन में इतने समय तक रखी गयीं। (पुनः सोचकर) इसका पति कहाँ है?

पुरुष— जब मैं वेलन्धरनगर से अपने नगर लौटते समय आपके विद्याधरों द्वारा पकड़ा गया, तभी इसका पति भागकर कहीं चला गया।

(प्रवेश कर)

प्रतीहार— एक पथिक आपके दर्शन करना चाहता है।

सिद्धाधिनाथ— शीघ्र अन्दर ले आओ।

(प्रतीहार निकल जाता है।)

(पथिक प्रवेश करके प्रणाम करता है।)

पुरुषः— कथमेष मकरन्दः? (इति सरभसमुत्थाय परिरभते।)

सिद्धाधिनाथः— (पुरुषं प्रति) कोऽयं पथिकः?

पुरुषः— अस्मन्मित्रं सुमित्रायाः पतिरयम्।

(तापसी विलोक्य सरोमाञ्चमधोमुखी भवति।)

सिद्धाधिनाथः— (पथिकं प्रति) किमर्थमत्रागमनं भवतः?

पथिकः— विज्ञातवरुणद्वीपवृत्तान्तोऽहं मित्रानन्दव्यसनं विज्ञपयितुं युष्माकमुपस्थितोऽस्मि।

सिद्धाधिनाथः— (सपश्चात्तापं पुरुषं प्रति) युष्माभिरेवाहमुपकृत्य स्वय-
मात्मव्यसने पातितः।

क्रूरः कृतोपकारः प्रत्यपकाराय कल्पते भूयः।

विरचितपाशविनाशः प्रणिहन्ति विपाशकं सिंहः॥१६॥

पुरुषः— सिद्धाधिनाथ! मा स्म विषीदः। यदि व्यसनमिदं न भवेत् तदानीं
कथमहं सन्निहितमित्र-कलत्रः स्याम्।

पुरुष— क्या यह मकरन्द है? (यह कहकर अत्यन्त शीघ्रता से उठकर
आलिङ्गन करता है।)

सिद्धाधिनाथ— (पुरुष से) कौन है यह पथिक?

पुरुष— यह मेरा मित्र और सुमित्रा का पति मकरन्द है।

(तापसी देखकर रोमाञ्चित हो मुख नीचे कर लेती है।)

सिद्धाधिनाथ— (पथिक से) यहाँ क्यों आये हो?

पथिक— वरुणद्वीप का वृत्तान्त जानकर मित्रानन्द के ऊपर आये सङ्कट
की सूचना आपको देने मैं यहाँ आया हूँ।

सिद्धाधिनाथ— (पश्चात्तापसहित पुरुष से) आप लोगों से ही उपकृत होकर
मैंने आप लोगों को स्वयं अपने ही पापजाल में फँसा दिया।

क्रूर व्यक्ति किसी के द्वारा उपकृत होने पर भी पुनः पुनः उस उपकारक के
अपकार की ही चेष्टा करता है, जिस प्रकार किसी के द्वारा जाल से मुक्त किया गया
सिंह उस जाल से छुड़ाने वाले को ही मार डालता है॥१६॥

अपकारं कुर्वाणैरुपकारः कोऽपि शक्यते कर्तुम् ।

सन्ताप्य फलसमृद्धाः करोति धान्यौषधीस्तपनः॥१७॥

(सिद्धाधिनाथः सलज्जमधोमुखो भवति।)

पुरुषः— सिद्धनाथ! प्रियसम्पर्को वृथा मे मैत्रेयं विना।

सिद्धाधिनाथः— (पञ्चभैरवं प्रति) ब्रूहि मान्त्रिकम्। यथा प्रियः सर्वोऽपि सङ्घटितः परमेकोऽवशिष्यते तदर्थं प्रयतस्व।

(नेपथ्ये)

प्रभातप्राया रजनिः। इदानीमनवसरो मन्त्रस्य।

सिद्धाधिनाथः— (आकर्ण्य) पञ्चभैरव! तर्हि ब्रूहि कुन्दलतां यथा मान्त्रिकमस्माकं दर्शय।

(पञ्चभैरवो निष्क्रान्तः।)

पुरुष— सिद्धाधिनाथ! आप दुःखी न हों। यदि यह विपत्ति नहीं आती तो कैसे हम अपने मित्र और भार्या से मिल पाते।

अपकार करने वाले भी (कभी-कभी) कोई उपकार कर सकते हैं। यथा सूर्य धान्य और ओषधियों को पहले अपनी गर्मी से सन्तप्त करके ही पुनः फल से समृद्ध (परिपूर्ण) करता है॥१७॥

(सिद्धाधिनाथ लज्जा से मुख नीचे झुका लेता है।)

पुरुष— सिद्धाधिनाथ! मैत्रेय के विना हमारा प्रियमिलन व्यर्थ है।

सिद्धाधिनाथ— (पञ्चभैरव से) मान्त्रिक से कहो कि अन्य सभी प्रियजन तो मिल गये, किन्तु एक बच गया है। उसको मिलवाने का प्रयत्न करे।

(नेपथ्य में)

रात लगभग बीत ही गयी है, अतः अब मन्त्रप्रयोग का अवसर नहीं है।

सिद्धाधिनाथ— (सुनकर) पञ्चभैरव! तो कुन्दलता से कहो कि मान्त्रिक को मुझसे मिलवाये।

(पञ्चभैरव निकल जाता है।)

(ततः प्रविशति कुन्दलता मान्त्रिकश्च।)

सर्वे— (विलोक्य) कथमयं मैत्रेयः? मोदामहे मनोरथानामप्यगम्येन प्रियजनसङ्घटनेन।

पुरुषः— मैत्रेय! कथमत्र सम्प्राप्तोऽसि?

मान्त्रिकः— रत्नाकरात् त्वया सह वियोजितो भ्राम्यन् कुन्दलतामनुसृतवान्।

सिद्धाधिनाथः— किं ते कुन्दलता दृष्टचरी?

मान्त्रिकः— वरुणद्वीपे दृष्टचरी। (पुनरौषधिवलयं सिद्धनाथस्योपनीय) स्वेनैवौषधिद्रव्येण यूयमुपशान्तप्रहारवेदनाः सञ्जाताः।

सिद्धाधिनाथः— (पुरुषं प्रति) कुतस्ते कण्ठकाया लाभः?

पुरुषः— पाशापाणिनेयं मह्यमुपनीता। मया च जातभरणनिश्चयेन स्मरप्रतिमापृष्ठस्थितेन युष्मत्कण्ठे विनिवेशिता।

(तत्पश्चात् कुन्दलता और मान्त्रिक प्रवेश करते हैं।)

सभी— (देखकर) क्या यह मैत्रेय है? इस कल्पना से परे (सर्वथा अविश्वसनीय) प्रियजनों के मिलन से हम सब अत्यन्त आनन्दित हैं।

पुरुष— मैत्रेय! यहाँ कैसे आये हो?

मान्त्रिक— रत्नाकरनगर में तुमसे बिछुड़ने के बाद भटकता हुआ मैं कुन्दलता के पीछे-पीछे चला।

सिद्धाधिनाथ— क्या तुमको कुन्दलता पहले दिखी थी?

मान्त्रिक— वरुणद्वीप में दिखी थी। (पुनः औषधिवलय को सिद्धनाथ के समीप ले जाकर) आपके अपने ही औषधिद्रव से आपकी प्रहारवेदना शान्त हुई।

सिद्धाधिनाथ— (पुरुष से) आपको यह माला कहाँ से मिली?

पुरुष— यह मुझे पाशापाणि ने दी थी और अपनी मृत्यु निश्चित जानकर कामदेव की प्रतिमा के पीछे स्थित मैंने आपके गले में पहना दी।

सिद्धाधिनाथः— कौमुदीमपहर्तुं भ्राम्यन्नहं तदानीं पाशपाणिना विडम्बितः। भवान् घातहेतुश्चायं मकरन्दः कौमुदी-सुमित्रानुरागिणा मयाऽस्मिन्नग्निकुण्डे कामदेवपुरतो व्यापादयितुं गवेषितः। इयं च स्वयं त्वया पुरः कौमुदी समासादिता। इदानीं पुनर्मयोपनीता।

पुरुषः— यो मया प्रवहणभङ्गादारभ्य क्लेशोऽनुभूतस्तस्य सर्वस्य युष्मत्प्रसादेन पर्यन्तः समजनि। तदिदानीं समित्र-कलत्र-स्वापतेयं मामुपनयत कौतुकमङ्गलनगरम्।

सिद्धाधिनाथः— इयतोऽप्यर्थस्य का नाम प्रार्थना? समादिश किमपरं ते प्रियमादधामि?

पुरुषः— अतः परमपि किमपि प्रियमस्ति?

सिद्धाधिनाथः— तथापीदमस्तु-

सिद्धाधिनाथ— उस समय (वरुणद्वीप में) कौमुदी के अपहरण हेतु घूमता हुआ मैं पाशपाणि द्वारा छला गया। कौमुदी एवं सुमित्रा में अनुरक्त मैंने आपको और मकरन्द को कामदेव के समक्ष इस अग्निकुण्ड में मारने हेतु खोजा और यह कौमुदी स्वयं ही आपके सम्मुख उपस्थित हो गयी थी। इस समय मैं पुनः इसको यहाँ ले आया हूँ।

पुरुष— नौका डूबने से लेकर अब तक हम लोगों ने जो कष्ट सहन किया, उन सबका आपकी कृपा से अन्त हो गया। अतः अब मुझे अपने मित्र, पत्नी एवं सम्पत्ति सहित कौतुकमङ्गलनगर पहुँचा दीजिए।

सिद्धाधिनाथ— यह तो बहुत छोटा सा कार्य है। अपने किसी और प्रिय कार्य का आदेश दीजिए जिसे मैं सम्पादित करूँ।

पुरुष— इस (प्रियजनों के मिलन) से भी अधिक प्रिय कुछ हो सकता है क्या?

सिद्धाधिनाथ— तथापि यह हो—

उपनतमित्र-कलत्रः सन्तप्तारामचन्द्रकरविशदाम्।
 आसाद्य यशोलक्ष्मीं परां स्वतन्त्रश्चिरं भूयाः॥१८॥
 ॥इति दशमोऽङ्कः समाप्तः॥

॥ प्रबन्धशतकर्तुर्महाकवेः श्रीरामचन्द्रस्य कौमुदीमित्रानन्दं प्रकरणं
 समाप्तम् ॥

मित्र और भार्या से सतत युक्त रह कर और सन्तप्तों को सुखी करने वाली
 चन्द्रिका के समान धवल एवं उत्कृष्ट यशःस्वरूपा लक्ष्मी को प्राप्त कर आप चिरकाल
 तक स्वतन्त्र रहें॥१८॥

॥दशम अङ्क समाप्त॥

॥ प्रबन्धशतकर्ता महाकवि रामचन्द्रसूरिप्रणीत कौमुदीमित्रानन्द नामक
 प्रकरण समाप्त हुआ॥

पद्यानुक्रमणिका

पद्य	पद्यसंख्या	पद्य	पद्यसंख्या
अकृताखण्डधर्माणाम्	१/६	आजन्म यानि जायन्ते	१/५
अकृताखण्डधर्माणाम्	१/७	आद्यं यत् किल	८/६
अक्रूरं श्रेयसे कर्म	६/१४	आद्यत् त्वरितं तटेषु जलधेः	१/२०
अङ्गानां सन्निवेशः (प्रा.) ^१	३/४	इयं सा सिंहलद्वीप	४/१०
अज्ञातलक्ष्मणि सदोदयवृत्तभाजि	५/८	इहैव पदपद्धतिर्विशति	४/१४
अधिकुचतटं पौष्पं दाम	१/१८	उपनतमित्रकलत्रः	१०/१८
अनुजग्राह नस्तत्र	१०/१	एकेनैवाधुनाऽस्माकम्	६/१५
अपकारं कुर्वाणैरुपकारः	१०/१७	एतद् दिनं सुदिनमेष	१/१२
अपत्यजीवितस्यार्थे	७/७	एतानि होमविधये	८/१२
अपराधोऽत्र नास्माकम्	६/१८	एतां निसर्गसुभगाम्	१/१३
अभिमुखवर्तिनि वेधसि	६/४	एते ते मदवारिशीकरभर	६/११
अमन्दं स्पन्दमानस्य	१०/१४	एष स खलु दयितेषु (प्रा.)	३/९
अमर्षमात्सर्यविमोहकैतवैः	१/११	एषा व्याघ्रमुखी पल्लिरावासो	७/२
अमृतजलधेः पुण्यैः	३/२	एह्योहि वत्स	५/११
अरे! गुरुत्वं स्कन्धयोः (प्रा.)	७/८	ऐहिकाऽऽमुषिकान् क्लेशान्	७/४
अल्पत्वं च महत्त्वं च	३/१८	कः कालेन कटाक्षितः	२/१२
अस्तमयति पुनरुदयति	१/८	करसम्बन्धं कृत्वा (प्रा.)	१/१०
अस्ताद्रिमाश्रयन्तम्	३/२२	काप्येषा सरुषः प्रभाववशतः	१/१२
अस्तु स्वस्ति शुभोदयाय	१/१६	कामं कामं कुसुमधनुषः	५/४
अस्मिन् कर्मणि भिन्नशर्मणि	४/१८	कारुण्यैकनिधान	२/१०
अस्मिन् जगति महत्यपि	७/६	कासामपि अङ्ग्यष्टिः (प्रा.)	३/६
अस्यां जगन्नयनकैरव	७/१०	केतुस्तम्भविलम्बिमुण्डमभितः	४/१२
अस्यां मृगीदृशि	१०/१२	क्रूरः कृतोपकारः	१०/१६
अस्याः सरोरुहदृशः	५/७	क्व नाम प्राणसंहारी	६/३
आकर्ण्याऽऽगमनम्	५३	क्व सा सिद्धश्रेणिप्रणतिसुभगा	२/३
आकारः स्मरसोदरः	२/४	क्षणदृष्टजननिमित्तम् (प्रा.)	३/३
आकुष्टाः स्थ यदुच्चकैः	६/१२	क्षणमात्रदृष्टप्रियजन (प्रा.)	४/३

१. (प्रा.) का अर्थ है कि ये पद्य मूलतः प्राकृतभाषा में निबद्ध हैं।

पद्य	पद्यसंख्या	पद्य	पद्यसंख्या
क्षुण्णासु कोटिषु	६/२	नासान्तस्थितलोचनो	१/१५
गात्रं सन्नतगात्रि! नेत्रसुखदम्	३/७	निष्काङ्क्षमुपकारोऽपि	६/८
ग्लास्नुध्वान्तततिर्मुखेषु	२/१	निसर्गासौहृदाज्ञातकाय	७/५
चक्षुर्बाष्पविकज्जलम्	१०/९	नेत्रश्रोत्रवरौष्ठबाहुचरण	४/१३
चलकमलविलासाभ्यासिनी	८/८	पञ्चषाः सन्ति ते केचित्	६/९
चिन्तयन्त्युपकुर्वन्तः	२/५	पदार्थः कोऽप्यनर्घ्योऽपि	२/७
चैत्यानि ध्वजचुम्बितानि	८/२	परस्मादुपकारो यः	१०/२
छित्त्वा कण्ठमकुण्ठखड्गलतया	७/१	परस्य शर्मणः सत्यम्	८/१०
जनमहितमहिम्नाम्	१०/७	परिमलभृतो वाताः	१०/३
जनुषान्धा न पश्यन्ति	९/३	परोपकारः क्रियते स्वस्य	२/१३
जामातः! प्रतिपादिता	३/१६	परोपनीतशब्दार्थाः	१/५
जीर्यत्कर्कटपच्यमानचरवः	१/१४	पितृभ्यामाबाल्यादजनि	४/६
तथा कथमपि जनः (प्रा.)	३/१२	पुण्यप्रसूतजन्मानः	६/१३
ताभ्यः सकर्णः को नाम	८/११	पूर्जम्भारिपुरोपमानम्	९/२
त्वं कौमुदी सुदति	३/११	प्रकृतिचपलं चक्षुर्वाचः	३/५
त्वमेवास्य स्वामी	५/१२	प्रत्यहं नव्यनव्याभिः	९/८
त्वां निध्याय निबद्धवासववपुः	८/९	प्रत्युपकारमाधातुम्	६/१०
दम्पत्योरियमाकृतिः	५/६	प्रपात्य दन्तानुपनीय जाड्यम्	३/१४
दयितैः एव पराङ्मुखैः (प्रा.)	३/१५	प्रबन्धा इक्षुवत् प्रायो	१/४
देवी कण्ठगतप्राणा	९/९	प्रबन्धानाधातुम्	१/३
देशं व्रजन्ति विषमं सहन्ते (प्रा.)	४/५	प्रसीद पयसाम्पते	२/१४
दैवादुपस्थिते मृत्यौ	६/१६	प्राचीनमञ्चति वियत्	४/१
द्रविणं मुञ्चमानश्च	८/१	प्राणानेष सुताय नः प्रवितरन्	५/१३
द्विषां यशःशीतमयूखराहुः	४/११	प्राणेभ्यो नापरं वस्तु	६/५
धात्रीधरैकधुरबाहुषु	६/६	प्रियां प्राणेभ्योऽपि त्वयि	३/१७
धावं धावमयं पुरः पुरजनः	४/९	बन्धुभिर्विप्रयुक्तोऽहमिति	६/१७
थिक् तानमुष्य सुहृदो	१/१७	भद्राम्भोजमृणालिनी	८/५
नक्तं दिनं न शयनम्	७/३	भाभिः कुङ्कुमसोदराभिरभितो	२/२
नतशतमखकामिनीप्रसून	१०/१३	मकरन्द! तूर्णमेहि व्रजति	८/१४
न मे गोत्रं वेद	४/२	मञ्जीराणि यथा रणन्ति	३/१९
नवकान्तिमण्डनानामपि (प्रा.)	१/१९	मन्त्रापविद्धं यद्येतद्	८/१३

पद्य	पद्यसंख्या	पद्य	पद्यसंख्या
मा विषीद कृतं बाष्पैः	४/१७	व्यामोहप्रतिरोहपीतमनसः	१/२
मुषित्वा पौराणां नवकनक	४/१५	शीर्णनिःशेषसंसारव्यापार	१०/१५
यत् पोतस्य सुवर्णमाँक्तिकनिधेः	४/१६	श्रीमन्मुनीश्वर! शिवप्रतिभूः	३/२०
यन्निमित्तं पुरा ध्राम्यन्	८/७	श्रेयांसि प्रभवन्तु ते	२/११
यः प्राप निर्वृतिम्	१/१	सत्यां यौवनभाजि तापसपतेः	३/१
रात्रिन्दिवं विजयिनः	३/८	समानशीलसन्तान	१/७
रे रे तस्कर	५/५	समुद्रे पतितस्यापि	६/१
लक्ष्मीः किं पितुरम्बुधेः	१/११	समूलकाषं कषताम्	१/६
लक्ष्मीपतेरभिमुखम्	५/२	सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा	६/७
लक्ष्मीपयोधरोत्सङ्ग	५/१	सम्पत् परस्य रोहन्ती	२/८
वक्त्रं चन्द्रविलासि	७/९	सरसिजवनमपबन्धम्	१/१
वक्त्रं पात्रं लवणमधुनः	५/९	सर्वथा कैतवं निन्द्यम्	१०/४
वक्त्रं विलक्ष्म	१०/११	सुखाकरोति संयोगः	४/७
वक्त्रं शीतरूर्चिर्वचांसि	३/१०	सुमेधा निश्चितं वेधाः	१/१९
वत्स! प्रसीद कुलमण्डन	५/१०	सेनान्यः! सप्तकृत्वः	६/१९
वसुधातलसन्तपनः	१०/५	सौभाग्यदुममञ्जरी	१०/१०
विच्छेदः पितृबान्धवैः	९/४	स्नुहीगवाऽर्कदुग्धानाम्	३/१३
विधातुं सम्पदः	२/६	स्फुरद् वामं चक्षुः	८/३
विधिना विधीयमानम्	४/१९	स्फुरन्त्युपायाः शान्त्यर्थम्	२/९
विरलविपदां कथञ्चिद्	१/१०	स्फूर्जघावकपङ्कःसङ्क्रम	१०/६
विश्राम्यत्पथिकाः क्वचित्	४/८	हालाहलहरीं विद्याम्	३/२१
विसंवदतु वा मा	८/४	हिमकरकराकीर्णा	१०/८
वीरेषु गणनां पूर्वम्	४/४		

कौमुदीमित्रानन्दान्तर्गत सूक्तियाँ

	अङ्क	पृष्ठ
१. अकृताखण्डधर्माणां पूर्वे जन्मनि जन्मिनाम् । सापदः परिपच्यन्ते गरीयस्योऽपि सम्पदः॥	१	५,६
२. अकूरं श्रेयसे कर्म कूरमश्रेयसे पुनः। इति सिद्धे पथि कूरं श्रेयसे स्पृशतां भ्रमः॥	६	१०६
३. अङ्गानां सन्निवेशो हालिकसुतानामपि तावानेन। वेशेनैव लावण्यविस्मयो धनपतिसुतानाम् ॥ (प्राकृत पद्य)	३	४१
४. अपक्षपातेन यदर्थनिर्णयस्तदेव धर्मः किमपि क्षमाभुजाम्	९	१५६
५. अपत्यजीवितस्यार्थं प्राणानपि जहाति या। त्यजन्ति तामपि कूरा मातरं दारहेतवे॥	७	१२५
६. अभिमुखवर्तिनि वेधसि पुण्यगुणावर्जितानि सर्वाणि। द्वीपान्तरस्थितान्यपि पुरः प्रधावन्ति वस्तूनि॥	६	९९
७. अल्पत्वं च महत्त्वं च वस्तुनोऽर्थित्वमीक्षते।	३	५५
८. अवतरति नभोमित्रे वसुधायां कस्य नाऽऽनन्दः॥	९	१५०
९. अस्मिन् जगति महत्यपि न वेधसा किमपि वस्तु तद् घटितम्। अनिमित्तमित्रवृत्तेर्भवति यतो मातुरुपकारः॥	७	१२४
१०. अहो! विचित्रः कर्मणां विपाकः।	५	८२
११. अहो! वेधा प्रियङ्करः ॥	८	१३९
१२. आजन्म यानि जायन्ते व्यसनानि सहस्रशः। स्मर्यते तानि चेन्नित्यं कोऽवकाशस्तदा मुदाम् ॥	९	१५५
१३. इन्द्र एव जनयति वाणीषु कठिनबन्धेषु सरलत्वम्।	३	४५
१४. इयन्तं हि द्रविणसमूहमुपनतं परित्यक्तुं साधवोऽपि तपस्विनः, किमुत परजीवितापहारिणः पक्वणचारिणः।	८	१३५
१५. उपनता अपि हि विपदः प्रतिरुध्यन्ते देवतादर्शनेन।	८	१३७
१६. एकाकिनः पुनः पुरुषस्य न समुचितः परदारणां मध्येऽधिवासः।	८	१४४
१७. ऐहिकाऽऽमुष्मिकान् क्लेशान् कुक्षिसौहित्यकाम्यया। स्वीकुर्वन्नस्ति दुर्मेधाः कोऽन्यस्तस्करतो जनः॥	७	१२०

१८. कासामपि अङ्गयष्टिः भूष्यते भूषणेनैव। भूष्यते पुनः कासामपि भूषणमङ्गयष्टिना।।	३	४२
१९. कुधो हि भिदुराः पाल्येषु पुण्यात्मनाम्।	६	१०५
२०. क्रूरः कृतोपकारः प्रत्यपकाराय कल्पते भूयः। विरचितपाशविनाशः प्रणिहन्ति विपाशकं सिंहः।।	१०	१८८
२१. क्षणदृष्टजननिमित्तं बन्धुजनं परिचितं हितकरं च। मुञ्चतीनां महिलानां जानाति यदि मानसं ब्रह्मा।।	३	४०
२२. क्षणमात्रदृष्टप्रियजनप्रेमभरोद्विह्वला महिलाः। चिरपरिचितानपि मुञ्चन्ति बान्धवानेषा किल प्रकृतिः।।	४	६१
२३. गरीयसे च फलाद्योपनिबद्धकक्षेण प्रेक्षापूर्वकारिणा लोचने निमील्य सोढव्या एव प्रत्यूहव्युपनिपत्तयः।	१	२
२४. गुणसङ्गममलभमानानां निष्फलो जन्मसंरम्भः।	१	७
२५. चिन्तयन्त्युपकुर्वन्तः संस्तवं हृदि सस्पृहाः। निस्पृहाणां च को नाम कामः संस्तवचिन्तने।।	२	२६
२६. चौरश्च राज्ञां स्वदेशजो वा परदेशजो वा वध्य एव।	५	८८
२७. जनुषान्धा न पश्यन्ति भावान् केवलमैहिकान् । ऐहिकाऽऽमुष्भिकान् कामकामलान्धाः पुनर्जनाः।।	९	१५२
२८. तथा कथमपि जनो वेश्याभिरर्थलोभेनास्ति विडम्बितः। यथा प्रेमविह्वलास्वपि न तासु विश्वासमवतरति।।	३	४८
२९. दयितैरेव पराङ्मुखैर्मदनाग्निविह्वलमनसः। कार्यन्ते कुलबालिका ग्रथिलानि कार्याणि।।	३	५४
३०. दुर्जनोपनीतक्लेशकोटिकण्टकिला खल्वियं संसाराटवी	१	२
३१. देशं व्रजन्ति विषमं सहन्ते कष्टं भ्राम्यन्ति दुःखिताः। तथापि महिलानां प्रेम दयिते न स्वजनवर्गे।	४	६२
३२. दैवादुपस्थिते मृत्यौ क्षीणसर्वप्रतिक्रिये। तथाकथञ्चिन्मर्तव्यं न मर्तव्यं यथा पुनः।।	६	११०
३३. द्विजातिरहमनर्हो गजवाजिप्रभृतीनां सम्पतीनाम् ।	६	१०३
३४. न यो वाचः पात्रं भवति न दृशो नापि मनस- स्तमप्यर्थं कुद्धो हतविधिरकाण्डे घटयति।।	२	२५

३५.	नवकान्तिमण्डनानामपि मुक्तानां शुक्तिसम्पुटस्थितानाम् । गुणसङ्गममलभमानानां निष्फलो जन्मसंरम्भः ॥ (प्रा०प०)	१	७
३६.	नव्यं नव्यमुदेति कन्दलमहो! प्रातीपिके वेधसि।	९	१५४
३७.	निजभुजदण्डाभ्यां हि वणिजां द्रविणोपार्जनं मण्डनं न तु खडनम्।	१	१३
३८.	निष्काङ्क्षमुपकारोऽपि विश्वोत्तीर्णा सतां क्रिया। अप्रकाशस्तु यस्तस्य तत्र ब्रह्माऽपि मन्थरः ॥	६	१०२
३९.	निसर्गसौहृदाज्ञातकायवाङ्मनसक्लमाः। बालाः कथं नु जीवेयुर्न भवेज्जननी यदि।	७	१२२
४०.	नैकस्य संलापश्रवणेन निर्णयः कर्तुं शक्यते।।	९	१५४
४१.	पञ्चषाः सन्ति ते केचिदुपकर्तुं स्फुरन्ति ये । ये स्मरन्त्युपकारस्य तैस्तु बन्ध्या वसुन्धरा ॥	६	१०२
४२.	पदार्थः कोऽप्यनर्घ्योऽपि स्थितः पुंसि लघीयसि। महत्त्वक्षीवचितेषु महत्सु खलु नार्घति ॥	२	३०
४३.	परस्मादुपकारो यः सोऽपि व्रीडावहः सताम् । तस्याप्रत्युपकारस्तु दुनोत्यन्तः पशूनपि ॥	१०	१७२
४४.	परस्य शर्मणः सत्यं प्रत्यूहो हरिणीदृशः। भवेऽपि तद् यदि क्वापि तदा ता एव हेतवः ॥	८	१४३
४५.	परोपकारः क्रियते स्वस्य कल्याणहेतवे। ततोऽपि यद्यकल्याणं कल्याणात् तत् पदं परम् ॥	२	३७
४६.	परोपनीतशब्दार्थाः स्वनाम्ना कृतकीर्तयः। निबद्धारोऽधुना तेन विश्रम्भस्तेषु कः सताम् ॥	१	४
४७.	पुरन्द्गीणां प्रेमग्रहिलमविचारं खलु मनः।	४	६०
४८.	प्रकृतिसुभगे पात्रे वेषो यदेव तदेव वा।	१	१८
४९.	प्रत्युपकारमाधातुमनुरूपं निरोजसः। उपकारं स्मरन्तोऽपि विस्मरन्ति महौजसः ॥	६	१०२
५०.	प्रभञ्जनप्रकोपप्रभवानामङ्गस्फुरणानां शुभाशुभोदकेषु को नाम विश्रम्भः।	५	८२
५१.	प्राचीं चुम्बति चण्डरोचिषि जगद्वैचित्र्यमालम्बते।	२	२४
५२.	प्राणेभ्यो नापरं वस्तु प्रेमपात्रं वपुष्मताम् ।	६	१००

५३. भूष्यते पुनः कासामपि भूषणमङ्गयष्टिना ।।	३	४२
५४. वनितायां प्रहारः प्रयत्नतो रक्षणीयः।	४	७२
५५. विना विशेषचिह्नेन युक्तो नैकत्र निर्णयः।।	९	१५६
५६. विपदोऽपि सम्पदोऽपि च सततं न स्थास्नवः प्रायः।	१	७
५७. विरलविपदां कथञ्चिद् विपदो हर्तुं समीहते लोकः। प्रतिपदनवविपदां पुनरुपैति माताऽपि निर्वेदम् ।।	९	१६४
५८. विसंवदतु वा मा वा शकुनं फलकर्मणि। तथापि प्रथमं चेतो वैमनस्यमुपाश्नुते।।	८	१३७
५९. वीरेषु गणनां पूर्वं परमर्हन्ति योषितः। यास्तृणायाभिमन्यन्ते प्राणान् प्रेमान्धचेतसः।।	४	६२
६०. व्यापाद्यमानो लभते विज्ञापनामेकाम् ।	५	९१
६१. सत्यं विषादशोकाभ्यां न दैवं परिवर्तते।	४	७५
६२. सन्ताप्य फलसमृद्धाः करोति धान्यौषधीस्तपनः।	१०	१८९
६३. समुद्रे पतितस्यापि क्षिप्तस्यापि नभस्तलात् । पुनः सम्पद्यते लक्ष्मीर्यदि प्राणैर्न मुच्यते।।	६	९६
६४. सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा रोहन्ती दैवमीक्षते। एवमप्यर्थितान्येषु पुंसां क्लैव्याय केवलम् ।।	६	१०१
६५. सम्पत् परस्य रोहन्ती भाग्यानां मुखमीक्षते। स्वशक्तितोलनं नाम माहात्म्यं तु महात्मनाम् ।।	२	३१
६६. सर्वथा कैतवं निन्द्यं प्रवदन्ति विपश्चितः। केवलं न विना तेन दुःसाधं वस्तु सिध्यति।।	१०	१७६
६६. सर्वथाऽप्यपाररव्यसनकान्तरपतितेनापि प्रेक्षापूर्वकारिणा प्राणिना न विषादवैधुर्यमाधेयम् ।	६	९६
६८. सुमेधा निश्चितं वेधा साधूनामानुकूलिकः।	१	१९
६९. स्नुहीगवाऽर्कदुग्धानां दृश्यं यदपि नान्तरम् । तथाप्यास्वादपार्थक्यं जिह्वाऽऽख्याति पटीयसी।।	३	४८
७०. स्फुरन्त्युपायाः शान्त्यर्थमनुकूले विधातरि। प्रतिकूले पुनर्यान्ति तेऽप्युपाया अपायताम् ।।	२	३१
७१. स्वपरोपतापजननीं धिक् तस्कराणां स्थितिम् ।	७	११५

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1. Studies in Jaina Philosophy	Dr.Nathamal Tatia	100.00
2. Jaina Temples of Western India	Dr.Harihar Singh	200.00
3. Jaina Epistemology	I.C. Shastri	150.00
4. Concept of Pañcaśīla in Indian Thought	Dr. Kamla Jain	50.00
5. Concept of Matter in Jaina Philosophy	Dr. J.C. Sikdar	150.00
6. Jaina Theory of Reality	Dr.J.C. Sikdar	150.00
7. Jaina Perspective in Philosophy & Religion	Dr. Ramji Singh	100.00
8. Aspects of Jainology (Complete Set: Vols. 1 to 7)		2200.00
9. An Introduction to Jaina Sādhana	Dr. Sagarmal Jain	40.00
10. Pearls of Jaina Wisdom	Dulichand Jain	120.00
11. Scientific Contents in Prakrit Canons	N.L. Jain	300.00
12. The Path of Arhat	T.U. Mehta	100.00
13. Jainism in a Global Perspective	Ed. Prof. S.M. Jain & Dr.S. P. Pandey	400.00
14. Jaina Karmology	Dr. N.L. Jain	150.00
15. Aparigraha- The Humane Solution	Dr. Kamla Jain	120.00
16. Studies in Jaina Art	Dr. U.P. Shah	300.00
१७. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास	(सम्पूर्ण सेट सात खण्ड)	६३०.००
१८. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास	(सम्पूर्ण सेट: चार खण्ड)	७६०.००
१९. जैन प्रतिमा विज्ञान	डॉ० मारुतिनन्दन तिवारी	१५०.००
२०. वज्जालगम् (हिन्दी अनुवाद सहित)	पं० विश्वनाथ पाठक	८०.००
२१. प्राकृत हिन्दी कोश	सम्पादक- डॉ० के०आर०चन्द्र	२००.००
२२. जैन धर्म और तान्त्रिक साधना	प्रो० सागरमल जैन	३५०.००
२३. गाथा सप्तशती (हिन्दी अनुवाद सहित)	पं० विश्वनाथ पाठक	६०.००
२४. सागर जैन-विद्या भारती (तीन खण्ड)	प्रो० सागरमल जैन	३००.००
२५. गुणस्थान सिद्धान्त: एक विश्लेषण	प्रो० सागरमल जैन	६०.००
२६. भारतीय जीवन मूल्य	डॉ० सुरेन्द्र वर्मा	७५.००
२७. नलविलासनाटकम्	सम्पादक- डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डे	६०.००
२८. अनेकान्तवाद और पाश्चात्य व्यावहारिकतावाद	डॉ० राजेन्द्र कुमार सिंह	१५०.००
२९. दशाश्रुतस्कंध नियुक्ति: एक अध्ययन	डॉ० अशोक कुमार सिंह	१२५.००
३०. पञ्चाशक-प्रकरणम् (हिन्दी अनु० सहित)	अनु०- डॉ० दीनानाथ शर्मा	२५०.००
३१. सिद्धसेन दिवाकर: व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय	१००.००
३२. मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म	डॉ० श्रीमती राजेश जैन	१६.००
३३. भारत की जैन गुफाएँ	डॉ० हरिहर सिंह	१५०.००
३४. महावीर निर्वाणभूमि पावा: एक विमर्श	भागवतीप्रसाद खेतान	१०.००
३५. जैन तीर्थों का ऐतिहासिक अध्ययन	डॉ० शिवप्रसाद	२००.००
३६. बौद्ध प्रमाण-मीमांसा की जैन दृष्टि से समीक्षा	डॉ० धर्मचन्द्र जैन	२००.००
३७. जीवसमास	अनु०- साध्वी विद्युत्प्रभाश्री जी	१६०.००

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी-५